होनी होय सो होय
(ओशो द्वारा कबीर-वाणी पर प्रश्नोत्तर सहित दिए गए दस अमृत प्रवचनों
का अनुपम संकलन।)

प्रवचन-क्रम

1. मंगन से क्या मांगिए..2
2. छाया मत छूना मन..24
3. मैं अपने साहब संग चली...44
4. मधुर मधुर मेरे दीपक जल...65
5. पीवत रामरस लगी खुमारी..85
6. सत्संग..106
7. पी ले प्याला हो मतवाला...127
8. प्रज्ञा संन्यास है...150
9. सखि, वह घर सबसे न्यारा..173 10..नेति-नेति 195

होनी होय सो होय
पहला प्रवचन

मंगन से क्या मांगिए

सूत्र

मोर फकिरवा मांगि जाय,
मैं तो देखहू न पौल्यौं।
मंगन से क्या मांगिए,
बिन मांगे जो देय।
कहैं कबीर मैं हौं वाही को,
होनी होय सो होय।

चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहिं सोच यह जिय की।।
रहे नित पास ही मेरे। न पाऊं यार को हेरे।।
बिकल चहुं ओर को धाऊं। तबहु नहिं कंत को पाऊं।।
धरों केहि भांति सों धीरा। गयौ गिर हाथ से हीरा।।
कटी जब नैन की झाईं। लख्यौं तब गगन में साईं।।
कबीरशब्द कहि त्रासा। नयन में यार को वासा।।

तन-मन-धन बाजी लागी हो,
चौपड़ खेलूं पीव से रे, तन-मन बाजी लगाया।
हारी तो पिय की भई रे, जीती तो पिय मोर हो।
चौसरिया के खेल में रे, जुग्ग मिलन की आस।
नर्द अकेली रह गई रे, नहिं जीवन की आस हो।
चार बरन घर एक है रे, भांति भांति के लोग।
मनसा-बाचा कर्मना कोई, प्रीति निबाहो ओर हो।
लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पे अटकी आय।
जो अबके पौ ना पड़ी रे, फिर चौरासी जाय हो।
कहै कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार।
अबके सुरत चढ़ाय दे रे, सोई सुहागिन नार हो।

संत तो हजारों हुए हैं, पर कबीर ऐसे हैं जैसे पूर्णिमा का चांद-- अतुलनीय, अद्वितीय! जैसे अंधेरे में कोई अचानक दीया जला दे, ऐसा यह नाम है।
जैसे मरुस्थल में कोई अचानक मरूद्यान प्रकट हो जाए, ऐसे अदभुत और प्यारे उनके गीत हैं!
मैं कबीर के शब्दों का अर्थ नहीं करूंगा। शब्द तो सीधे-सादे हैं। कबीर को तो पुनरुज्जीवित करना होगा। व्याख्या नहीं हो सकती उनकी, उन्हें पुनरुज्जीवन दिया जा सकता है। उन्हें अवसर दिया जा सकता है कि वे मुझसे बोल सकें।
तुम ऐसे ही सुनना जैसे यह कोई व्याख्या नहीं है; जैसे बीसवीं सदी की भाषा में, पुनर्जन्म है। जैसे कबीर का फिर आगमन है। और बुद्धि से मत सुनना। कबीर का कोई नाता बुद्धि से नहीं। कबीर तो दीवाने हैं। और दीवाने ही केवल उन्हें समझ पाए और दीवाने ही केवल समझ पा सकते हैं। कबीर मस्तिष्क से नहीं बोलते हैं। यह तो हृदय की वीणा की अनुगूंज है। और तुम्हारे हृदय के तार भी छू जाएं, तुम भी बज उठो, तो ही कबीर समझे जा सकते हैं। यह कोई शास्त्रीय, बौद्धिक आयोजन नहीं है। कबीर को पीना होता है, चुस्की-चुस्की। जैसे कोई शराब पीए! और डूबना होता है, भूलना होता है अपने को, मदमस्त होना होता है।
भाषा पर अटकोगे, चूकोगे; भाव पर जाओगे तो पहुंच जाओगे। भाषा तो कबीर
की टूटी-फूटी है। बे-पढ़े-लिखे थे। लेकिन भाव अनूठे हैं, कि उपनिषद फीके पड़ें, कि गीता, कुरान और बाइबिल भी साथ खड़े होने की हिम्मत न जुटा पाएं।

भाव पर जाओगे तो... । भाषा पर अटकोगे तो कबीर साधारण मालूम होंगे। कबीर
ने कहा भी--लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात। नहीं पढ़ कर कह रहे हैं। देखा है आंखों से। जो नहीं देखा जा सकता उसे देखा है, और जो नहीं कहा जा सकता उसे कहने की कोशिश की है।
बहुत श्रद्धा से ही कबीर समझे जा सकते हैं। शंकराचार्य को समझना हो, श्रद्धा की ऐसी कोई जरूरत नहीं। शंकराचार्य का तर्क प्रबल है। नागार्जुन को समझना हो, श्रद्धा की क्या आवश्यकता! उनके प्रमाण, उनके विचार, उनके विचार की अदभुत तर्कसरणी--वह प्रभावित करेगी। कबीर के पास न तर्क है, न विचार है, न दर्शनशास्त्र है। शास्त्र से कबीर का क्या लेना-देना! कहा कबीर ने--मसि कागद छुओ नहीं। कभी छुआ ही नहीं जीवन में कागज, स्याही से कोई नाता ही नहीं बनाया। सीधी-सीधी अनुभूति है; अंगार है, राख नहीं। राख को तो तुम सम्हाल कर रख सकते हो। अंगार को सम्हालना हो तो श्रद्धा चाहिए, तो ही पी सकोगे यह आग।
कबीर आग हैं। और एक घूंट भी पी लो तो तुम्हारे भीतर भी--अग्नि भभक उठे-- सोई अग्नि जन्मों-जन्मों की। तुम भी दीये बनो। तुम्हारे भीतर भी सूरज ऊगे। और ऐसा हो, तो ही समझना कि कबीर को समझा, ऐसा न हो तो समझना कि कबीर के शब्द पकड़े, शब्दों की व्याख्या की, शब्दों के अर्थ जाने; पर वह सब ऊपर-ऊपर का काम है। जैसे कोई जमीन को इंच दो इंच खोदे और सोचे कि कुआं हो गया। गहरा खोदना होगा। कंकड़-पत्थर आएंगे। कूड़ा-कचरा आएगा। मिट्टी हटानी होगी। धीरे- धीरे जलस्रोत के निकट पहुंचोगे।
ऐसी ही हम खुदाई आज शुरू करते हैं।

शब्दझरे अर्थ की लड़ी
अर्थझरे
एक फूल, पांच रंग, सात पंखुड़ी।

एक दर्द धूप से भरा हुआ
माथ चूम कर मुझे जगा गया
टूटता हुआ प्रणाम शाम का
गांठ नई भोर की लगा गया
सिंधु तिरी प्यास की तरी
डूब गए
एक मंत्र, पांच दीप, सात अंजुरी।

एक वायु गंध से भरी हुई
अंग-अंग को परस गुजर गई
एक मूर्च्छना चढ़ी हुई शिखर
मंत्र-मुग्ध पांव तक उतर गई
गूंज से दिशा-दिशा भरी
रीत गए
एक गीत, पांच गान, सात बंसुरी।

तुम्हारे भीतर फूल झर जाएं, तो समझना कि कबीर को समझा। बांसुरी बज जाए, तो समझना कि कबीर को समझा। इंद्रधनुष प्रकट हो जाएं, तो समझना कि कबीर को समझा।

शब्दझरे अर्थ की लड़ी
अर्थझरे
एक फूल, पांच रंग, सात पंखुड़ी।
एक दर्द धूप से भरा हुआ!

एक पीड़ा उठे! एक पीड़ा--प्रीति की, परमात्मा से विछोह की, आत्म-अज्ञान की। एक तीर चुभ जाए कि निकाले न निकले।

एक दर्द धूप से भरा हुआ
माथ चूम कर मुझे जगा गया

और वह पीड़ा तुम्हें जगा जाए, तो ही जानना कि कबीर को समझा।

टूटता हुआ प्रणाम शाम का
गांठ नई भोर की लगा गया

सुबह की तरफ यात्रा शुरू हो। सुबह की पुकार तुम्हारे प्राणों में गूंज उठे तो समझना कि कबीर को समझा।

सिंधु तिरी प्यास की तरी
डूब गए
एक मंत्र, पांच दीप, सात अंजुरी
एक वायु गंध से भरी हुई!

हां, ऐसे ही हैं कबीर--एक वायु गंध से भरी हुई! परमात्मा की सुगंध!

अंग-अंग को परस गुजर गई।

यहां सुनते-सुनते कबीर की गंध-भरी वायु तुम्हारे अंग-अंग को परस जाए,
छू जाए। यह दरस-परस हो जाए तो ही जानना कि समझे।

एक वायु गंध से भरी हुई
अंग-अंग को परस गुजर गई
एक मूर्च्छना चढ़ी हुई शिखर
मंत्र-मुग्ध पांव तक उतर गई

और ऐसे पी लेना इस शराब को कि नख शिख सब डूब जाएं। कुछ अछूता न रहे, कुछ अनभीगा न रहे, सब भीग जाए, आर्द्र हो जाए--तो जानना कि कबीर को समझे।

गूंज से दिशा-दिशा भरी
रीत गए
एक गीत, पांच गान, सात बंसुरी।

बजने लगें स्वर पर स्वर, उठने लगें गीत पर गीत! एक अभिनव नृत्य तुम्हारे भीतर प्रारंभ हो जाए! एक महोत्सव का यह निमंत्रण है!
कबीर एक आमंत्रण हैं, एक पुकार, एक आवाहन! चल पड़ो तो समझोगे। किताब के पन्ने पलटते रहे, कुछ हाथ न लगेगा। किताबों में सिवाय राख के और कुछ भी नहीं। कुछ और हो भी नहीं सकता है। कुछ और की आशा भी नहीं करनी चाहिए।
गाते हैं कबीर--
मोर फकिरवा मांगि जाय,
मैं तो देखहू न पौल्यौं।
मंगन से क्या मांगिए,
बिन मांगे जो देय
कहै कबीर मैं हौं वाही को,
होनी होय सो होय।
कहते हैंः मैं फकीर हूं, मांगने जाता हूं, द्वार-द्वार भिक्षा का पात्र फैलाता हूं; लेकिन एक बड़ा चमत्कार देखा कि जो मिलता है वही फकीर है, सभी यहां मांगने वाले हैं! यहां देने वाला कौन? जब तक वासना है, तब तक भिखमंगापन है।

कबीर कहते हैंः मैं तो फकीर हूं, भिखमंगा हूं, द्वार-द्वार भिक्षापात्र फैलाता हूं; लेकिन चकित हुआ हूं यह जान कर कि हर घर में मैंने भिखमंगों को बैठे देखा, और दूसरा कोई दिखाई पड़ता ही नहीं! बड़े-बड़े भिखमंगे हैं, धनी भिखमंगे हैं, सम्राट भिखमंगे हैं; मगर हैं सब भिखमंगे।
जब तक वासना है तब तक भीख है। जब तक तुम कह रहे हो यह और मिल जाए, यह और मिल जाए, तब तक तुम मालिक नहीं हो। जब तक मांग शेष है तब तक मालकियत कैसी? मोर फकिरवा मांगि जाय।
कबीर कहते हैंः मैं तो रहा फकीर, सो ठीक है कि मांगने जाता हूं। लेकिन सम्राटों के द्वार पर भी खड़े होकर, राज-सिंहासनों पर बैठे हुए लोगों को देखा और हैरान हुआ, समझ नहीं पाया इस पहेली को कि सभी फकीर हैं, सभी भिखमंगे हैं। यहां सभी मांगने में लगे हैं, तो फिर सोचा कि इनसे क्या मांगना! मंगन से क्या मांगिए! ये तो खुद ही भिखमंगे हैं बेचारे, ये तो खुद ही दया के पात्र हैं। इन्होंने तो खुद ही अपनी वासना के अदृश्य पात्र फैला रखे हैं। मेरा पात्र तो छोटा, मुट्ठी दो मुट्ठी से भर जाए। इनके पात्र ऐसे हैं, दुष्पूर, कि लाख भरो, नहीं भरते, खाली के खाली! साम्राज्य पी जाते हैं, लेकिन उनका खालीपन नहीं भरता। इनसे क्या मांगूं? इनसे मांगने में शर्म आती है। यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि कबीर जीवन भर कपड़ा ही बुनते रहे और बेचते रहे; जुलाहे थे, अपना काम जारी रखा। उनके शिष्यों ने बहुत बार कहा कि हमें शर्म लगती है, हमें संकोच होता है, हमें लाज आती है, हमें लज्जा पकड़ती है, लोग हमें उलटी-सीधी बातें कहते हैं कि जिसके हजारों शिष्य हैं, हजारों भक्त हैं, उसको कपड़ा बुनना पड़ता है, बाजार बेचने जाना पड़ता है! तो आप यह बंद क्यों नहीं कर देते? हम तो देने को राजी हैं--जो चाहिए; जितना चाहिए उससे ज्यादा देने को राजी हैं। क्या कमी है!
लेकिन कबीर मुस्कुराते और अपना काम जारी रखा। मरते दम तक बुनते रहे कपड़ा, बेचते रहे कपड़ा। कारण यही था--
मोर फकिरवा मांगि जाय,
मैं तो देखहू न पौल्यौं।
मंगन से क्या मांगिए,
बिन मांगे जो देय।
कहै कबीर मैं हौं वाही को,
होनी होय सो होय।
कबीर कहते हैं कि इसीलिए नहीं। क्या मांगू? क्या तुम्हारे ऊपर निर्भर होऊं? तुम तो खुद ही भिखमंगे हो। तुम्हारी तो खुद ही आकांक्षाएं पूरी नहीं हुई हैं। इससे बेहतर यही है कि उससे ही मांग लूं, जो सबको देता है और जो बिन मांगे देता है।
क्योंकि मांगो तो मजा चला गया, मांग कर कुछ मिला तो मजा चला गया। बिन मांगे मिल जाए, तो सम्मान है, तो गौरव है, तो गरिमा है।
बिन मांगे जो देय।
यहां तो मांगे-मांगे भी कौन देता है और मांग-मांग कर भी अगर कोई दे तो लाख एहसान जताता है। देता भी है तो किन्हीं और कारणों से देता है, दिखावे के लिए देता है, अहंकार की तृप्ति के लिए देता है। दानी, महादानी समझा जाए, इसलिए देता है। और जहां दान के पीछे कुछ भी आकांक्षा है, वहां दान विकृत हो गया, विषाक्त हो गया। दान तो तभी दान है जब अकारण है। यहां तो तुम दो पैसे भी देते हो तो पात्रता का पता लगाते हो, योग्यता का पता लगाते हो। देते हो दो पैसे, दो पैसे देने के लिए कितना शोरगुल मचाते हो!
कबीर कहते हैंः ऐसे मांगने में मुझे रस नहीं। भिखमंगों से मांगने में मुझे खुद ही संकोच लगता है कि बेचारे वैसे ही दीन-हीन हैं और इनसे कुछ लेकर दो पैसे, इन्हें और दीन-हीन कर देना क्या उचित होगा?
सिकंदर जब भारत आया तो डायोजनीज से मिला--एक नंगे फकीर से। डायोजनीज
से बहुत प्रभावित हुआ--और सिकंदर ने कहाः डायोजनीज, कुछ मांग लो। जो चाहिए हो वह मांग लो। डायोजनीज ने सिकंदर को नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि अभी तो तुम्हारी ही आकांक्षाओं का पात्र भरा नहीं, तुम मुझे क्या दोगे! तुमसे क्या मांगूं? फिर भी तुम्हें बुरा न लगे, फिर भी तुम्हारा अपमान न हो, फिर

भी अशिष्टाचार न हो जाए, इसलिए इतना मांगता हूं कि जरा हट कर खड़े हो जाओ, क्योंकि मैं सुबह-सुबह सूरज की धूप ले रहा था और तुम बीच में आकर खड़े हो गए हो। इतना ही दे दो। और इतनी ही प्रार्थना करता हूं कि यही ख्याल रखना कि किसी व्यक्ति के और सूरज के बीच में खड़े मत होना। किसी की धूप मत छीनना, बस। इतना ही तुम कर सको तो बहुत है। वैसे तुम्हारे पास मैं कुछ देखता नहीं, जो मांगने योग्य हो। और तुम्हारी ऐसी दीन दशा देखता हूं कि हो भी तुम्हारे पास, तो भी मैं मांग न सकूंगा।
सिकंदर एक तरफ तो हतप्रभ हुआ, और एक तरफ चमत्कृत भी हुआ। पहली दफा जैसे किसी मनुष्य से मिलना हुआ था। नहीं था कुछ उसके पास, नंगा था यूं। लेकिन कैसी अलमस्ती थी! सिकंदर से भी कुछ न मांगा। सिकंदर को भी दिखा दिया--कि तुम भिखमंगे हो।
सूफी फकीर फरीद से उसके गांव के लोगों ने कहा कि अकबर तुम्हारे पास आता है, तुम उससे प्रार्थना करो कि गांव के लिए एक मदरसा बनवा दे। फरीद कभी अकबर से मिलने नहीं गया था। अकबर ही आता था जब उसे मिलना होता था। लेकिन जब कुछ मांगना हो तो जाना उचित है, ऐसा मान कर फरीद अकबर से मांगने गया। सुबह-सुबह जल्दी गया। काम-धाम में उलझ जाए अकबर, उससे पहले ही मिल आना ठीक है। पहुंचा महल, सम्मानपूर्वक उसे अंदर ले जाया गया। अकबर तब प्रार्थना कर रहा था, सुबह की नमाज पढ़ रहा था। फरीद पीछे खड़ा रहा। अकबर ने नमाज पूरी की, दोनों हाथ आकाश की तरफ फैलाए और परमात्मा से कहा हे प्रभु! मेरी धन-संपदा बढ़ा, मेरे राज्य को बढ़ा, मुझ पर कृपा कर!
फरीद उलटे पांव लौट पड़ा। अकबर उठा तो फरीद जाता हुआ दिखाई पड़ा। दौड़ कर पैर पकड़ लिए और कहाः आए, पहली दफा आए और बिना एक शब्द बोले लौटे चले जाते हो, बात क्या है? कुछ मुझसे भूल-चूक हो गई है?"
फरीद ने कहाः नहीं, तुमसे कुछ भूल-चूक नहीं हुई, भूल-चूक मुझसे हो गई है। मैं भी कहां भिखमंगे से भीख मांगने आ गया! गांव के लोगों ने मुझसे बहुत बार कहा तो मैंने कहा चलो ठीक। वे कहते थे कि गांव में मदरसा खुलवा दो, एक स्कूल; उसी के लिए आया था लेकिन नहीं अब, अब नहीं मांगूंगा। तुम तो खुद ही अभी मांग रहे हो। तुम्हारी प्रार्थना तो अभी भिखमंगे की प्रार्थना है--और राज्य, और धन, और संपदा। नहीं, तुम्हें गरीब नहीं करूंगा। एक मदरसा खोलोगे तो कुछ पैसा तो लगेगा ही, उतना गरीब हो जाओगे। नहीं, मैं किसी को गरीब करने के लिए उत्सुक नहीं हूं। फिर रही बात मदरसे की तो गांव के लोगों से कह दूंगा कि हम उसी से ही क्यों न मांग लें जिससे अकबर खुद मांगता है। उसकी होगी मर्जी तो दे देगा; उसकी मर्जी नहीं होगी, तो उसकी मर्जी से ही राजी होना उचित है।"
कबीर कहते हैंः मंगन से क्या मांगिए!
मांगना ही हो, तो सम्राटों के सम्राट से मांगो, उस मालिक से मांगो--बिन मांगे जो देय! और उससे मांगना भी नहीं पड़ता। यही मजा है। भक्त और भगवान के बीच जो संवाद चलता है, अनूठा है। भक्त मांगता नहीं और भगवान बरसाए चला जाता है--प्रसाद पर प्रसाद! भक्त ने मांगा कि संवाद रुक जाता है। मांगा कि बात टूट गई। मांगा कि नाता छिन्न-भिन्न हो गया। सेतु गिर गया। क्योंकि मांगा तो तुमने यह बता दिया कि तुम्हें भगवान में उत्सुकता नहीं है; तुम्हारी उत्सुकता धन में है, पद में है, प्रतिष्ठा में है। भगवान तो केवल बहाना है। उसके माध्यम से मिल जाए धन, इसलिए भगवान की प्रार्थना भी कर रहे हो। लेकिन असली इच्छा धन की है। धन भगवान से बड़ा हो गया। भगवान साधन हो गया, धन साध्य हो गया।
जिसने मांगा उसने भगवान का अपमान किया। अगर तुम्हारी प्रार्थनाओं में मांग है तो तुम भगवान का अपमान कर रहे हो।
लोग मुझसे पूछते हैं कि हमारी प्रार्थनाएं पूरी क्यों नहीं होतीं? तुम्हारी प्रार्थनाएं परमात्मा तक पहुंच ही नहीं सकतीं; वे प्रार्थनाएं नहीं हैं, अपमान हैं; स्तुति नहीं हैं, गालियां हैं। क्योंकि जब भी तुम कुछ मांगते हो तभी तुम यह कह रहे हो कि भगवान से भी बड़ी कोई चीज है, जिसके लिए हम भगवान को भी साधन बना रहे हैं। अगर शैतान दे सकता हो, तो

हम शैतान की प्रार्थना करेंगे। कहते हैं कि भगवान देता है, तो भगवान की प्रार्थना करते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की अंतिम घड़ी आई। तो धर्मगुरु उसे आखिरी प्रार्थना करवाने आया। मुल्ला ने कहा कि अभी तो मैं प्रार्थना खुद कर सकता हूं। आप बैठें, विराजें! मैं प्रार्थना करता हूं। और उसने पहले तो परमात्मा से प्रार्थना की कि "हे प्रभु! मुझे बचाओ। ये मृत्यु के दूत द्वार पर आकर खड़े हो गए हैं। मेरी रक्षा करो। और फिर कहा कि हे शैतान, मुझे बचा! ये मृत्यु के दूत मेरे द्वार पर आकर खड़े हो गए हैं।
धर्मगुरु ने सुना कि वह शैतान से भी प्रार्थना कर रहा है! तो उसने कहाः नसरुद्दीन, तुम विक्षिप्त तो नहीं हो गए हो? मरते वक्त होश तो नहीं खो दिया है?"
नसरुद्दीन ने कहा कि तुम मुझे समझाने की कोशिश मत करो। मर मैं रहा हूं
कि तुम मर रहे हो? अब कौन जाने किसके हाथ में पड़ना पड़े! इसलिए दोनों से प्रार्थना कर लेनी उचित है। जिसके भी हाथ में पड़ गए उसी से कहेंगे कि भाई याद रखना, प्रार्थना तो की थी! इस आखिरी समय में यह झंझट मैं मोल नहीं ले सकता कि एक की प्रार्थना करूं और दूसरे को छोड़ दूं। अब पता नहीं किसके कब्जे में पड़ूंगा। और ज्यादा संभावना तोशैतान के कब्जे में ही पड़ने की है। इसलिए उसे भी राजी रखना उचित है।
तुम उसकी ही प्रार्थना करते हो जिसे तुम्हारी आकांक्षाएं पूरी हो सकें; फिर वह परमात्मा हो कि शैतान हो। तुम्हें न परमात्मा से प्रयोजन है न शैतान से; तुम्हें अपनी आकांक्षा से प्रयोजन है। इनका तो तुम उपयोग कर रहे हो।
इसलिए भक्त मांगता नहीं; बिन मांगे मिलता है, बहुत मिलता है, अकूत मिलता है! तौला नहीं जा सकता; इतना मिलता है। प्रसाद की सतत वर्षा होती रहती है। लेकिन बिन मांगे! मांगा कि तत्क्षण वर्षा बंद हो जाती है।
और तुमने तो जो प्रार्थना सीखी है, और तुम्हारे धर्मगुरुओं ने तुम्हें जो प्रार्थनाएं सिखाई हैं, वे सब मांगने की हैं। पानी न गिरे तो हवन, यज्ञ। तुम परमात्मा की याद ही तब करते हो जब तुम्हारी कोई जरूरत होती है; कोई काम अटक जाए तो खुशामद करने लगे। तुम्हारी प्रार्थना खुशामद से ज्यादा नहीं है। मजबूरी में करते हो। वह तुम्हारा आह्लाद नहीं है। तुम्हारा आनंद नहीं है। तुम्हारा उत्सव-गीत नहीं है। तुम्हारा धन्यवाद नहीं है। तुम्हारा आभार, अनुग्रह नहीं है। पानी नहीं गिरा तो यज्ञ-हवन शुरू, पंडित-पुरोहित शुरू। कोई अड़चन आई, बीमारी आई, तकलीफ आई--तो प्रार्थना।
एक छोटे से बच्चे से स्कूल में पूछा उसके अध्यापक ने कि बेटा, रात प्रार्थना करके सोते हो न? उसने कहा कि जरूर, रोज प्रार्थना करके सोता हूं।
और सुबह प्रार्थना करते हो कि नहीं? उस लड़के ने कहाः सुबह! सुबह किसलिए? रात तो अंधेरे में मुझे डर लगता है, इसलिए प्रार्थना करता हूं। सुबह तो रोशनी है, क्या मैं पागल हूं जो सुबह प्रार्थना करूं?
तुम्हारी प्रार्थनाएं भी उस लड़के की प्रार्थना से बहुत भिन्न नहीं हैं।
कल ही मैं एक पंडित के संबंध में पढ़ रहा था कि उसने अपने सोने के कमरे
की दीवाल पर, सुंदर अक्षरों में श्रेष्ठतम प्रार्थनाएं लिख रखी थीं--सभी धर्मों की! सर्व-धर्म-समभाव में उसका भरोसा था। और रोज रात सोने के पहले कहता थाः हे प्रभु! कृपा करके प्रार्थनाएं पढ़ लेना! और सो जाता था। होशियार आदमी, चालबाज आदमी! अब कौन झंझट रोज-रोज वही प्रार्थना दोहराने की करे! और फिर लिख तो दिया है। और परमात्मा के पास आंखें भी हैं और आशा की जाती है कि पढ़ा-लिखा भी होगा। "पढ़ लेना खुद ही" इतनी ही प्रार्थना करता था; हे प्रभु! प्रार्थना पढ़ लेना।
हमारी प्रार्थनाएं हमारी वासनाओं का ही प्रक्षेपण हैं। और हमारी प्रार्थनाएं हमारे अज्ञान से आपूरित हैं। हमारी प्रार्थनाएं प्रार्थनाएं नहीं हैं, प्रार्थनाओं का धोखा है।

कबीर ठीक कहते हैंः बिन मांगे जो देय!
उस परमात्मा की तरफ झुक भर जाओ और उसके मेघ चले आते हैं, उसकी वर्षा शुरू हो जाती है।
स्मरण रहे कि जैसे जब वर्षा के मेघ आषाढ़ में उठते हैं, वर्षा के जल से भरे, तो बरसने को उतने ही आतुर होते हैं, जितनी पृथ्वी पीने को प्यासी होती है। पृथ्वी की प्यास, आतुरता और बादलों की बरसने की आकांक्षा--समान है। सिर्फ पृथ्वी ही प्यासी नहीं होती, बादल भी आतुर होते हैं बरसने को! यह स्वाभाविक है।
तुम सिर्फ अपने हृदय को खोल दो। परमात्मा उतना ही बरसने को आतुर है। उसके पास बाढ़ है आनंद की। वह तुम्हारी तरफ हजार-हजार धाराओं में, सहस्र धाराओं में बहना चाहता है। सच तो यह है कि वह रोज तुम्हारे चारों तरफ परिभ्रमण करता है। तुम तो कभी-कभी मंदिर में जाकर परिक्रमा कर आते हो-- झूठी! तुम्हारा मंदिर झूठा, तुम्हारी परिक्रमा झूठी, क्योंकि तुम झूठे। तुम्हारा मंदिर तुम्हारा बनाया हुआ। तुम्हारे मंदिर के पंडित-पुजारी तुम्हारे नौकर। तुम्हारी प्रार्थनाएं इन्हीं नौकरों के द्वारा गढ़ी हुई प्रार्थनाएं हैं।
तुम अपनी प्रार्थना भी अपने हृदय से नहीं उठने देते! क्या फिकर कि प्रार्थना में सुंदर शब्द हों? फिकर होनी चाहिए कि प्रार्थना हृदय से जन्मी हो। क्या चिंता कि भाषा सौष्ठव हो, व्याकरण शुद्ध हो? चिंता होनी चाहिए एक कि हार्दिकता हो, सहजता हो, स्वस्फूर्त हो। तुतलाहट से भी काम चल जाएगा। सुंदर से सुंदर प्रार्थनाएं, गायत्री के मंत्र भी काम नहीं आएंगे; शुद्ध से शुद्ध उच्चारण भी साथ नहीं देगा। लेकिन अगर तुम्हारे प्राणों से ही उठा हुआ भाव है, फिर चाहे वह तुतलाहट जैसा ही क्यों न मालूम हो, टूटा- फूटा क्यों न हो--सार्थक है। इसलिए सार्थक है कि तुम्हें खोलता है। परमात्मा तो तुम्हारी परिक्रमा कर ही रहा है। तुम्हें खुला हुआ पा जाए तो प्रवेश कर ले। तुम बिल्कुल बंद हो। तुमने द्वार-दरवाजे, खिड़की, सब बंद कर रखे हैं। तुमने रंध्र भी नहीं छोड़ी है उसके प्रकाश के प्रवेश के लिए। तुम ऐसे भयभीत हो--कि तुमने जीवन को एक कब्र बना लिया है।

भर देते हो
बार-बार, प्रिय, करुणा की किरणों से
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।
भर देते हो!

मेरे अंतर में आते हो, देव, निरंतर,
कर जाते हो व्यथा-भार लघु
बार-बार कर-कंज बढ़ा कर;
भर देते हो! अंधकार में मेरा रोदन सिक्त धरा के अंचल को
करता है क्षण-क्षण--

कुसुम-कपोलों पर वे लोल शिशिर-कण
तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो।
भर देते हो!

तुम जरा खिड़की तो खोलो, झरोखा तो खोलो हृदय का--और उसका सूरज सदा तुम तैयार पाओगे! उसका सूरज क्या कभी डूबता है? उसकी सुगंध सदा तुम्हारे चारों तरफ डोल रही है। अवसर तो दो, उसके बादल बरसने को आतुर हैं! मगर तुमने अपने हृदय की पृथ्वी को छिपा रखा है। प्यासे हो, पीड़ित हो। मगर गलत दिशाओं में खोज रहे हो। भिखमंगों से मांग रहे हो। और जो दे सकता है, बिन मांगे दे सकता है, उसकी तरफ आंख नहीं उठाते! झोली फैलाओ, मांगो मत!
कबीर कहते हैं: मैं तो उसी का हो गया।

कहै कबीर मैं हौं वाही को,
होनी होय सो होय।
और कबीर कहते हैं, अब मैं यह भी नहीं कहता कि ऐसा हो, वैसा हो; क्योंकि उसमें तो मांग आ जाएगी। फिर तो नियंता मैं, फिर तो परमात्मा पर मैंने शर्त लगा दी। फिर तो प्रार्थना में भी शर्तबंदी हो गई। फिर तो प्रार्थना भी सौदा हो गई। नहीं कोई शर्त, नहीं कोई आकांक्षा। "होनी होय सो होय!" जो उसे करना हो, करे। वह जो करेगा, वही शुभ है। यह भक्त का भाव है।
अभक्त कहता हैः ऐसा करो, ऐसा मत करना। ऐसा करोगे, तो ही मैं तुम्हें मानूंगा। ऐसा नहीं करोगे, तो मैं मानने वाला नहीं हूं।
एक मित्र मेरे पास आए। कोई पंद्रह वर्ष पहले की बात है। कहने लगेः मुझे ईश्वर पर भरोसा आ गया है। मैंने पूछाः कैसे भरोसा आया? किस कारण भरोसा आया? उन्होंने कहा कि मैंने अल्टीमेटम दे दिया था। अल्टीमेटम!
... कि अगर पंद्रह दिन में मेरे लड़के की नौकरी नहीं लगी, तो समझ लेना कि फिर कभी जीवन में न पूजा करूंगा, न कभी पाठ करूंगा। समझ लेना कि मान लूंगा कि तुम हो ही नहीं! यह सब पाखंड है, परमात्मा के नाम पर जालसाजों ने फैलाया है। कोई परमात्मा नहीं है। और ठीक पंद्रह दिन के भीतर लड़के को नौकरी मिल गई। अब तो पक्का भरोसा आ गया है कि परमात्मा है।
मैंने कहा कि अब तुम एक काम करना, अब दुबारा अल्टीमेटम मत देना, क्योंकि इस बार तो बात बन गई। लग गया सो तीर, नहीं लगता तो तुक्का हो जाता। संयोग की ही बात है, क्योंकि मुझे पक्का पता है कि परमात्मा ने तुम्हारे लड़के की नौकरी नहीं लगवाई है।
उन्होंने कहाः आप कैसे कह सकते हैं?
मैंने कहाः मैं भी प्रार्थना कर रहा हूं। मैं उसको जानता हूं। लड़के
की नौकरी लग गई, यह संयोग की बात है। अब तुम दुबारा यह मत करना, नहीं तो तुम्हारा सब धर्म, तुम्हारी धार्मिकता, यह जो अहोभाव है, सब धूल-धूसरित हो जाएगा। और अगर तुम्हें परीक्षा करनी हो तो एक बार कोशिश कर लो। तुम्हारी पत्नी बहुत दिन से बीमार है, एक दफे और अल्टीमेटम दे दो।
और वही हुआ जो होना था, आखिर उन्होंने अल्टीमेटम दिया; जब एक दफा अल्टीमेटम सफल हो गया... । पत्नी ठीक नहीं हुई, उलटे मर गई। वे मेरे पास आए कि आपने ठीक कहा था। मेरी सारी श्रद्धा खंडित हो गई। मैंने तो कहा था बचाओ और मेरी पत्नी खतम ही कर दी! मेरी आस्तिकता अस्तव्यस्त हो गई है!
मैंने कहाः तुम्हारी आस्तिकता आस्तिकता थी ही नहीं। जो ऐसी सस्ती बातों पर टिकी हो, ऐसी आस्तिकता आस्तिकता होती है? --मेरे लड़के को नौकरी मिल जाए, कि मेरी पत्नी की बीमारी ठीक हो जाए! इस तरह कहीं कोई आस्तिक होता है! इनको तुम आस्तिक कहते हो!
मगर लोगों का भी क्या कसूर! तुम्हारे धर्मशास्त्र भी इसी तरह की मूढ़ताओं से भरे हुए हैं। जिन वेदों को तुम इतना पूजते हो, कभी उनके पन्ने भी पलटो और तुम चकित हो जाओगे कि जिन ऋषि-महर्षियों का गुणगान करते तुम थकते नहीं, उनकी प्रार्थनाओं में क्या है? उनकी प्रार्थनाएं ऐसी अभद्र हैं, ऐसी क्षुद्र हैं, ऐसी ओछी हैं, कि ऋषि-मुनि तो क्या, साधारण-जन भी ऐसी प्रार्थना करने में झिझकता। कोई ऋषि प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभु, मेरे खेत में ज्यादा वर्षा हो और मेरे दुश्मन के खेत में ज्यादा वर्षा न हो! दोनों के खेत आस-पास होंगे। दुश्मन अक्सर पड़ोसी होता है। दुश्मन कोई बहुत दूर तो होते नहीं। दुश्मनी करने के लिए भी तो थोड़ी निकटता चाहिए। पड़ोसी और दुश्मन अक्सर एक ही आदमी का नाम होता है। इनके खेत में ज्यादा वर्षा और पड़ोसी के खेत में कम वर्षा! क्षुद्रता की भी हद होती है। कोई ऋषि प्रार्थना करता है कि हे प्रभु, मेरी गाय के थन में दूध बढ़ जाए और मेरे दुश्मनों की गाय के थन बिल्कुल सूख जाएं!
इनको तुम प्रार्थनाएं कहोगे!
वेदों में नब्बे प्रतिशत से ज्यादा इसी तरह का कचरा है। इसे कचरा कहो
तो लोगों को दुख होता है। उनकी धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंच गई! मगर मजबूरी है, कचरे को कचरा कहना ही होगा। अगर तुम्हारी धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंचती है तो कृपा करके अपनी धार्मिक भावनाओं को जरा मजबूत बनाओ।

मुझ पर न मालूम कितने मुकदमे लोग चला देते हैं। अभी किसी ने छपरा में, बिहार में... मैं न कभी छपरा गया... किसी ने मुकदमा चला दिया है कि उसकी धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंच गई। समन्स आए हैं कि मुझे छपरा की अदालत में मौजूद होना चाहिए।
धार्मिक भावना को चोट पहुंच जाए, ऐसी लचर-पचर, नपुंसक धार्मिक भावना रखते ही क्यों हो? धार्मिक भावना में कुछ तो बल होना चाहिए। मगर इस तरह के आधारों पर खड़ी हुई धार्मिक भावना में कोई दम तो होती नहीं; जरा एक लंगड़ी मार दो, चारों खाने चित्त! धार्मिक भावना क्या है? पैर इत्यादि तो है ही नहीं, हो सकता है लकड़ी का पैर हो, शायद किसी संयोग में काम आ जाए लकड़ी का पैर लेकिन परमात्मा तक नहीं पहुंचा पाएगा। ये झूठे पैर वहां काम नहीं आ सकते। तुम्हारी प्रार्थनाएं झूठी, तुम्हारी भावनाएं झूठी और फिर तुम सोचते हो कि बात क्या है, कहां कमी रह गई, कहां चूक हो रही है! और तुम जब पूछते हो अपने पंडितों से, अपने पुजारियों से, अपने पुरोहितों से, तो वे तो होशियार हो गए हैं सदियों-सदियों तुम्हारे जैसे ही बेईमानों के साथ व्यवहार करते-करते। तो वे कहते हैं: पिछले जन्मों के कर्म, कर्मों का भार, भाग्य, विधाता, कोई जल्दी थोड़े ही होता है; जन्म-जन्म लगेंगे, करते रहो प्रार्थना! "रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान।" घिसते रहो रस्सी को, सिल पर भी निशान पड़ जाएगा। "करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।"
मैं तो नहीं समझता। जड़मति कितना ही अभ्यास करे, और जड़मति हो जाएगा। जड़मति कैसे अभ्यास करके सुजान हो जाएगा, यह तो जरा सोचो! जड़मति ही तो अभ्यास करेगा न! जड़ मति से ही तो अभ्यास करेगा न! जड़ मति ही तो अभ्यास करेगा, तो जड़मति अभ्यास करने से सुजान कैसे हो जाएगा? रस्सी आने-जाने से भला चट्टान पर निशान पड़ जाए, वह तो बात जंच सकती है, लेकिन अभ्यास करने से जड़मति सुजान नहीं होता।
अभ्यास के पहले सम्यक बोध चाहिए। बीज ठीक चाहिए, तुम लाख उपाय करो, नीम के बीज बोओगे और कितना ही अभ्यास करो, कितना ही पानी सींचो, कितना ही खाद डालो, इससे कुछ आम पैदा नहीं हो जाएंगे।
प्रार्थनाएं लोगों की झूठी हैं, इसलिए इस संसार में परमात्मा का प्रमाण नहीं मिलता। और प्रार्थना के झूठे होने का बुनियादी आधार है-- तुम्हारी मांग। जब भी तुम कुछ मांगो तो समझना प्रार्थना झूठी। फिर प्रार्थना सच्ची कब होगी? सच्ची प्रार्थना बिन मांगे होती है। सिर्फ अपना समर्पण। अपने को दो, उससे मांगना क्या है? अपने को देना है।
इसलिए जब मैं कहता हूं झोली फैला दो, तो मेरा अर्थ है कि कह दो कि मैं कुछ भी नहीं हूं, मात्र एकझोली हूं खाली। अब जो तेरी मर्जी! खाली रखना हो खाली रख, तो भी मैं नाचूंगा, क्योंकि तेरी मर्जी से खाली हूं। भरना हो तो भर दे, तो भी मैं नाचूंगा, क्योंकि तेरी मर्जी से भरा हूं। अब खालीपन में और भरेपन में कुछ भेद नहीं।
जीसस ने सूली पर अपनी अंतिम प्रार्थना में कहाः हे प्रभु, तेरी मर्जी पूरी हो!
कबीर के वचन का वही अर्थ है--
कहै कबीर मैं हौं वाही को,
होनी होय सो होय।
अब तो मैं उसका हो गया हूं, जो बिना मांगे देता है। अब जो होना हो वह हो। अब मैं हर हाल राजी हूं। अब मेरा अपना कोई संकल्प नहीं है। मैंने अपना सारा संकल्प उसी के चरणों में रख दिया है। अब मैं हूं ही नहीं। अब मेरे हाथों में वही है, मेरे पैरों में वही है। वही मेरे हृदय में धड़कता है, वही मेरे खून में गतिमान है, वही मुझमें बोले, वही मुझ में चुप हो, मैं तो मिट गया! मैंने तो अपने को विदा दे दी, मैंने अपने को बाद दे दी।
होनी होय सो होय।
इस मंत्र को ख्याल रखना। इस एक मंत्र के द्वारा ही तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो सकती है। सिर्फ यह छोटा सा मंत्र--होनी होय सो होय! तुम्हारी सब गायत्रियां फीकी हैं। इतना कह सको तो बस पर्याप्त है। फिर तुम्हारे श्वास-श्वास से गायत्री उठेगी, गीता उठेगी, कुरान जगेगा।

चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहिं सोच यह जिय की।।
कबीर कहते हैंः मैं उस प्यारे की खोज में निकला। मगर कहीं हृदय में,
कोई गहरे में बात एक खटकती रही।
चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहिं सोच यह जिय की।।
रहे नित पास ही मेरे।
वह तो पास है।
न पाऊं यार को हेरे।
यहां वहां कितने ही हेरे-फेरे मारूं, उस यार को नहीं पा सकूंगा। यह बात मेरे प्राणों के प्राण में गूंजती ही रही है। तुम्हारे प्राणों में भी गूंज रही है। सुनो तब न! तुम बाहर के शोरगुल से इतने भरे हो कि भीतर की धीमी-धीमी आवाज कि भीतर का कल-कल नाद सुनाई नहीं पड़ता।
चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहीं सोच यह जिय की।।
कबीर कहते हैंः मैं खोजने तो चला, क्योंकि हम यही सुनते हैं कि परमात्मा को खोजना पड़ेगा--काबा में, काशी में, कैलाश में, गिरनार में, कहीं परमात्मा को खोजना पड़ेगा। परमात्मा को खोज बनाओ, खोजो। तो चला। कबीर कहते हैंः मैं खोजने चला। बहुत खोजा, मगर भीतर एक बात मेरे खटकती ही रही, कहीं एक बात मेरे हृदय में गूंजती ही रही। जिसने मेरा कभी पीछा न छोड़ा और वह बात यह थी कि--रहे नित पास ही मेरे। न पाऊं यार को हेरे। कोई मेरे भीतर कहता ही रहाः पागल, कहां जा रहा है? मैं तो तेरे भीतर बैठा हूं। मैं तो तेरे प्राणों के प्राणों में विराजमान हूं। तू मेरा मंदिर। तू जा कहां रहा है? ऐसी धीमी-धीमी आवाज आती रही, धीरे-धीरे समझ में आने लगी। धीरे-धीरे साफ हुई।
बिकल चहुं ओर को धाऊं। तबहु नहिं कंत को पाऊं।।
कोई कहता ही रहा; मैंने सुना, नहीं सुना, मगर कोई कहता ही रहा। कोई अंतरवाणी भीतर गूंजती ही रही कि चाहे कितना ही भागूं-दौड़ूं, आपूं-धापूं-- तबहु नहीं कंत को पाऊं--फिर भी उस प्यारे को नहीं पा सकूंगा।
धरों केहि भांति सों धीरा। गयौ गिर हाथ से हीरा।।
और अपने को कितना ही धीरज बंधाऊं, बंधाए-बंधाए भी धीरज बंधता नहीं, क्योंकि हाथ से मेरे हीरा गिर गया है। जिसका हीरा गिर गया है, उसको तुम लाख समझाओ, लाख सांत्वना धराओ, तुम्हारे शब्द सुन लेता है, मगर उस पर कोई परिणाम नहीं होता।
कबीर कहते हैंः जब तक उसको पा न लूं, तब तक धीरज नहीं। साधु-संत समझाते हैंः धीरज रखो, धैर्य रखो, संतोष रखो। मगर कैसा संतोष, कैसा धीरज? जब तक उस प्यारे से मिलन न हो जाए, तब तक यह असंभव है, यह हो नहीं सकता। हां, ठीक है, बात जंचती है कि संतोष अच्छा है। कहते हैं, संतोषी सदा सुखी। तर्क समझ में आता है। मगर जिसके हाथ से हीरा गिर गया है, जिसका प्राण-प्यारा खो गया है, जिसको अपना भी पता नहीं है, वह किस भांति धीरज रखे?
ऐसी ही आवाज तुम्हारे भीतर भी मौजूद है, सबके भीतर मौजूद है। यह अंतरनाद हम जन्म के साथ ही लेकर आए हैं। यह अंतरनाद सदियों-सदियों से हमारे साथ है। हम सुनें न सुनें, लेकिन परमात्मा पुकारता चला जाता है। यह प्रेम एक-तरफा नहीं है। कोई हम ही उसके प्रेम में दीवाने होते हैं, ऐसा नहीं है; वह भी हमारे प्रेम में दीवाना है। यह आग एक ही तरफ नहीं लगी है; यह आग दोनों तरफ लगी है।

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है! हां, दीपक भी जलता है!

सीस हिला कर दीपक कहता--
"बंधु, वृथा ही तू क्यों दहता?"
पर पतंग पड़ कर ही रहता! कितनी विह्वलता है। दोनों ओर प्रेम पलता है।

बच कर हाय! पतंग मरे क्या?

प्रणय छोड़ कर प्राण धरे क्या?
जले नहीं तो मरा करे क्या? क्या यह असफलता है? दोनों ओर प्रेम पलता है?

कहता है पतंग मन मारे,
"तुम महान, मैं लघु, पर प्यारे,
क्यों न मरण भी हाथ हमारे? शरण किसे छलता है।" दोनों ओर प्रेम पलता है।

दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली,
किंतु पतंग-भाग्य लिपि काली, किसका वश चलता है? दोनों ओर प्रेम पलता है।

जगती वणिग्वृत्ति है रखती,
उसे चाहती जिससे चखती,
काम नहीं, परिणाम निरखती, मुझे यही खलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।

सखि, पतंग भी जलता है! हां, दीपक भी जलता है!

पतंग ही नहीं जलता, दीपक भी जलता है। इसके पहले कि पतंग जले, दीपक को जलना होता है। इसके पहले कि तुम परमात्मा को पुकारो, वह तुम्हें पुकार रहा है। वह दीपक है, हम पतंग हैं। दोनों ओर प्रेम पलता है। इसलिए तुम्हारे भीतर अहर्निश उसकी पुकार आती रहती है--किसी अज्ञात मार्ग से! लेकिन तुम भीतर देखते नहीं, भीतर सुनते नहीं; बाहर का शोरगुल तुम्हें इस तरह घेरे हुए है; विचारों, वासनाओं के प्रचंड तूफान में तुम ऐसे घिरे हो। कहां फुरसत, कहां समय, कहां अवकाश कि घड़ी भर शांत बैठो, कि घड़ी भर भीतर झांको! कटी जब नैन की झाईं। लख्यौं तब गगन में साईं।।
कबीर कहते हैंः जब आंख की जाली कटी... आंख की जाली यानी जो बाहर देखने
की यह जो जन्मों-जन्मों की आदत थी, यह जो बाहर देखने का ही अभ्यास हो गया था और भीतर देखने की भाषा भूल गई थी।
कटी जब नैन की झाईं। लख्यौं तब गगन में साईं।।
तब भीतर के ही आकाश में--गगन भीतर के आकाश की तरफ इशारा है--शून्य गगन में, उस भीतर के शांत शून्य निराकार में--लख्यौं तब गगन में साईं--तब मालिक वहां भीतर विराजमान देखा। कितने गए काबा, कितने गए काशी, कहां-कहां नहीं भटके! नहीं पाया उसे। और जब पाया तो अपने भीतर पाया।
कबीरशब्द कहि त्रासा। नयन में यार को वासा।।
खूब भटके, व्यर्थ भटके। शब्दों ने खूब भरमाया, शब्दों ने खूब त्रास दिया।
नयन में यार को वासा।
और जिसे खोजते थे वह आंखों के भीतर ही बसा था।
प्रत्येक मनुष्य "उसका" मंदिर है। कहीं और मंदिर खोजने मत जाना, नहीं
तो असली मंदिर से वंचित रह जाओगे। सुनना हो वेद को, कुरान को, तो सुनो भीतर। वहीं से उठते हैं उपनिषद, वहीं से उठती है वास्तविक भगवत-वाणी! और जिसने वहां नहीं सुनी वह लाख शब्दों को याद कर ले, भगवत-गीता कंठस्थ कर ले, बस वह तोते के जैसी बात है, उसका कोई भी मूल्य नहीं है।
तन-मन-धन बाजी लागी हो,
और जिसको भीतर जाना हो उसे जरा साहस जुटाना पड़ता है। क्योंकि उस शून्य गगन में प्रवेश करना, इस जीवन का सबसे बड़ा साहस है, दुस्साहस है। तन-मन-धन बाजी लागी हो। सब बाजी पर लग जाता है।
संन्यास का अर्थ त्याग नहीं है; संन्यास का अर्थ बाजी है। संन्यास का अर्थ भागना नहीं है; संन्यास का अर्थ सब दांव पर लगा देना है।

तन-मन-धन बाजी लागी हो,
चौपड़ खेलूं पीव से रे, तन-मन बाजी लगाया।
कबीर कहते हैंः चौपड़ खेल रहा हूं प्यारे के साथ, सब दांव पर लगा दिया है। और बड़ी अदभुत बात कहते हैं, सम्हाल कर रख लेना। कोहिनूरों में भी तौलो तो भी तौली न जा सकेगी।
हारी तो पिय की भई रे, जीती तो पिय मोर हो।
यह अदभुत बाजी है, यहां हारो तो भी जीत होती है, जीतो तो भी जीत होती है! यहां हार होती ही नहीं। प्रेम में कभी कोई हारा है? प्रेम में जो हारा सो जीता जो जीता सो तो जीता ही। हारी तो पिय की भई रे। अगर मैं हार गया तो सब कुछ प्रिय हो जाएगा, तन-मन-धन सब लगा दिया है, कुछ पीछे बचाया नहीं। पूरा-पूरा दांव फर रख दिया है। हार गया तो मैं सब कुछ उसका हो जाऊंगा और इससे बड़ा और क्या सौभाग्य--जीती तो पिय मोर हो! और उसने भी कुछ बाजी में कमी नहीं की है, पूरा का पूरा दांव पर वह भी लगा है। अगर मैं जीत गया तो प्यारा मेरा हो जाएगा। दोनों हालत में दो मिट जाएंगे, एक ही बचेगा। फिर चाहे प्यारा बचे या मैं बचूं, क्या फर्क पड़ता है! कहने की बात है फिर। ज्ञानियों ने कहाः अहं ब्रह्मास्मि। ज्ञानी कहते हैंः मैं ही बच गया, परमात्मा मेरे साथ एक हो गया। महावीर और बुद्ध यही कहते हैं कि आत्मा ही बच गई, परमात्मा उसी में लीन हो गया। और भक्त कहते हैंः आत्मा खो गई, परमात्मा में लीन हो गई। ये कहने के भेद हैं। नदी सागर में उतरी, अब तुम चाहो तो कह दो कि नदी सागर हो गई और चाहो तो यह कह दो कि सागर नदी हो गया। तुम्हारी मौज। असली बात यह है कि अब दो नहीं रहे, एक बचा। अब एक को तुम क्या कहना चाहते हो, तुम्हारी मर्जी। नाम का ही भेद है।
भक्त कहते हैंः मैं मिट जाता है, तू बचता है। ज्ञानी कहते हैंः तू मिट जाता है, मैं बचता है। सच तो यह हैः न मैं बचता है, न तू बचता है; जो बचता है उसे अब मैं और तू में कहने का कोई उपाय नहीं। वह अव्याख्य है, अनिर्वचनीय है। हारी तो पिय की भई रे, जीती तो पिय मोर हो!
चौसरिया के खेल में रे, जुग्ग मिलन की आस।
चौसर के खेल में जब दो गोटियां एक जगह इकट्ठी हो जाती हैं, उसकी आशा में ही भक्त भीतर-भीतर उतरता जाता है। लगाता जाता है सब दांव पर।
चौसरिया के खेल में रे, जुग्ग मिलन की आस।
बस एक ही आशा है कि कोई घड़ी तो आएगी जब दोनों गोटें एक जगह मिल जाएंगी; जहां मैं और तू का मिलन होगा।
नर्द अकेली रह गई रे, नहिं जीवन की आस हो।
अगर गोटी अकेली रह गई तो फिर जीवन व्यर्थ है, फिर जीवन में कुछ आशा नहीं है। जीवन में सारी आशा परमात्मा की मौजूदगी से है और जीवन का सारा रस हम कितने उससे ओतप्रोत हो जाएं इसमें छिपा है। जीवन का सारा अर्थ, महिमा परमात्मा में डुबकी लगाने में है। अपने को मिटा दो तो तुम हो जाओगे। ऐसा उलटा सूत्र है जीवन का, ऐसा महागणित है जीवन का!
चार बरन घर एक है रे, भांति भांति के लोग।
यहां इतने वर्ण हैं, चार वर्ण हैं; मगर घर एक है। चाहे शूद्र हो, चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य हो, इनमें कुछ भेद है क्या? ये घरों के भेद हैं। और घरों में क्या भेद? सब मिट्टी के भांडे हैं। तुम क्या किसी हड्डी को, डाक्टर के पास ले जाकर जांच करवा सकते हो कि यह शूद्र की है या ब्राह्मण की? कोई डाक्टर दुनिया का बताने में समर्थ नहीं हो सकता कि यह शूद्र की हड्डी है या ब्राह्मण की। शूद्र और ब्राह्मण की तो फिकर छोड़ दो, कोई डाक्टर यह भी नहीं बता सकता कि यह हड्डी राम की है, कृष्ण की है, बुद्ध की है, कि रावण की है, कंस की है कि जुदास की है, यह भी नहीं बता सकता। यह हड्डी किसी संत की है, महात्मा की है कि हत्यारे की है, यह भी नहीं बता सकता। घर तो घर है। घर के भीतर कौन रहा, इससे घर में कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हम घर को बड़ा महत्व दे रहे हैं, बड़ा शोरगुल मचाया हुआ है।
शरीर को इतना मूल्य दे दिया है! और इस मूल्य को हम धार्मिकता कहते हैं। लोगों को चार हिस्सों में बांट दिया है। बीसवीं सदी में भी, अभी हरिजन जलाए जाते हैं, जिंदा! और यह भारत जैसे महान धार्मिक देश में घटता

है। धर्म के नाम पर भी कैसे-कैसे पाप पलते हैं! सुविधा से पलते हैं। अच्छी आड़ मिल जाती है, बहाना मिल जाता है।
चार बरन घर एक है रे, भांति भांति के लोग।
ऊपर-ऊपर के भेद हैं, भीतर तो एक ही बसा है।
मनसा-बाचा कर्मना कोई, प्रीति निबाहो ओर हो।
इन छोटी-छोटी बातों को धर्म मत समझ लेना। असली धर्म तो हैः मनसा-बाचा कर्मना, प्रीति को निबाहना। मन से, वचन से, कर्म से जो परमात्मा के प्रति अपनी प्रीति को निभाए; जो ऐसे जिए, ऐसे उठे, ऐसे बैठे, ऐसे बोले, जिसके जीवन के अंग-अंग में परमात्मा की मौजूदगी की छाप हो। जैसे परमात्मा प्रतिक्षण उसके साथ है, छाया की तरह साथ है।
मनसा-बाचा कर्मना कोई, प्रीति निबाहो ओर हो।
लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पे अटकी आय।
"पौ" कहते हैं: जीत का दांव-विशेष। वह घड़ी खेल की जब इस पार या उस पार
तय हो जाता है।
लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पे अटकी आय।
मनुष्य का यह जो जन्म है, यह पौ की घड़ी है। कितनी यात्राओं के बाद यह अपूर्व अवसर मिला है!
जो अबके पौ ना पड़ी रे, फिर चौरासी जाय हो।
अगर अबकी बार भी न जीते तो फिर लंबी यात्रा है। फिर लंबी भटकन है।

वह प्रदीप जो दीख रहा है झिलमिल, दूर नहीं है;
थक कर बैठ गए क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है।
चिंगारी बन गई लहू की
बूंद गिरी जो पग से;
चमक रहे, पीछे मुड़ देखो,
चरण-चिह्न जगमग-से।
शुरू हुई आराध्य-भूमि यह,
क्लांति नहीं रे राही;
और नहीं तो पांव लगे हैं
क्यों पड़ने डगमग-से?
बाकी होश तभी तक, जब तक जलता तूर नहीं है; थक कर बैठ गए क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है।

अपनी हड्डी की मशाल से
हृदय चीरते तम का,
सारी रात चले तुम दुख
झेलते कुलिश निर्मम का।
एक खेय है शेष, किसी विध
पार उसे कर आओ;
वह देखो उस पार चमकता
है मंदिर प्रियतम का।
आकर इतना पास फिरे, वह सच्चा शूर नहीं है, थक कर बैठ गए क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है।

दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य-प्रकाश तुम्हारा,
लिखा जा चुका अनल-अक्षरों
में इतिहास तुम्हारा।
जिस मिट्टी ने लहू पिया,
वह फूल खिलाएगी ही,
अंबर पर घन बन छाएगा
ही उच्छ्वास तुम्हारा।
और अधिक ले जांच, देवता इतना क्रूर नहीं है।

थक कर बैठ गए क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है।

मनुष्य से निकटतम है परमात्मा। क्यों? क्योंकि अकेला मनुष्य ही एकमात्र प्राणी है जो अंतर्मुखी हो सकता है। और सारे पशु-पक्षी हैं, उनमें भी इतना ही परमात्मा है, जितना हम में है, लेकिन वे अंतर्मुखी नहीं हो सकते, वे भीतर नहीं मुड़ सकते। मनुष्यों में भी सभी मनुष्य कहां भीतर मुड़ पाते हैं। कभी लाखों-करोड़ों में एकाध मुड़ता है। कभी कोई एक बुद्ध, कोई कबीर, कोई नानक, कोई दादू, कोई रैदास, कोई मलूक, कभी एकाध! लेकिन जो भीतर मुड़ता है उसने ही मनुष्य जीवन का ठीक-ठीक उपयोग किया। उस भीतर मुड़ने को ही मैं ध्यान कहता हूं। प्रार्थना चाहो उसे प्रार्थना कहो। उस भीतर मुड़ने को ही जो अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है, उसे मैं संन्यासी कहता हूं। नहीं कि वह भाग जाता है संसार से, बल्कि जीवन को एक दिशा दे देता है--एक गंतव्य, एक लक्ष्य। सारी जीवन-ऊर्जा एक तीर की तरह भीतर की यात्रा पर निकल पड़ती है। अपनी खोज में जो संलग्न हो जाता है, वही संन्यासी है।
और मनुष्य-जीवन एकमात्र जीवन है, जहां से हम भीतर की यात्रा कर सकते हैं। यह एक चौराहा है जहां से भीतर की तरफ रास्ता जाता है। चूक गए यह चौराहा तो फिर न मालूम कितने-कितने जन्मों के बाद मिले यह अवसर, मिले न मिले! फिर बात बहुत लंबी हो जाएगी। इतने करीब आकर गंतव्य के चूकना उचित नहीं, नासमझी है।
लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पे अटकी आय।
अब तो बिल्कुल आ गए किनारे, यह लगी नाव, यह रहा किनारा। अब भटकते हो?
सब तूफान पार कर आए, अंधेरे को पार कर आए, सुबह होने के करीब है, और अब सोने की तैयारी कर रहे हो? अब सूरज फूटने को है, भोर होने लगी और तुम चादर तान कर सोने का इंतजाम कर रहे हो?
जो अबके पौ ना पड़ी रे, फिर चौरासी जाय हो।
कहैं कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार।
धर्मदास कबीर के एक शिष्य हैं, जिनको संबोधन करके ये वचन उन्होंने कहे हैं।
कहै कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार।
बात जीत ही गई। निन्यानबे प्रतिशत जीत गई--मनुष्य होने में ही निन्यानबे प्रतिशत तो तुम जीत गए। बस एक प्रतिशत जीत के लिए चूकना है? जरा सी बात बची है, जरा सा उपाय, थोड़ा सा श्रम, थोड़ा सा बोध--और क्रांति
घट जाएगी। सब मौजूद है। तेल मौजूद है, बाती मौजूद है, दीया मौजूद है, चकमक पत्थर मौजूद है; जरा दोनों पत्थरों को रगड़ देना है। जरा सी रगड़--और आग पैदा हो जाएगी, और दीया जल जाएगा और सदियों-सदियों का अंधेरा कट जाएगा। कहते हैं कबीरः मत हारो ऐसी जीती बाजी को।
मरा हूं हजार मरण
पाई तब चरण-शरण।

फैला जो तिमिर-जाल
कट-कट कर रहा काल,
अंसुओं के अंशुमाल,
पड़े अमित सिताभरण।
मरा हूं हजार मरण
पाई तब चरण-शरण।

जल-कलकल-नाद बढ़ा
अंतर्हित हर्ष कढ़ा,
विश्व उसी को उमड़ा,
हुए चारु-करण सरण।
मरा हूं हजार मरण
पाई तब चरण-शरण।

यह अवसर हजारों बार मर कर मिला है और यूं चूके जाते हो!
बुद्ध एक कहानी कहा करते थे। वे कहते थेः एक आदमी को एक सम्राट ने कारागृह में बंद कर दिया। लेकिन उस आदमी ने सम्राट की बड़ी सेवाएं की थीं और सम्राट दुखी था कि उसे बंद करना पड़ा, क्योंकि उसने कुछ दगाबाजी की थी। मगर हजारों उसने सम्राट के उपकार भी किए थे, तो उसे एक विशेष तरह की सजा दी गई। सम्राट का एक महल था, जिसमें एक हजार दरवाजे थे। उस आदमी की आंख पर पट्टी बांध दी गई और उससे कहा गया कि तू महल में घूम, नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद कर दिए हैं और एक दरवाजा खुला है, अगर तू वह दरवाजा खोज लेगा और बाहर निकल आएगा, तो तू मुक्त है।
वह आदमी आंख पर पट्टी बांधे टटोलता-टटोलता महल में भटकता है। नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद हैं। सोच सकते हो तुम उसकी हालत, थक जाता है, परेशान हो जाता है। मालूम है कि एक दरवाजा खुला है, और मालूम है कि हर घड़ी वह दरवाजा करीब आ रहा है, क्योंकि जितने दरवाजे बंद छूट गए पीछे उतने कम हो गए। ओर जब वह दरवाजा उसके करीब आया तो उसके सिर पर एक मक्खी आ बैठी, वह उस मक्खी को उड़ाने में दरवाजा पार कर गया--बिना टटोले। फिर नौ सौ निन्यानबे दरवाजे! फिर लंबी यात्रा! बस आया-आया और चूक गया।
बुद्ध कहते थे, ऐसी ही हालत मनुष्य की है। मनुष्य-जीवन एक खुला दरवाजा है। और कितने बंद दरवाजों को टटोल-टटोल कर तुम मनुष्य हो पाए! कहीं छोटी- मोटी बातों में मत चूक जाना। सिर पर मक्खी बैठ गई और चूक गए! और ऐसी ही बातों में लोग चूक कर रहे हैं। कोई धन में अटक गया है; वह कोई सिर पर बैठी मक्खी से ज्यादा नहीं है मामला। कम भला हो ज्यादा तो नहीं है। कोई पद में चूका जा रहा है। कोई गरुर में अकड़ा हुआ है। छोटी-छोटी बातें, दो कौड़ी की बातें, जिनका कोई मूल्य नहीं।
समझो कि यह आदमी आ गया फिर नौ सौ निन्यानबे चक्कर लगा कर और कोई आदमी गाली दे दे उसको जब दरवाजा खुला उसके करीब आता हो; बस, क्रोध में भन्ना गया; उसी भन्नाने में निकल गया। फिर नौ सौ निन्यानबे दरवाजे, फिर लंबी यात्रा है। और कई तरह की अड़चनें आ सकती हैं। और लोग ऐसे मूढ़ हैं कि उनके लिए चूकना आसान, चूकने का अभ्यास पुराना है। इसलिए चूकना उनका स्वभाव हो गया है। जगा रहे हैं कबीर--
कहैं कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार।
अबके सुरत चढ़ाय दे रे, सोई सुहागिन नार हो।
अब की हो जाने दे विवाह, अब की रच जाने दे, पड़ जाने दे भांवर। जरा सी ही बात करनी है: सुरत को चढ़ा देना है ऊपर, स्मृति को, बोध को जगा देना है! बुद्ध ने जिसको सम्यक स्मृति कहा है--"सम्मासति"--उसी को कबीर ने सुरति कहा है। सुरति का अर्थ होता है--स्मरण। स्मरण इस बात का कि मैं कौन हूं। स्मरण अपने स्वभाव का, अपने स्वरूप का।
अबके सुरत चढ़ाय दे रे, सोई सुहागिन नार हो।
अगर चढ़ जाए अबकी सुरत तो जन्मों-जन्मों का खोया सुहाग फिर से मिल जाए, प्यारा फिर से मिल जाए। फिर भांवर पड़े--शाश्वत के साथ, सनातन के साथ, अमृत के साथ! जागो, बहुत सो चुके हो!
बीती विभावरी जाग री!
अंबर पनघट में डुबो रही
तारा-घट उषा नागरी।

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा।
लो, यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस-गागरी।

अधरों में राग अमंद पिए,
अलकों में मलयज बंद किए,
तू अब तक सोई है आली!
आंखों में भरे विहाग री!

बीती विभावरी जाग री!
अंबर पनघट में डुबो रही
तारा-घट उषा नागरी।

सुबह आ गई। मनुष्य का जन्म भोर का क्षण है। अभी चाहो और जाग जाओ, तो सूरज से मिलन हो जाए। कहीं दिन को भी सोने में मत गंवा देना। रात सोने में गई, क्षमा किया जा सकता है। लेकिन दिन भी सोने में चला जाए तो अक्षम्य है। और जो बीत गया, उसकी फिकर छोड़ो। जन्मों-जन्मों में जो भटकाव रहे, उनकी चिंताओं में न पड़ो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः पिछले जन्मों की याद कैसे आए? मैं उनसे कहता हूं कि अभी तुम इस जन्म में क्या तुम्हारे जीवन का स्रोत है, उसकी याद करने में लगो। क्या करोगे जान कर कि पहले तुम एक बार कुत्ते थे कि बिल्ली थे? जान भी लोगे तो क्या करोगे, कि एक बार वृक्ष थे कि हाथी थे कि घोड़े थे? जान भी लोगे तो क्या करोगे? स्मृति भी आ जाएगी तो क्या खाक उसका कोई मूल्य है! पीछे की क्या फिकर? इतना पक्का है कि तुम यहां अनंतकाल से हो, क्योंकि जीवन में कुछ नष्ट नहीं होता। यहां केवल रूप बदलते हैं, आकार बदलते हैं, कुछ भी नष्ट नहीं होता। पानी भाप बन जाता है तो भी कुछ नष्ट नहीं होता। फिर बदली घिरेगी, फिर वर्षा आएगी, फिर पानी बरस जाएगा, फिर नदियां बहेंगी, फिर समुद्र में गिरेगा, फिर भाप बनेगा, फिर हिमालय पर बरसेगा। वर्तुलाकार है। फिर गंगा से बहेगा, फिर पहुंच जाएगा सागर, फिर उठेगा आकाश में।
तुम घूमते रहे इस चक्कर में। अब इससे क्या फर्क पड़ता है कि इसका विस्तार जानो? इसका विस्तार जानने से कुछ प्रयोजन नहीं और विस्तार इतना बड़ा है कि जानने में कहीं इस जीवन को मत गंवा देना! विस्तार इतना बड़ा है, फाइलों पर फाइलें हैं कि तुम अगर उनमें खो गए और उसका हिसाब-किताब लगाने में बैठ गए तो यह जीवन छोटा सा है, यह यूं चला जाएगा कि पता न चलेगा, यह आंख की पलक झपकते निकल जाएगा।
कल की फिकर छोड़ो। कुछ को फिकर आने वाले कल की है। कुछ आ जाते हैं, वे कहते हैं कि मृत्यु के बाद क्या होगा? मैं उनसे कहता हूं: पागलो, इसकी फिकर करो कि मृत्यु के पहले क्या हो रहा है। मृत्यु के बाद क्या होगा, यह जब मरो तब देख लेना, तब जान लेना; इसकी इतनी क्या जल्दी पड़ी है? अभी तुम जीवित हो, अभी क्या है तुम्हारे भीतर, उसकी चिंता लो।

जो बीत गई सो बात गई।

जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया।
अंबर के आनन को देखो,
कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे, जो छूट गए, फिर कहां मिले; पर बोलो टूटे तारों पर
कब अंबर शोक मनाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

जीवन में वह था एक कुसुम, थे उस पर नित्य निछावर तुम, वह सूख गया तो सूख गया;
मधुवन की छाती को देखो,
सूखीं इसकी कितनी कलियां, मुरझाईं कितनी वल्लरियां जो मुरझाईं, फिर कहां खिलीं,

पर बोलो सूखे फूलों पर
कब मधुवन शोर मचाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

जीवन में मधु का प्याला था, तुमने तन-मन दे डाला था,
वह टूट गया तो टूट गया;
मदिरालय का आंगन देखो,
कितने प्याले हिल जाते हैं गिर मिट्टी में मिल जाते हैं, जो गिरते हैं, कब उठते हैं, पर बोलो टूटे प्यालों पर
कब मदिरालय पछताता है
जो बीत गई सो बात गई!

मृद-मिट्टी के हैं बने हुए, मधु-घट टूटा ही करते हैं, लघु जीवन लेकर आए हैं,
प्याले फूटा ही करते हैं, फिर भी मदिरालय के अंदर
मधु के घट हैं, मधु प्याले हैं जो मादकता के मारे हैं,
वे मधु लूटा ही करते हैं,
वह कच्चा पीने वाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है!
जो बीत गई सो बात गई।

जरा भीतर मुड़ो, वहां मधु की धार बह रही है--शाश्वत मधु की धारा बह रही है! वहां मधुमय विराजमान है। वहां अमृत का स्रोत है। उससे पहचान कर लो। और मनुष्य-जीवन में ही उससे पहचान हो सकती है। इसलिए कबीर ठीक कहते हैं कि बहुत बार हारे हो, इस बार बाजी मत हार जाना। एक बार भीतर देख लो, बस फिर जीवन का सारा दुख कट जाता है, चिंता कट जाती है, संताप कट जाता है। आनंद की, अमृत की वर्षा हो जाती है! फिर एक और ही आयाम खुलता है। उस आयाम का नाम ही परमात्मा है। एक और ही द्वार, एक और ही रहस्यमय द्वार खुलता है। उस रहस्यमय द्वार का नाम ही परमात्मा है।
और वह द्वार तुम्हारे भीतर है। कहीं और न खोजना, नहीं तो खोज व्यर्थ होगी। भीतर खोदो, भीतर खोजो!

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
दूसरा प्रवचन

छाया मत छूना मन

पहला प्रश्नः ओशो, जब भी मैं किसी व्यक्ति के साथ आपकी करुणा और प्रेम-भाव के बारे में बातचीत करता हूं, तो आवाज रुंध जाती है, शब्द खो जाते हैं और पोर-पोर रोना आ जाता है। तब लगता है मैं आपके अत्यंत निकट हूं। कृपया बताएं कि मैं आपकी अनंत अनुकंपा का ऋण कैसे चुकाऊं?

चंद्रकांत भारती! यह स्वाभाविक है। प्रेम के पास कोई भाषा नहीं। प्रेम की भाषा मौन है। लेकिन प्रेम बोलना चाहता है। एक गहन अभीप्सा है प्रेम में--स्वयं को अभिव्यक्त करने की। अभिव्यंजना का कोई उपाय नहीं, अभिव्यक्ति की प्रबल अभीप्सा है। इससे रोना आ जाता है। कहना चाहते हैं; बिना कहे नहीं रहा जाता है। बांटना चाहते हैं; बिना बांटे नहीं रहा जाता है।
जैसे सूरज निकलेगा तो रोशनी बिखरेगी। जैसे फूल खिलेंगे तो सुगंध उड़ेगी। वैसे ही, जब प्रेम हृदय में घना होगा तो अभिव्यक्त होना चाहेगा। और अड़चन यह है कि प्रेम के पास अभिव्यक्ति का कोई उपाय नहीं है, कोई माध्यम नहीं। ऐसी दुविधा में उलझ कर, पोर-पोर रुदन उठे, आंखों से आंसू झरें तो आश्चर्य नहीं--विवशता के कारण; उस बेबसी के कारण, कि आज कहने को कुछ है और भाषा नहीं मिलती। कल जब कहने को कुछ भी नहीं था, कितनी भाषा थी। कल जब बांटने को कुछ भी न था, बांटने के सब उपाय उपलब्ध थे। आज बांटने को कुछ है, सब सेतु खो गए, सब उपाय खो गए, कोई विधि नहीं सूझती। क्यों ऐसा हो जाता है? इसलिए हो जाता है कि प्रेम शब्दों से बहुत बड़ा है। शब्द बड़े छोटे हैं। जैसे बूंद में कोई सागर को समाना चाहे, ऐसे शब्दों में प्रेम को भरने की चेष्टा है। प्रेम उतना ही बड़ा है जितना बड़ा परमात्मा है। उसकी कोई सीमा नहीं।
मनुष्य के जीवन की गहराइयों में परमात्मा का अनुभव प्रेम की भांति ही होता है। "परमात्मा" तो उसी अनुभव को नाम दिया है। परमात्मा तो मात्र नाम है, अनुभव तो प्रेम का है। अनिर्वचनीय है अनुभव! सब व्याख्याएं पीछे छूट जाती हैं। शब्द कामचलाऊ हैं--बाजार में, दुकान में, व्यवसाय में, रोजमर्रा की जिंदगी में उनका उपयोग है। वस्तुओं के संबंध में उनका उपयोग है, अनुभूतियों के संबंध में उनका कोई उपयोग नहीं। शब्द विषयगत हैं, और प्रेम अंतरात्मा की प्रतीति है। प्रेम कोई विषय नहीं है। विषय होता तो कह पाते तुम और कह कर प्रसन्न हो पाते, आह्लादित होते, अपनी पीठ, अपने हाथ ठोक लेते। नहीं कह पाते हो, रोओगे नहीं तो क्या करोगे! लेकिन वे आंसू कुछ कह जाते हैं। जो शब्द नहीं कह पाते, वे आंसू कर जाते हैं। आंसू अपूर्व हैं! आंसू दुख के ही नहीं होते, महासुख के भी होते हैं।
प्रेम में बहे आंसू प्रार्थनापूर्ण हैं। उनमें सुगंध प्रार्थना की है। उनमें हजारों आरतियां हैं, अर्चनाएं हैं। और अभिव्यक्ति है, जो जबान नहीं कह पाती, जिसके लिए जबान अचानक बेजुबां हो जाती है। आंखें उसे कहने लगती हैं।
आंखें मनुष्य के पास सर्वाधिक संवेदनशील साधन हैं। आंखों से ज्यादा संवेदनशील हमारे पास और कुछ भी नहीं है। इसलिए अंधे पर जितनी दया आती है उतनी दया और किसी पर नहीं आती--लंगड़े पर नहीं आती, लूले पर नहीं आती, बहरे पर नहीं आती। अंधे पर जितनी दया आती है उतनी किसी पर नहीं आती। कारण? सर्वाधिक संवेदनशील जीवन की जो क्षमता थी, उस बेचारे के पास नहीं है। लंगड़े के लिए, लूले के लिए, बहरे के लिए, हमने कोई सुंदर शब्द नहीं बनाए। अंधे को अंधा कहने में हमें अड़चन होती है; उसे हम कहते हैं--सूरदास जी। उसे अंधा कहने में हमें पीड़ा होती है। अंधा कहने में भी लगता हैः अब और इस मारे को क्या मारना! इस दीन को और क्यों दीन करना! लंगड़े को हम लंगड़ा ही कहते हैं। लूले को लूला ही कहते हैं। बहरे को बहरा ही कहते हैं। सिर्फ अंधे के लिए हमने नाम खोजा है--सूरदास। और भी एक सुंदर नाम खोजा है अंधे के लिए,

उसको हम कहते हैं--प्रज्ञाचक्षु। प्रज्ञाचक्षु का अर्थ होता हैः जिसके पास चमड़े की आंख तो नहीं, लेकिन चेतना की आंख है। सांत्वना दे रहे हैं कि मत घबड़ा, नहीं है तेरे पास चमड़े की आंख, चिंता मत कर--बोध की आंख तो है, चेतना की आंख तो है! ढाढस बंधाते हैं उसे, साहस बंधाते हैं उसे।
सबके पीछे एक कारण है कि आंख मनुष्य के जीवन-अनुभव में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए जिन्होंने परमात्मा को जाना, उनको हमने द्रष्टा कहा, श्रोता नहीं कहा। क्यों द्रष्टा? आंख से क्यों जोड़ा? इस देश में तो हम तत्व-शास्त्र को दर्शन कहते हैं। ठीक कहते हैं, वही ठीक शब्द है--देखने की कला। हमने उस परम अनुभूति की जो प्रतीति होती है, उस प्रतीति के लिए जो केंद्र माना, उसको तीसरी आंख कहा, शिव-नेत्र कहा।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं--शरीर शास्त्री भी उससे राजी हैं--कि मनुष्य
को जितनी संवेदनाएं होती हैं उनमें अस्सी प्रतिशत आंख से होती हैं, बीस प्रतिशत ही दूसरी और चार इंद्रियों पर बंटती हैं। मतलब--और इंद्रियों के हाथ में पांच प्रतिशत ही पड़ता है एक-एक इंद्रिय के हाथ में। और आंखों के हाथ में है अस्सी प्रतिशत। अगर तुमसे कोई कहे कि कोई भी एक इंद्रिय बचा लो, तो तुम क्या बचाना चाहोगे? बस आंख बचाना चाहोगे। आंख बची तो अस्सी प्रतिशत बच जाओगे। आंख गई, तो बाकी चार इंद्रियां भी बच जाएं तो भी बीस प्रतिशत ही बचोगे। और एक ही इंद्रिय बचे तो केवल पांच प्रतिशत ही बचोगे।
और आंखों की भाषा है आंसू। तो जब भी कोई अनुभूति बहुत गहन हो जाती है-- ऐसी कि शब्दातीत--तब आंसू झर पड़ते हैं। चाहे दुख हो, बहुत गहन, कि तुम कह न सको, कि शब्द ओछे--थोथे मालूम पड़ें, कि शब्दों का उपयोग करना ही अवांछनीय मालूम हो, तो आंखें झर पड़ती हैं। या आनंद हो, प्रेम हो, समाधि लगे, तो भी आंखों से झर-झर आंसू गिर जाते हैं। आंसू तो केवल इस बात की खबर देते हैं कि तुम्हारे भीतर कुछ घट रहा है, जिसे अब तुम समा नहीं सकते हो। बाढ़ आई है--फिर दुख की हो, सुख की हो, प्रेम की हो, बाढ़ होनी चाहिए, किसी भी भाव-दशा की बाढ़ हो।
चंद्रकांत, इसीलिए गला रुंध जाता होगा, शब्द खो जाते होंगे, रोना आ जाता होगा। और स्वभावतः उन घड़ियों में यदि तुम अनुभव करते हो कि मैं आपके अत्यंत निकट हूं, तो आश्चर्य नहीं। उन घड़ियों में तुम निकट हो ही। उन घड़ियों में तुम्हारा मन मिट गया। और जहां मन मिटा वहीं निकटता है। जब तक मन है तब तक दीवार है। जहां मन नहीं वहां दीवाल नहीं। जब नहीं कह पाते हो कुछ तो मन किंकर्तव्यविमूढ़ रह जाता है। पहली दफा अपने को नपुंसक पाता है, असमर्थ पाता है, असहाय पाता है। छिप जाना चाहता है। और सब जगह मन की गति है--गणित हो तो मन की गति है, विज्ञान हो तो मन की गति है। सिर्फ कुछ ही अनूठी अनुभूतियां हैं--प्रेम की, आनंद की, समाधि की--जहां मन की गति नहीं हैं; जहां मन अपने को अचानक पाता है मेरा कोई उपयोग नहीं; जहां मन पहली दफा व्यर्थ दिखाई पड़ता है; जहां मन बीच से हट जाता है। हटना ही पड़ता है उसे। तुम मन के पार उठ जाते हो।
और मन के पार हो तो गुरु के निकट हो, प्रकृति के निकट हो, परमात्मा के निकट हो। मन के पार हो तो अस्तित्व के निकट हो।
और ऋण की जरा भी चिंता न करो। किसका ऋण? मैंने तुम्हें कुछ दिया नहीं।
तुम्हें लगता है कि मैंने तुम्हें कुछ दिया। वह तुम्हारे प्रेम का आभार।
लेकिन मैंने तुम्हें कुछ दिया नहीं। तुम्हारे भीतर ही जो पड़ा था, उसकी ही तुम्हें सुधि दिला दी; उसकी ही तुम्हें--जैसा कल कबीर कहते थे, सुरति को चढ़ाओ--तुम्हें उसकी सुरति दिला दी। धन तुम्हारा था, चाबी भी तुम्हारे पास थी, सिर्फ भूल बैठे थे।
कभी-कभी ऐसा होता है न, किसी का नाम याद करना चाहते हो और कहते हो जबान
पर रखा है और याद नहीं आता। वे क्षण बड़ी विडंबना के होते हैं, बड़ी बेचैनी लगती है। जबान पर रखी है बात और आती नहीं।
एक विज्ञान का शिक्षक अपने विद्यार्थियों से पूछ रहा था। उसने एक सूत्र दिया और कहा कि इसका अर्थ बताओ। जिस विद्यार्थी से पूछा, उसने कहा कि अर्थ मेरी जबान पर रखा है, मगर याद नहीं आ रहा। शिक्षक ने कहा थूक बेटा,

जल्दी थूक, क्योंकि यह जहर है। यह जो सूत्र है, जहर का सूत्र है। यह जबान पर रखने की चीज नहीं। दो सेकेंड रह गए, मारे गए।
तुम्हें भी बहुत बार जीवन में अनुभव होता है, कोई चीज जबान पर अटकी रह जाती है।
मेरा काम कुल इतना है, तुम्हें याद दिला दूं। तुम्हें झकझोर दूं। तुम थोड़े सो गए हो, तुम्हें पुकार दे दूं। जैसे अलार्म की घड़ी, उसके तुम ऋणी थोड़े ही हो जाते हो, कि उसने सुबह तुम्हें उठा दिया तो तुम उसको जीवन भर अपने सिर पर लेकर ढोते रहोगे।
तुम्हारा प्रेम है तो तुम पूछते हो कि ऋण कैसे चुकाऊं, मगर ऋण इत्यादि
की कोई बात ही नहीं। न मैंने तुम्हें कुछ दिया, न तुम्हें मुझे कुछ देना है। यह लेने देने का मामला नहीं। मेरे भीतर मेरा गीत जगा, मैं उसे गा रहा हूं। मैं भी मजबूर हूं, उसे बिना गाए रहा नहीं जा सकता। तुमने कृपा की कि सुन लिया। उस गीत ने तुम्हारे भीतर जाकर हलचल कर दी। तुम्हारे भीतर भी कड़ियां जमने लगीं। तुम्हारे भीतर भी धुन बजने लगी।
तुमने देखा न, कोई वीणा बजाए, तुम हाथ से थाप देने लगते हो! तबला बजता है, तुम्हारे पैरों में नृत्य जगने लगता है। बस ऐसा ही। सदगुरु के पास इतना ही होता है। उसने तबले पर थाप दे दी, तुम्हारे पैर नाचने लगे। उसने वीणा बजाई, तुम्हारी हृदय-तंत्री भी बज उठी। उसकी बजती वीणा को सुनते- सुनते तुम्हें याद आ गई अपनी वीणा की। बस याद आते ही क्रांति घटनी शुरू हो जाती।
इसलिए चंद्रकांत, कोई ऋण की बात नहीं है। सत्य कोई वस्तु थोड़े ही है, जिसे लिया दिया जा सके। मगर तुम्हारी मनोदशा मैं समझता हूं। लगता है प्रत्येक शिष्य को ऐसा। स्वाभाविक है कि अब कैसे चुकाऊं! इतना विराट अनुभव होने लगे तो स्वभावतः मन कहता है कि उऋण कैसे हो जाएं। मगर कोई उपाय नहीं है। न तो उऋण होने का कोई उपाय है, न कोई जरूरत है। यह तुम्हारा ही दीया है। तुम बाहर देखते थे, मैंने तुम्हें पुकार दी; कहा, जरा भीतर देखो; तुमने सुन ली और भीतर देखा। जैसे राह पर खड़े किसी सिपाही से तुम पूछ लो कि स्टेशन का रास्ता कौन सा है। फिर ठीक है धन्यवाद दे दिया और स्टेशन की तरफ चले गए। कुछ ऋण इत्यादि की बात नहीं है।

संध्या ने नील गगन में छिड़की है कुंकुम-लाली,
इस उर में, हाय, जगा दी किसकी "स्मृति" मृदु मतवाली?

किस लाल-लाल मदिरा से भर गया हृदय का प्याला?
जल उठी अचानक जैसे फिर बुझी बुझाई ज्वाला

ब्रह्मांड अखिल करता है नर्तन आंखों में मेरी।
रवि, शशि, तारे देते हैं मेरे प्राणों में फेरी।

क्या घूम रहा आंखों में छाया-सा, धुंधलेपन-सा, विस्मय-सा, कुतूहल-सा झिलमिल लघु शारद घन-सा

जिज्ञासा, गूढ़ पहेली, कुछ तत्व-ज्ञान दर्शन-सा, सुर-धनु, विद्युत, हृत्स्पंदन, पीड़ा-सा, पागलपन-सा

कंपन-सा, प्रेम-पुलक-सा, शुचि प्रणय-ग्रंथि-बंधन-सा, व्याकुलता, विरह-व्यथा-सा, मृदु मधुर अधर चुंबन-सा।

संध्या ने नील गगन में छिड़की है कुंकुम-लाली,
इस उर में, हाय, जगा दी किसकी "स्मृति" मृदु मतवाली?

बस एक स्मृति जगा रहा हूं। जो तुम्हारा है, वही तुम्हें दे रहा हूं।
इस सूत्र को ख्याल में रख लो। जो तुम्हारा नहीं है, वह तुमसे मुझे छीनना है; और जो तुम्हारा है वह तुम्हें ही मुझे दे देना है। इसलिए कैसा ऋण?
कुछ नासमझ हैं, जो नाराज हो जाएंगे, क्रोधित हो जाएंगे, क्योंकि उन्हें लगेगा कि मैं उनसे कुछ छीन रहा हूं। मैं तुमसे वही छीन रहा हूं जो तुम्हारा नहीं है और न कभी तुम्हारा हो सकता है। सच तो यह है, इतना ही नहीं कि तुम्हारा नहीं है, वरन है ही नहीं। तुम्हारा अहंकार तुमसे छीन रहा हूं, जो कि झूठ है, जो कि असत्य है। तुम्हारी मृत्यु की धारणा तुमसे छीन रहा हूं। जो कि अतथ्य है, न कभी हुई है, न कभी होगी। तुम्हारा भय तुमसे छीन रहा हूं, क्योंकि तुम्हारा भय जब तक है, तुम्हारा भगवान भी भय पर ही आधारित होगा।
और तुम्हें दे क्या रहा हूं? भय छिन जाए, तुम्हारे भीतर सोया निर्भय
जग जाएगा। देना कुछ भी नहीं है। अहंकार हट जाए, आत्मा फूलों से लद जाएगी। मृत्यु की धारणा गिर जाए, उदघोष होने लगेगा--अमृतस्य पुत्रः! अमृत के पुत्र हो तुम! जो तुम पर कचरा-कूड़ा है, व्यर्थ है, छाया जैसा है, माया है-- उसे छीन लेना है; और जो तुम्हारा है, उसके छीनते ही प्रकट हो जाता है।
उड़ो, अब तुम्हें पंख मिलने शुरू हुए चंद्रकांत! दूर की यात्रा पर निकलना है। प्रेम जगा है, इसे विराट से विराटतर करते जाना है--इतना जितना कि बड़ा आकाश है, कि चांद-तारे इसमें समा जाएं, कि यही प्रेम एक दिन तुम्हारे लिए परमात्मा का परम अनुभव हो।

पंख जागे--
नींद का अविचल
मुलायम थाप से टूटा:
सितारों के करोड़ों बीज
नम आकाश में डूबे,
उगी किरणें--तरुण तन, सिक्त मन, आसक्त आनन, असित तम मानो किसी अभिशाप से छूटा: सवेरा
खिलखिलाती जिंदगी से भर गया,
हर स्वप्न बीती रात का
हर फूल ने लूटा

पंख जागे,
और आगे--
थाम अपने कंपनों में
व्योम का निष्कंप
बढ़ते,
भूमि के संक्षेप में रख निज परिधि के मर्म--

जागे पंख
अपने अंग से आगे
धरा का मूढ़ आकर्षण तिरस्कृत कर।
अरे ये साहसी डैने
किधर? किस व्योम के संतुलन में घटते चले जाते? प्रकृति का अदृश्य आलिंगन हटाते, जूझते-थकते चले जाते?

कहां अपने स्वयं से दूर
मिट्टी के सुनहले पंख जागे
भोर ही बढ़ते चले जाते?
बराबर और आगे... और आगे...
छिड़े, उद्यमी पंख जागे,
दूर

नभ के गर्भ में शिशुवत हुए जाते, अजन्मे सूक्ष्म के अति पास; अपनी मृत्यु से आगे।

पंख जागे--
नींद का अविचल
मुलायम थाप से टूटाः
सितारों के करोड़ों बीज
नम आकाश में डूबे,
उगी किरणें--तरुण तन, सिक्त मन, आसक्त आनन, असित तम मानो किसी अभिशाप से छूटाः
सवेरा
खिलखिलाती जिंदगी से भर गया,
हर स्वप्न बीती रात का
हर फूल ने लूटा
पंख जागे, और आगे--

और यात्रा करनी है। पंख फड़फड़ाए हैं तुमने अब। ये आंखें जो प्रेम के आंसुओं से भर गई हैं, जल्दी ही अनंत के आलोक से भी भर जाएंगी। ये प्रेम के आंसू इन आंखों को निर्मल कर जाएंगे, स्वच्छ कर जाएंगे, इनकी धूल झाड़ जाएंगे।
रोओ, जी भर कर रोओ। जब प्रेम के आंसू आएं, स्वागत करो! घबड़ाना मत, घबड़ाना स्वाभाविक है। किसी से बात करते होओगे मेरे संबंध में और आवाज रुंध जाती होगी, तो जरूर संकोच लगता होगा, लज्जा लगती होगी। मत लज्जा करना, मत संकोच मन में लाना। शुभ लक्षण हैं। शब्द खो जाते होंगे।
और चंद्रकांत को मैं जानता हूं, शब्दों के धनी हैं। शब्दों के धनी व्यक्ति को जब शब्द खो जाते हैं तो बड़ी बेचैनी होती है, बड़ा ऊहापोह होता है--क्या करूं, क्या न करूं? कहां मुंह छिपा लूं? यह बोलते-बोलते कंठ का रुक जाना, यह शब्द का खो जाना और फिर आंखों का आंसुओं से भर जाना।
नहीं, मत छिपाना उन आंसुओं को। मोतियों से वे ज्यादा मूल्यवान हैं। उन्हें गिर जाने देना और धीरे-धीरे तुम अनुभव करोगे कि जो तुम नहीं कह पाए शब्दों से, वह आंसू कह गए हैं और बहुत कुशलता से कह गए हैं। तुम्हारे शब्द तो शायद कानों तक पहुंचते, तुम्हारे आंसू हृदय तक पहुंच जाएंगे। तुम बोलते तो शायद तर्क ही होकर रह जाता। तुम्हारा कंठ रुंध गया, अवरुद्ध हो गया, तो दूसरा भी पत्थर तो नहीं है, उसके भीतर भी कुछ घटेगा।
रही ऋण की बात, सो बिल्कुल भूल जाओ। मैंने तुम्हें कुछ दिया नहीं। तुम मुझे धन्यवाद भी दो, इसकी भी जरूरत नहीं है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, वर्षों से एक प्रश्न बार-बार मेरे मन में उठ रहा था। सोचा था, आपसे प्रश्न का समाधान मिल जाएगा। किंतु यहां आकर मेरा प्रश्न तो क्या, मैं ही खो गया हूं। ऐसा क्यों?

महादेव प्रसाद! यही है उत्तर, जिसकी तुम्हें सच में तलाश थी। सच्चे प्रश्नों के उत्तर नहीं होते। सच्चे प्रश्नों का गिर जाना ही उत्तर है। झूठे प्रश्नों के उत्तर होते हैं।
किसी से पूछो दो और दो कितने होते हैं, कोई भी उत्तर दे देगा, छोटा सा बच्चा उत्तर दे देगा कि दो और दो चार होते हैं। क्योंकि गणित मनुष्य की ईजाद है। प्रकृति में कहीं कोई गणित नहीं है। अगर आदमी खो जाए तो वृक्ष रहेंगे, समुद्र रहेंगे, पर्वत रहेंगे, चांद-तारे रहेंगे, गणित नहीं बचेगा। गणित बिल्कुल मनुष्य पर निर्भर है। पशु-पक्षियों को गणित से क्या लेना- देना! वृक्ष कोई गिनती करेंगे, बादलों को, चांद तारों को गणित से क्या लेना-देना! गणित मनुष्य की ईजाद है।

और तुम देखते हो, दुनिया भर में अलग-अलग देशों में, अलग-अलग जातियों में, अलग-अलग कालों में, लेकिन एक बात समान रही है गणित के बाबत कि सारी दुनिया के गणित-शास्त्रों में, गणित के अंक दस ही होते हैं। तुमने कभी सोचा कि क्यों। इसलिए क्योंकि आदमी की दस अंगुलियां हैं। अब भी तो गांव के लोग अंगुलियों पर ही गिनती करते हैं। दस अंगुलियों की वजह से दस आंकड़े और सारा गणित दस में पूरा है। दस पर बस आ जाता है। फिर दस के बाद तो पुनरुक्ति है--ग्यारह, बारह वह तो पुनरुक्ति है। फिर तुम कितनी ही पुनरुक्ति करते जाओ, मगर मूल गणित दस पर खतम हो जाता है। और क्यों खतम हो जाता है दस पर? संयोगवशात आदमी की दस अंगुलियां हैं; समझो कि नौ ही अंगुलियां होतीं तो नौ ही आंकड़े होते।
इस आधार को मान कर दुनिया के कुछ गणितज्ञों ने कम आंकड़ों से भी काम चलाया है। पश्चिम के बहुत बड़े गणितज्ञ लीबनित्ज ने तीन ही आंकड़े माने; उसने कहा कि दस की क्या जरूरत, तीन से काम चल जाता है। एक, दो, तीन। और तीन के बाद फिर चार नहीं आता, फिर दस; ग्यारह, बारह, तेरह और फिर तेरह के बाद चौदह नहीं आता, बीस। मगर काम हो जाता है। लीबनित्ज के गणित में दो और दो चार नहीं होते, दो और दो दस होते हैं। मगर काम उससे भी चल जाता है। उसने बड़े-बड़े सवाल गणित के इसी से हल कर दिए हैं।
अलबर्ट आइंस्टीन ने तो एक कदम और आगे लिया; उसने कहा कि तीन की भी क्या जरूरत है, दो से काम चल सकता है; दो से कमे में काम नहीं चल सकता। इसलिए न्यूनतम मानना चाहिए। उसने दो ही आंकड़े माने--एक और दो। तो दो और दो उसके हिसाब से चार नहीं हो सकते, चार का तो उपाय ही नहीं है।
गणित बिल्कुल काल्पनिक शास्त्र है, इसलिए उत्तर हो सकते हैं। आदमी के
ही प्रश्न हैं, आदमी ही उनके उत्तर बना लेता है। लेकिन तुम पूछो प्रेम क्या है--और बस मुश्किल खड़ी हुई। तुम पूछो सत्य क्या है--और मुश्किल खड़ी हुई। तुम पूछो परमात्मा क्या है--और मुश्किल खड़ी हुई।
जीवन के जो वास्तविक प्रश्न हैं, उनके कोई उत्तर होते हैं? और जो उत्तर देते हैं वे मूढ़ हैं। पूछने वाला नासमझ है, इसलिए पूछ रहा है और उत्तर देने वाला भी नासमझ होना चाहिए, इसलिए उत्तर दे रहा है। वस्तुतः ज्ञानी जो हैं वे तुम्हारे मूढ़ प्रश्नों के उत्तर नहीं देते। समाधान देते हैं, उत्तर नहीं। भेद समझ लेना। उत्तर और समाधान में बड़ा भेद है, जमीन-आसमान का भेद है। समाधान का अर्थ हैः प्रश्न का गिर जाना, प्रश्न का मिट जाना। और उत्तर का अर्थ हैः प्रश्न की जगह एक धारणा तुम्हारे भीतर रख दी जाती है। मगर उस धारणा से दस नये प्रश्न खड़े होंगे, महादेव प्रसाद ख्याल रखना। धारणा से एक उत्तर मिला, ऐसा मत सोच लेना कि एक प्रश्न हल हो गया; सिर्फ दस प्रश्नों के लिए और सुविधा हो गई।
तुमने पूछा, जगत को किसने बनाया? और जिनको तुम पंडित कहते हो और जिनको मैं मूढ़ कहता हूं--कोई महामूढ़ कहेगा, ईश्वर ने। इससे क्या समझते हो कोई हल हुआ? अब सवाल यह उठता है कि ईश्वर ने क्यों बनाया? तो महामूढ़ों ने उनके भी उत्तर खोज रखे हैं; खोज रखे हैं क्या ईजाद कर लिए हैं--कि इसलिए बनाया है, क्योंकि वह अकेला था और अकेले में उसे बड़ा कष्ट होने लगा। चलो मान लें, तो नये प्रश्न उठेंगे--क्योंकि पहले क्यों नहीं बनाया; जब बनाया तभी क्यों बनाया? अकेला तो बहुत पहले से था। अकेला तो सदा से ही था। जब बनाया तभी क्यों बनाया? पहले अक्ल नहीं आई? पहले कुछ बुद्धि की कमी थी?
और भी प्रश्न उठेंगे, कि अगर परमात्मा को भी अकेलापन खलता है तो फिर गरीब आदमी की क्या बिसात? तो फिर गरीब आदमी से क्यों कहा जाता है कि अपने भीतर के एकांत में डूबो? ध्यान, समाधि, ये सब हैं क्या? अपने एकांत में उतरना है। जब परमात्मा भी अकेला न रह सका तो बेचारे आदमी को क्यों सताते हो? तो इसको भी बसाने दो घर-गृहस्थी, संसार। इसको भी भटकने दो भीड़ में। जब परमात्मा भी भीड़ के बिना न रह सका और आदमी इतनी बड़ी भीड़ मांगता भी नहीं-- पत्नी हो, दो-चार बच्चे हों, घर द्वार हो, थोड़े मित्र हों, बस पर्याप्त है। परमात्मा को तो भारी भीड़ की जरूरत पड़ी है। यह पृथ्वी कोई अकेली नहीं, जिस पर जीवन है। वैज्ञानिक कहते हैं: कम से कम पचास हजार पृथ्वियां और हैं जिन पर ऐसा जीवन है। कम से कम; ज्यादा हो सकती हैं। इतना भीड़-भड़क्का, इतना

शोरगुल, इतना उपद्रव! परमात्मा को इतने बड़े संसार की जरूरत पड़ी? इतने बड़े संसार की तो संसारियों को भी जरूरत नहीं है। छोटी-मोटी दुकान हुई, चला; थोड़ा पैसा हुआ। और इसी परमात्मा को पाने के लिए संसार छोड़ना पड़ता है! तो प्रश्न ही प्रश्न उठेंगे कि मामला क्या है। जब परमात्मा ही संसार के बिना नहीं रह सका तो हम गरीबों को क्यों सताते हो, हमें क्यों भेजते हो कि गुफाओं में बैठो? अरे तो परमात्मा ही बैठ जाता किसी गुफा में! न होता बांस न बजती बांसुरी! झंझट ही नहीं होती। परमात्मा को संन्यास नहीं सूझा, यह महात्माओं को सूझा! परमात्मा से भी पहुंच इनकी बड़ी गहरी मालूम पड़ती है! और फिर सवाल उठता है कि आदमी को ही बनाना था तो थोड़ा ढंग का बनाता। यह बेढंगा आदमी, न मालूम कितने क्रोध, ईर्ष्या, वैमनस्य, घृणा, ये सब इसमें रख देने की क्या जरूरत थी? अरे तुमको अकेले से तकलीफ थी, तो भले आदमी बनाते। यह दुष्ट संग! कम से कम सत्संग तो करते! महात्मा ही महात्मा बना लेते।... ये बैठे महात्मा गांधी, ये बैठे विनोबा भावे! सत्संग चल रहा है! ये तरह-तरह के आदमी, एक से एक उपद्रवी, इन सबको क्या बनाने की जरूरत थी? चंगीज खान और तैमूरलंग और नादिरशाह और एडोल्फ हिटलर और जोसफ स्टैलिन... और प्रत्येक आदमी के भीतर इतनी गर्हित वासना क्यों रख दी? पाप का ऐसा आकर्षण क्यों रख दिया? बुराई में इतना बल क्यों भर दिया कि लाख चिल्लाते रहें महात्मागण, कोई सुनता नहीं। सच तो यह है कि दूसरों की तो फिकर ही छोड़ दो, महात्मागण भी जो कहते हैं, वे खुद भी कहां सुनते हैं!
कल ही मैं एक कहानी पढ़ रहा था। एक अमरीकी महिला परमात्मा की खोज में भारत आई, गई हिमालय। न मालूम कैसे यह भ्रांति फैल गई है कि हिमालय में परमात्मा कुछ ज्यादा उपलब्ध है, कुछ ज्यादा मात्रा में वहां है। जैसे वह भी कहीं-कहीं सघन और कहीं-कहीं विरल है। और जैसा कि होना था, मिल गए एक महात्मा। और हिमालय में महात्मा नहीं मिलेंगे तो और क्या मिलेगा! उनकी जटा-जूट, शरीर पर लगाई गई भस्म, धूनी रमाए बैठे थे। बड़े मस्त दिखाई पड़ रहे थे, असलियत थी कि गांजा पी गए थे। महात्मा और गांजा न पीएं, यह हो ही नहीं सकता। क्योंकि महात्मा कहते हैं कि जब परमात्मा ने बनाया गांजा तो पीने के लिए ही बनाया। दम मारो दम... !
महिला एकदम प्रभावित हो गई। महात्मा की आंखें बिल्कुल ऊपर चढ़ी थीं, जैसे तीसरे नेत्र को देख रहे हों! चरणों पर गिर पड़ी। कहाः मन की शांति के लिए आई हूं। मेरी आत्मा को शांति दो। महात्मा ने कहा कि बेटी, सब हो जाएगा, समय पर सब हो जाएगा। धीरज रख। महिला रुक गई। और तो कोई था नहीं वहां गुफा में--महात्मा और महिला। रात तक गांजे का नशा उतर गया। महात्मा ने गौर से... उनकी आंखें जरा तृतीय नेत्र से नीचे उतरीं... महिला को देखा। सुंदर महिला! एकदम उस पर हमला कर दिया। महिला को तो समझ में ही नहीं आया। उसने कहाः अरे महात्मा जी, यह क्या करते हैं!
महात्मा जी ने कहाः क्या करता हूं! अरे जो करना चाहिए वही करता हूं। महिला ने कहाः मैं आत्मा की शांति कि मन की शांति के लिए आई हूं, आप यह क्या करते हैं?
महात्मा ने कहाः जब तक शरीर की शांति नहीं होगी, न मन की हो सकती है, न आत्मा की हो सकती है। हर चीज क ख ग से शुरू करनी पड़ती है।
कौन सुने तुम्हारे महात्माओं की! महात्मा खुद ही कहां मानते हैं! मान
भी नहीं सकते। उनका भी कोई कसूर नहीं। कसूर होगा तो परमात्मा का है। क्यों रखा आदमी में वासना का इतना बल? क्यों इतनी कशिश? प्रश्न पर प्रश्न उठते चले जाएंगे। हल करना मुश्किल हो जाएगा। और तुम पूछे थे एक ही प्रश्न कि संसार कैसे हुआ। और तुम्हारे पंडित ने कहा थाः परमात्मा ने बनाया। उसने सोचा था मामला निपटा दिया। मामला कुछ निपटा नहीं, मामला और उलझ गया। उत्तर में उत्तर कहां है? उत्तर में और हजार प्रश्न दबे हैं। और उठते
ही जाएंगे। इसलिए बुद्ध जैसे ज्ञानी ने उत्तर ही नहीं दियाः जब भी किसी ने पूछा संसार को किसने बनाया, बुद्ध ने कहाः किसी ने नहीं, संसार सदा से है। झंझट मिटी, नहीं तो वह एक प्रश्न का उत्तर दो कि फिर प्रश्नों का एक सिलसिला खड़ा हो जाता है, एक कतार लग जाती है, जिसका कोई अंत नहीं आता।

फिर सवाल उठता है कि परमात्मा भले आदमियों को तो कष्ट दे रहा है, बुरे आदमियों को मजा लूटने का अवसर दे रहा है, यह क्या हो रहा है? और अगर इस जगत में यह हो रहा है तो दूसरे जगत का भी क्या भरोसा! जो लुच्चे-लफंगे यहां बाजी मार ले जाते हैं वे वहां भी बाजी मार ले जाएंगे। ज्यादा संभावना इसी की है, क्योंकि उनका अभ्यास बाजी मार लेने का। तुम यहां भी हारे, वहां भी हारोगे। जिंदगी भर हारने का अभ्यास ही किया। यहां भी लुटे, वहां भी लुटोगे। और जो जेब काटने में कुशल हो गया है।
मैंने सुना है एक आदमी मरा। जैसे ही पहुंचा स्वर्ग के दरवाजे पर, द्वारपाल ने दरवाजा खोला और पूछाः आप कौन हैं?
उसने कहाः चंदूलाल लोहेवाला।
भई इस तरह के आदमी के स्वर्ग में आने की, हमें कोई खबर नहीं है।
लेकिन चंदूलाल लोहेवाला भी लोहेवाला था। उसने कहाः हम इधर से हटने वाले भी नहीं हैं। यह मेरी आदत ही नहीं है। अरे जिस द्वार पर टिक गया वहीं अड़ा ही रहा हूं।
काम क्या करते हो? पूछा द्वारपाल ने। उसने कहा कि लोहे का धंधा है। यह धंधा ही ऐसा है। पुराना लोहा खरीदता हूं, घिस-घिसा कर नया करके बेचता हूं। जाऊंगा नहीं।
द्वारपाल ने कहाः मैं जाकर परमात्मा से पता लगाता हूं। पता लगा कर जब
तक द्वारपाल आया, न तो चंदूलाल लोहेवाले वहां थे और न दरवाजा वहां था। लोहे का दरवाजा पुराना, उसने देखा कि मारो हाथ!
जो यहां हाथ मार रहे हैं, वे वहां भी छोड़ेंगे नहीं। तुम्हारे जीवन भर
की आदतें ही तो तुम्हें निर्मित करती हैं। तो सवाल उठता है कि यहां देखते हो तुम बेईमानों को जीतते, सत्ता में बैठते। धन, पद, प्रतिष्ठा, सब उनकी। ईमानदारों की पूछताछ कौन करता है! उनको रोटी-रोजी मिल जाए, यही बहुत है, वह भी कहां पूरी मिलती है! लंगोटी ही बच जाए, यही बहुत; इस दुनिया में वह भी कहां बचती है!
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में, गांव का काजी हो गया था। पहला ही मुकदमा उसकी अदालत में आया। एक आदमी एकदम रोता-चिल्लाता, छाती पीटता कि लुट गया, इसी गांव के बाहर लुटा हूं, इसी गांव के किसी आदमी ने लूटा है। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि पहले चुप हो। ठीक-ठीक बात कर। सब लुट गया! लेकिन यह अंडरवियर! तू चिल्लाए चला जा रहा है--सब लुट गया, सब लुट गया!
उस आदमी ने कहाः यह बात तो ठीक है। और सब लुट गया, सिर्फ अंडरवियर छोड़
गए वे लोग।
तो मुल्ला ने कहाः वे किसी और गांव के रहे होंगे। इस गांव की आदत ही नहीं है यह; यहां तो जो काम किया जाता है, पूरा किया जाता है। मैं तेरा मुकदमा लेने में असमर्थ हूं। इस गांव में अधूरा काम करने की आदत ही नहीं। "यहां लंगोटी भी नहीं बचती। लंगोटी भी बच गई तो समझो बहुत है। तो सवाल उठेगा कि यह परमात्मा है भी या नहीं?"
फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा हैः अगर संसार को गौर से देखो तो सिद्ध होता
है कि परमात्मा नहीं है, क्योंकि इतनी बेईमानी, इतनी जालसाजी, इतनी चार सौ बीसी, और फिर भी तुम कहे चले जाते हो--परमात्मा है! शैतान जीतता दिखाई पड़ता है, परमात्मा हारता दिखाई पड़ता है। बुराई जीतती दिखाई पड़ती है, भलाई हारती दिखाई पड़ती है। सिर्फ शास्त्रों में लिखा हैः सत्यमेव जयते! लेकिन कहीं सत्य को जीतते देखते हो? असत्यमेव जयते! असत्य जीतता दिखाई पड़ता है। जितने कुशल तुम झूठ बोलने में हो, उतनी ही सफलता की संभावना है।
यहां क्या, वहां भी यही मैंने हालत सुनी है, उस लोक में भी। स्वर्ग और नरक के बीच में जो दीवाल है, जरा-जीर्ण हो गई, अति प्राचीन है, कई जगह से गिर गई। एक दिन दोनों तरफ से--उस तरफ शैतान, इस तरफ परमात्मा--टहलते हुए दीवाल के पास आ गए। परमात्मा ने शैतान से कहा कि भई देखो दीवाल गिर गई है और यह गिरी है तुम्हारे तरफ के उपद्रव के कारण। हजार दफे कहा है कि तुम अपने आदमियों को सम्हालो। दीवाल पर चढ़-चढ़ जाते हैं। कोई हमारी तरफ के आदमी दीवाल पर नहीं चढ़ते! महात्मा लोग हैं वे अपने झाड़ों के नीचे बैठे रहते हैं,

कौन दीवाल पर चढ़े! और तुम्हारे आदमी दीवाल की ईंटें खींच कर एक-दूसरे के ऊपर फेंकते हैं। तो यह दीवाल तुम्हारी वजह से ही खराब हुई, इसको सुधारो।
शैतान ने कहाः सुधरवानी हो तो खुद सुधरवा लो, हमको नहीं पड़ी कुछ। तुमको हो डर दीवाल के टूटने से हमें क्या डर! अरे दीवाल टूट जाए टूट जाए; हमारे लोगों को और थोड़ा फुटबॉल खेलने, हाकी खेलने, वालीबॉल खेलने के लिए स्थान मिल जाएगा।
परमात्मा को क्रोध आ गया। परमात्मा ने कहा कि देखो मैं मामला अदालत में ले जाऊंगा।
शैतान ने कहाः ले जाओ जहां ले जाना है, वकील कहां पाओगे? सब वकील तो मेरी तरफ हैं।
प्रश्न पर प्रश्न उठेंगे। समाधान और बात है। और समाधान का एक ही उपाय है--प्रश्न का उत्तर नहीं, प्रश्न का गिर जाना। प्रश्न का ऐसा व्यर्थ हो जाना, जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिर जाए।
और यही हुआ महादेव प्रसाद, शुभ हुआ।
तुम कहते होः "वर्षों से एक प्रश्न बार-बार मेरे मन में उठ रहा था। सोचा था आपसे प्रश्न का समाधान मिल जाएगा।"
सोचा ही नहीं था, समाधान मिल गया! लेकिन तुम समाधान को उत्तर का पर्यायवाची समझते हो, यही तुम्हारी भूल है। उत्तर समाधान नहीं है और समाधान कोई उत्तर नहीं होता। अभी तुम्हें समझना पड़ेगा यह भेद। प्रश्न तो तुमने पूछा नहीं, उत्तर मैंने दिया नहीं; लेकिन समाधान हो गया है। प्रश्न है कहां?
तुम स्वयं कहते हो: "किंतु यहां आकर मेरा प्रश्न तो क्या, मैं ही खो गया हूं, ऐसा क्यों?"
प्रश्न खो जाए, यही समाधान है। और अगर प्रश्नकर्ता भी खो जाए, तो समाधि बहुत दूर नहीं। समाधि और समाधान एक ही शब्द से निकले हैं। समाधान शुरुआत है समाधि की; बीज है समाधि का। अभी एक प्रश्न खोया; कोई और प्रश्न पड़े होंगे दबे, वे उभरेंगे, वे भी खो जाएं। अगर सारे प्रश्न खो जाएं तो मन खो जाएगा, क्योंकि मन जीता है प्रश्नों के सहारे। मन है ही तभी तक जब तक प्रश्न हैं। जब कोई भी प्रश्न नहीं बचता तो मन मर जाता है। और जहां मन नहीं है वहां समाधि। जहां अमनी दशा है--कबीर के शब्दों में अमनी दशा--बस वहीं समाधान है, वहीं समाधि है। और जहां समाधि है वहां सत्य है, वहां परमात्मा है। और वहां जो है वह अनुभव है।
तुम प्रश्न पूछो, मैं उत्तर दे दूं। तुमने कुछ शब्द कहे, मैंने कुछ शब्द कहे। शायद तुम्हें मेरे शब्द जम जाएं, जंच जाएं या न जंचें। न जंचें तो तुमने कहा, कि मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला; जंच गए तो तुमने कहा, कि मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया। लेकिन ये सब बातें मानसिक हैं। फिर तुम मेरे शब्दों पर विचार करोगे, उसमें से कुछ न कुछ प्रश्न निकल आएंगे, क्योंकि तुम्हारी चित्त दशा तो वही की वही है। जिससे पहला प्रश्न पैदा हुआ था, चित्त तो वहीं का वहीं है, वह नया प्रश्न पूछ लेगा।
तुम छोटे बच्चों को साथ लेकर कभी सुबह घूमने निकले हो? बस चित्त की दशा वैसी ही है। वे पूछे ही चले जाते हैं। "कुत्ते की पूछ सीधी क्यों नहीं?" अब उनको उत्तर दो! किसी तरह सिर पचा कर तुम उनको समझा-बुझा कर आगे बढ़े, वे पूछने लगे कि वृक्ष के पत्ते हरे क्यों हैं? तुम यह मत सोचना कि तुम इसका उत्तर दे दोगे तो हल हो जाएगा, कि क्लोरोफिल के कारण। असल में तुम्हारा उत्तर सुन कौन रहा है! तुम जब उत्तर दे रहे हो तब बच्चा नया प्रश्न तैयार कर रहा है। तुम्हारा उत्तर खतम नहीं हुआ कि उसने नया प्रश्न पूछा। तुम उत्तर न भी दो तो भी वह नया प्रश्न पूछेगा, तुम उत्तर दो तो भी नया प्रश्न पूछेगा। उसकी जिज्ञासा छलांगें भर रही है, कुलांचें भर रही है।
मन हमेशा बचकाना है। वह पूछता ही चला जाता है। कुछ भी पूछता चला जाता है!
अब एक मित्र ने पूछा है कि मैं यहां आया तो मैंने सपना देखा कि एक भैंस
ने मेरे पिता जी को मार डाला! ... अब इसका उत्तर चाहिए! अब कहां की भैंस... और

भैंसों का क्या भरोसा! तुम बच कर आ गए, यही बहुत। और पिता जी को तो जाना ही था, जाते ही कभी न कभी। अब भैंस ले गई या क्या... होगी यमदूत की भैंस। पहले से ही शास्त्रों में लिखा हुआ है कि यमदूत भैंस पर बैठ कर आते हैं।... वह भी सपने में।
मगर नहीं, लोग हैं। अगर तुम किसी मनोवैज्ञानिक से पूछो तो वह कुछ न कुछ उत्तर निकाल लेगा। मनोवैज्ञानिक का सारा धंधा यही है कि तुम्हारे सपनों की व्याख्या करे। मगर एक ही मनोवैज्ञानिक के पास जाना; अगर तुम चार-छह के पास गए तो बड़े संदेह पैदा हो जाएंगे, क्योंकि चार-छह व्याख्याएं होंगी। अगर फ्रायड को मानने वाला मनोवैज्ञानिक है तो वह एक व्याख्या करेगा; जुंग को मानने वाला दूसरी; एडलर को मानने वाला तीसरी और फिर असागोली को मानने वाला चौथी। और न मालूम कितने मनोवैज्ञानिक स्कूल हैं दुनिया में इस समय! वे सब अलग-अलग व्याख्या करेंगे और ऐसी-ऐसी व्याख्याएं करेंगे कि तुम भी दंग रह जाओगे कि हद हो गई; भैंस में भी ऐसे राज छिपे थे! हम तो सोचते थे कि भैंस यानी भैंस! छोटे बच्चे पूछते हैं, अक्ल बड़ी कि भैंस? छोटे बच्चों को तो लगता है भैंस ही बड़ी है। और अगर मनोवैज्ञानिक की व्याख्याएं देखी, तो तुम्हें भी लगेगा कि भैंस ही बड़ी है।
और एक ही उन्होंने प्रश्न नहीं पूछा है, और भी कई तरह के सपने उनको आए--
कि उनकी पत्नी किसी और पुरुष के साथ सो रही है, इसका क्या अर्थ?
भैया, अपनी पत्नी से पूछो! ... वह भी सपने में भी न सोने दोगे! ... और सपना
भी तुम्हारा, पत्नी का नहीं! पत्नी भी अपने सपने में किसी के साथ सो रही हो तो चलो थोड़ा-बहुत कसूर कर रही है, तुम्हारे सपने में सो रही है। अपने से ही पूछो कि मामला क्या है!
उनका प्रश्न पढ़ कर मुझे याद आया, इजिप्त का एक सम्राट हुआ। उसने डुंडी पिटवा दी थी पूरे देश में कि मेरे सपने में कोई कभी न आए, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरी नींद कोई खराब करे। अब यह बड़ी मुसीबत की बात हो गई, लोग बड़े डरे। वह आदमी बड़ा झंझटी था। अब कोई उसके सपने में न आए, इसमें किसी का क्या वश! और कई आदमी फंस गए इसकी झंझट में। कभी वजीर उसके सपने में आ गया, उसने कोड़े लगवा दिए, कि तू आया तो आया क्यों? सपना उसका, मगर वजीर बेचारा करे तो क्या करे? छोटे-मोटे आदमियों को तो उसने फांसी पर चढ़वा दिया कि दुष्टो, न दिन में सोने देते न रात में! तुम्हें हक क्या है किसी के सपने में प्रवेश करने का?
अब उनकी पत्नी किसी के साथ सो रही है! सोने भी दो, तुम्हें कुछ और धंधा नहीं है? होशियार आदमी ऐसी बातें नहीं करते।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन घर आया। उसके छोटे लड़के ने कहा कि पिता जी, पिता जी, अलमारी में भूत खड़ा है! ऐसे तो नसरुद्दीन ने भी देख लिया था। किसी का छाता बाहर रखा है। जूते बाहर रखे हैं। कोई आदमी भीतर है। खिड़की से झांक कर भी देख लिया था कि पत्नी किसी के साथ बिस्तर पर सो रही है। मगर थोड़ी खटर-पटर की, खांसा-खखारा। होशियार आदमी होशियारी से चलते हैं। अरे अब इसमें झंझट लेनी! मगर उस बेटे ने जब कह ही दिया तो जाना पड़ा। जाकर दरवाजा खोला, तो देख कर हैरान हुआ, उसका ही परिचित मित्र--वही चंदूलाल लोहेवाला! मुल्ला ने कहाः चंदूलाल, हद हो गई! अरे किसी के बच्चों को डराने के लिए भरी दुपहरी में काम-धाम छोड़ कर अलमारी में खड़े हो! शर्म नहीं आती? निकलो बाहर!
जब बाहर ले गया, तब बाहर जाकर कहा कि भई एक बात पूछनी है चंदूलाल। खैर मुझे तो सोना पड़ता है पत्नी के साथ, क्योंकि मेरी पत्नी है, अब क्या करना; तू क्यों सो रहा था रे मूर्ख? तुझे क्या हो गया? तेरी बुद्धि मारी गई? ठीक है, अब हमारा तो विवाह हुआ सो हमें तो जो मुसीबत झेलनी है सो झेलेंगे, अपना- अपना भाग्य! मगर तुझे क्या हुआ, यह देख कर मैं चकित हूं!
लेकिन तुम्हारे सपने में पत्नी किसी के साथ सो रही थी! इन प्रश्नों के उत्तर चाहते हो, इन प्रश्नों के उत्तर मिलने से क्या होगा? कौन सी आध्यात्मिक क्रांति होगी? जरूर तुम्हारे मन में शक होगा। सीधी सी तो बातें हैं, पत्नी पर शक होगा तुम्हारे मन में कहीं न कहीं। किस पति को नहीं है! किस पत्नी को अपने पति पर शक नहीं है! पति-पत्नी का नाता ही शक का नाता है। शक न हो, यह करीब-करीब असंभव। पत्नी आते से ही पहले जांच-परख करती है

नीचे से ऊपर तक, कोट इत्यादि देखती है कि कोई बड़ा बाल वगैरह तो नहीं है? खीसे वगैरह में देखती है कि कोई चिट्ठी-पत्री तो नहीं है? फोन आता है तो एकदम झट से उठा लेती है कि मामला क्या है?
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात कह रहा होगा--कमला, कमला! पत्नियां रात में
भी सोती नहीं, उसने उसी वक्त उठाया, कहाः किस कमला की याद कर रहे हो, कौन कमला? मगर पति नींद में भी होशियार रहते हैं। कहाः अरे यह कुछ नहीं, यह रेसकोर्स की एक घोड़ी का नाम है। मगर ऐसे तुम किसी पत्नी को इतनी आसानी से हल नहीं कर सकते। ठीक, पत्नी ने कहा, ठीक है, देखेंगे। दूसरे दिन सुबह-सुबह ही फोन आया। मुल्ला उठे, इसके पहले पत्नी उठ गई।
मुल्ला ने पूछा कि किसका फोन है? कहाः कोई किसी का नहीं--वही रेसकोर्स
की घोड़ी ने फोन किया! कहा है कि शाम प्लाजा टाकीज में मिल जाना।
संदेह होगा तुम्हारे मन में, सो पत्नी दूसरे के साथ सोई दिखाई पड़ रही है।
मौत का भय होगा। शायद पिता जी बूढ़े होने लगे होंगे, उनकी मौत की छाया तुम पर पड़ने लगी होगी, डर लगने लगा होगा। सुनी हुई बचपन की कहानियां कि यमदूत भैंस पर सवार होकर आते हैं, तो भैंस दिखाई पड़ गई होगी। वह तो भला हो यमदूत का कि वे नहीं दिखाई पड़े, नहीं तो उसका भी उत्तर मुझे देना पड़ता। व्यर्थ की बातों के न तो उत्तर चाहो, न व्यर्थ की बातों के प्रश्न उठाओ। निन्यानबे प्रतिशत प्रश्न तो तुम्हारे व्यर्थ हैं, वे तो काट ही दो। सार्थक प्रश्न तो बहुत थोड़े से हैं। और जो सार्थक प्रश्न ही बच रहें, तो यहां मेरे पास बैठो; जो मैं कह रहा हूं उसे सुनो; जो मैं हूं उसे अनुभव करो; जो यहां घटित हो रहा है, उसे पीओ--प्रश्न मिट जाएंगे। असली प्रश्न बचा लो, पहला काम; नकली छांट दो, कूड़ा-करकट छांट दो। जिनका उत्तर भी मिल जाएगा तो कोई लाभ नहीं होने वाला, वह प्रश्न काट दो। बचकानी जिज्ञासाएं यहां मत लाओ। बचा लो उतने ही जितने सार्थक हैं। और तब सार्थक का गिर जाना बड़ा आसान है। और जब सार्थक कोई प्रश्न गिर जाता है तो समाधान उपलब्ध होता है। जिस दिन तुम्हारे सब सार्थक प्रश्न विदा हो जाएंगे, चित्त प्रश्न-शून्य हो जाएगा, उसी दिन समाधि फलित हो जाएगी। और समाधि में ही सत्य का अनुभव है। समाधि दर्पण है, जिसमें सारा अस्तित्व झलक आता है।
अच्छा हुआ महादेव प्रसाद, तुम्हारा प्रश्न गिर गया। और उससे भी अच्छा
यह हो रहा है कि प्रश्न ही नहीं खो गया, तुम कहते हो मैं भी खो गया हूं! शुभ घड़ी है। बचाना मत अपने को, जरा भी मत बचाना। डूब ही जाओ, मिट ही जाओ! क्योंकि जो मिट जाता है वही परमात्मा को पाने का अधिकारी है। जो शून्य हो जाता है, वह पूर्ण के अवतरण के लिए अवसर देता है। इधर मैं मिटा उधर परमात्मा का अवतरण हुआ। तुम गए कि परमात्मा आया। जब तक तुम हो तब तक परमात्मा नहीं हो सकता।
कबीर ने कहा हैः प्रेमगली अति सांकरी, तामें दो न समाए।

तीसरा प्रश्नः ओशो, क्या तृष्णा-रहित जीवन ही भगवत्ता है? साथ ही आपसे
जो सुख मिला है, उसके लिए धन्यवाद देता हूं।

किरण सत्यार्थी! तृष्णा-रहित जीवन ही भगवत्ता है। भगवान कहीं भी नहीं हैं--व्यक्ति की तरह। भगवान को व्यक्ति की तरह देख कर ही हमारी भ्रांतियों का जाल फैल गया। मंदिर उठे, मस्जिद बने। गिरजे उठे, गुरुद्वारे बने। परमात्मा को व्यक्ति मान कर ही पूजा, अर्चना के जाल फैले। यज्ञ-हवन, पंडित-पुरोहित, मौलवी, पादरी... एक जाल खड़ा हो गया, एक अनंत जाल खड़ा हो गया! बजाय इसके कि धर्म मनुष्य की मुक्ति बनता; धर्म मनुष्य के लिए बेड़ियां और जंजीरें बन गया; धर्म मनुष्य के लिए कारागृह बन गया। और इस सबके पीछे जो बुनियादी भ्रांति हो गई, वह यहां से हुई कि भगवान को हमने व्यक्ति मान लिया। भगवान व्यक्ति नहीं है।
भगवान नहीं है--भगवत्ता है! भगवत्ता गुण है; व्यक्ति नहीं। इसलिए पूजा
का सवाल नहीं है; अनुभव का सवाल है। इसलिए प्रार्थना काम नहीं आएगी; ध्यान काम आएगा। प्रार्थना तो परमात्मा व्यक्ति हो तो कुछ अर्थ रखती है। लेकिन

परमात्मा अगर व्यक्ति नहीं है; अस्तित्व पर फैले हुए जीवन का नाम है; अस्तित्व के सौंदर्य का नाम है; अस्तित्व की गरिमा और गौरव का नाम है; अस्तित्व का ही नाम परमात्मा है--अगर ऐसा है तो फिर प्रार्थना काम नहीं आएगी; फिर प्रार्थना व्यर्थ हो गई, फिर ध्यान काम आएगा।
यही भेद है वास्तविक धर्म में और थोथे धर्म में। थोथा धर्म हाथ जोड़ कर परमात्मा की प्रतिमा बनाता है। खुद की ही बनाई हुई प्रतिमाएं हैं और उनकी ही पूजा करता है। जरा खेल तो देखो, बूढ़ों के खेल, बच्चों से गए-बीते! अपने ही हाथ से बना लिए गणेश जी और होने लगी पूजा, सज गया थाल, दीये जल गए, फूल की मालाएं चढ़ गईं, भजन होने लगे। तुम कभी सोचते भी नहीं कि अपने ही हाथ से बना कर रख ली है यह प्रतिमा। अपने ही खिलौनों की पूजा कर रहे हो! अपने ही द्वारा बनाए गए खिलौनों के सामने घुटने टेक कर खड़े हो!
परमात्मा को तुम कैसे बना सकते हो? अगर बनाया भी हो किसी ने किसी को,
तो परमात्मा ने तुम्हें बनाया होगा, तुम परमात्मा को नहीं बना सकते हो। फिर, परमात्मा को अगर व्यक्ति की तरह देखो, तो सवाल उठता हैः कितने उसके हाथ, कितने उसके चेहरे, कितनी ऊंचाई, क्या रंग, क्या रूप? फिर सब उपद्रव खड़े हुए। फिर कवि की कल्पनाओं को विस्तार मिला। फिर कोई कहता है उसके हजार हाथ, क्योंकि दो हाथ से इतनी बड़ी पृथ्वी को, इतने बड़े विस्तार को, इतने चांद-तारों को कैसे सम्हालेगा? क्या तुम सोचते हो, हजार हाथों से सम्हल जाएंगे? हजार हाथ भी छोटे पड़ जाएंगे। फिर उसके तीन चेहरे बनाने पड़े। क्योंकि अगर एक ही चेहरा हो तो एक ही तरफ देख सके, तो सर्वज्ञाता न रह जाए। तीनों आयाम में देख सके। तो तीन चेहरे बनाए। किसी ने चार चेहरे बनाए, ताकि चारों दिशाओं में देख सके। किसी ने चार हाथ बनाए, ताकि चारों दिशाओं को सम्हाल सके। मगर ये सब मनुष्य की ही कल्पनाएं हैं; तुम्हारे ही विश्वास और फिर उनको रूप देने की चेष्टाएं। सब बचकानी हैं।
भगवान कोई व्यक्ति नहीं है। भगवत्ता! जितनी भी धर्म के जगत में गहन अनुभूतियां हुई हैं, उन सबका प्रमाण यही है, उन सबकी साक्षी यही है। शब्द की तरह उपयोग करते हो भगवान, ठीक है; मगर स्मरण रहे कि वस्तुतः स्थिति भगवत्ता की है, भगवान गुण है, व्यक्ति नहीं; दशा है, व्यक्ति नहीं।
इसलिए बुद्ध ने भगवान को नहीं माना, फिर भी हमने बुद्ध को भगवान कहा। पहले बड़ी पहेली मालूम पड़ती है। बुद्ध कहते हैं कोई भगवान नहीं है और बुद्ध को मानने वाले बुद्ध को ही भगवान कहते हैं! मगर पहली पहली नहीं है, अगर तुम इतनी बात समझ लो। बुद्ध ने कहा कोई भगवान नहीं--अर्थात कोई व्यक्ति नहीं जो सारे संसार को चला रहा हो। थक जाता कभी का, ऊब जाता कभी का। अरे सत्तर साल की जिंदगी में तुम्हीं सोचने लगते हो कि अब बस, मौत आ जाए तो अच्छा। कभी का मर गया होता, आत्महत्या कर ली होती। या ऐसा भागता कि फिर पीछे लौट कर नहीं देखता। आखिर एक सीमा होती है हर चीज की। इस उपद्रव को कब तक कोई व्यक्ति बरदाश्त कर सकता है! इस रुग्ण व्यवस्था को कब तक कौन सम्हाल सकता है! और किसलिए?
नहीं, भगवान कोई व्यक्ति नहीं है; जीवन का ही दूसरा नाम है; जीवंतता का दूसरा नाम है। इसलिए जब तुम परिपूर्ण रूप से जीवंत होते हो और तुम्हारे भीतर सब मौन हो जाता है, सब शांत हो जाता है, सब निर्विचार हो जाता है--तब जो सुगंध उठती है, तब जो अनुभूति होती है, उस अनुभूति का नाम, उस दिव्यता का नाम, उस भगवत्ता का नाम ही भगवान है।
इसलिए किरण, तुम ठीक कहते हो। ठीक तुमने पूछा है कि क्या तृष्णा-रहित जीवन ही भगवत्ता है? हां, जहां तृष्णा गई वहां दौड़ गई। मन है क्या? तृष्णा की दौड़। यह पा लूं, वह पा लूं। यह मिल जाए, वह मिल जाए। संसार की ही दौड़ समाप्त नहीं हो पाती कि परलोक की दौड़ शुरू हो जाती है। यहां भी पाना है, वहां भी पाना है। बटोरना है, बटोरते चले जाना है। मरते-मरते दम तक लोग बटोरते हैं और मरने के बाद भी बटोरते हैं। उसका भी आयोजन कर लेते हैं। परलोक में भी अभी से उन्होंने खाते खोल लिए हैं। दान करते हैं, यज्ञ करवाते हैं, मंदिर बनवाते हैं--सिर्फ इस आशा में कि परलोक में सुरक्षा रहेगी; कहने को रहेगा कि मैंने भी धर्म किया था, कि मैं हकदार हूं, परलोक के सुख पाने का। यह तृष्णा का ही विस्तार है।

तुम्हारा स्वर्ग क्या है? तृष्णा का विस्तार। तुम्हारा नरक क्या है? तुम्हारे भय का विस्तार। भय है, इसलिए तुमने नरक बना लिया। और लोभ है, इसलिए तुमने स्वर्ग बना लिया। न तो कहीं नरक है और न कहीं स्वर्ग है। और कहीं नरक और स्वर्ग हैं तो तुम्हारे भीतर हैं। नरक है तुम्हारी वह दशा, जब तुम तृष्णाओं ही तृष्णाओं में घिरे हो और तृष्णाएं तुम्हें खींच रही हैं चारों तरफ, तोड़े डालती हैं। विक्षुब्ध किए हैं तुम्हें, विक्षिप्त किए हैं तुम्हें। एक क्षण भी शांति का नहीं, विश्रांति का नहीं। एक क्षण मौन का नहीं, एक क्षण ऐसा नहीं जीवन में जिसको तुम विराम और विश्राम का क्षण कह सको।
जब तृष्णाओं की भीड़ में तुम घिरे हो तो तुम नरक में हो और जब तृष्णाएं शांत हो गईं, जब तुमने देख लिया कि सब तृष्णाएं दुष्पूर हैं; लाख करो उपाय, कोई तृष्णा भरती नहीं; लाख धन पा लो, और धन पाने की आकांक्षा बनी रहती है; और कितने ही बड़े पद पर पहुंच जाओ, और बड़े पद पर पहुंचने की दौड़ बनी रहती है। और जीवन इतना जटिल है कि एक चीज में तुम पा लो तो और हजार चीजों में तुम गरीब रह जाते हो।
समझ लो कि तुमने बहुत धन कमा लिया। ठीक, एक दिशा में तुमने बहुत धन कमा लिया। यह भी हो सकता है कि तुम दुनिया के सबसे बड़े धनी हो जाओ। लेकिन, चूंकि तुम्हारी सारी ऊर्जा धन को कमाने में लग गई, इसलिए बहुत सी चीजों में तुम अधूरे रह जाओगे। तुम्हारा स्वास्थ्य वैसा नहीं होगा जैसा अनेकों का होगा; जिन्होंने स्वास्थ्य पर ही ध्यान दिया है। उनकी देह को देखोगे, उनके बल को देखोगे, उनकी बलिष्ठता देखोगे, उनका शरीर सौष्ठव-सौंदर्य देखोगे--ईर्ष्या से जल-भुन जाओगे। क्या हुआ, धन पाकर क्या हुआ? और किसी ने अपना सारा जीवन ज्ञान के बटोरने में लगाया है। जब उसके पांडित्य को देखोगे, तब फिर आग दहक उठेगी कि तुम तो मूढ़ के मूढ़ ही रह गए। फिर यहां जीवन में कितने आयाम हैं। एक में तुम दौड़ कर सफल भी हो जाओ, तो बाकी सब में तुम असफल हो गए। उनकी पीड़ा सालेगी, चुभेगी। और जिसमें तुम सफल हो गए हो, उसमें भी "और" की दौड़ बंद नहीं होती।
एण्ड्रू कारनेगी मरा, दस अरब रुपये छोड़ कर मरा, लेकिन मरते वक्त भी "और" की दौड़ कायम थी। मरते वक्त भी उससे किसी ने पूछा कि हे एंडरू कारनेगी, तुम्हें तो कम से कम निश्चिंत, आनंदपूर्वक मरना चाहिए, कि तुमने जीवन में एक महान कार्य करके दिखाया। दस अरब रुपये एक गरीब घर में पैदा होकर तुमने इकट्ठे किए।
एण्ड्रू कारनेगी ने आंख खोली और कहा कि क्षमा करो, मैं सुख से नहीं मर सकता हूं, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये कमाने के थे। मैं नब्बे अरब रुपयों से गरीब हूं।
दस अरब रुपयों से अमीर नहीं है वह; नब्बे अरब रुपयों से गरीब है। तुम्हें उसकी अमीरी दिखाई पड़ रही है; उसे बेचारे को अपनी गरीबी दिखाई पड़ रही है। वह हार गया है।
निजाम हैदराबाद दुनिया के सबसे बड़े अमीर समझे जाते थे। इतने हीरे- जवाहरात उनके पास थे कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती थी, इसलिए उनको तराजू पर तौला जाता था। सेरों से तौल कर रखे जाते थे, क्योंकि गोलकुंडा की खदान, जिससे कोहिनूर जैसा हीरा निकला--वह भी कभी निजाम हैदराबाद का ही हीरा था-- उस खदान से जितने भी अच्छे हीरे निकलते, पहले निजाम के पास आते, फिर बाजार में जाते। वह अच्छे-अच्छे हीरे खुद चुन लेता। इतने हीरे थे कि उन सारे हीरों को एक साल में निकाला जाता था धूप दिखाने के लिए। तो सात छतें उसके महल की भर जाती थीं। अकूत खजाना था। कोई हिसाब नहीं था कि उन हीरों के कितने दाम हैं।
लेकिन निजाम हैदराबाद की हालत तुम समझते हो! तीस साल एक ही टोपी पहने रहा! उससे बदबू आती थी, उसको धुलवाता भी नहीं था, क्योंकि धोने में खराब हो जाएगी। एक ही कोट पहने रहा। लोग कहते भीः कभी जवानी में बना था, अब आप बूढ़े हो गए, शरीर दुबला हो गया, यह बिल्कुल ढीला लगता है, किसी और का लगता है। निजाम हैदराबाद कहताः क्या फर्क पड़ता है! दुनिया जानती है कि मैं निजाम हूं हैदराबाद का। मैं चाहे चुस्त कोट पहनूं, चाहे ढीला कोट पहनूं क्या

फर्क पड़ता है? मगर फर्क सिर्फ सौ पचास रुपये का, वह भी खर्च नहीं कर सकता था वह। तुम जान कर हैरान होओगे कि मेहमानों को सिगरेट पिलाता था तो उसकी छाती जलती थी; मेहमान सिगरेट पीते थे, छाती उसकी जलती थी। और जैसे ही मेहमान जाते थे; जो पहला काम वह करता था, ऐशट्रे में से उनकी जो अधजली सिगरेट के टुकड़े थे, वे इकट्ठे कर लेता था, वे खुद पीता था। तुमने इससे ज्यादा दरिद्र आदमी दुनिया में देखा? भिखमंगा भी यह न करे। भिखमंगा भी सड़क पर पड़े हुए टुकड़े न उठाए। निजाम हैदराबाद जैसा धनपति और सिगरेट के टुकड़े दूसरों के झूठे टुकड़े उठा कर पीए! भयंकर लोभी!
उसके पास एक बहुत बड़ा हीरा था, जो वह टेबल पर पेपरवेट की तरह उपयोग करता था। जब मरा तो वह हीरा नहीं मिला एकदम, लोग बड़े हैरान हुए कि मामला क्या है, हीरा गया कहां? क्या ले गया निजाम हैदराबाद अपने साथ? बहुत खोजा, वह मिला ही नहीं। आखिर में मिला तो कहां मिला! निजाम हैदराबाद ने अपने जूते में छिपा रखा था। मरते वक्त भी फिकर रही होगी उसको इस हीरे की, कि कोई इसको चुरा-चुरू न ले। जूते में कौन खोजेगा! उसने जूते के अंदर उसको छिपा कर रख दिया था अपने बिस्तर के नीचे। जूते उसके इतने गंदे थे, उनको सुधरवाता रहता था। उसने थेगड़े लगवा लिए थे। और यह आदमी दुनिया का सबसे बड़ा धनपति था।
इधर लोभ और भय का भी कोई अंत नहीं था, इतना ही भय भी था। लोभी में अक्सर
भय भी होता है। भय और लोभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वह भयभीत इतना था कि रात उसे भूतों का बहुत डर लगता था। सच तो यह है कि जहां तक मैं जानता हूं, भूत उससे डरते थे। ऐसे आदमी से भूत न डरें तो क्या हो। समझ लो कि भूत सिगरेट पी रहा है, वह छीन ही ले। मगर वह भूतों से डरता था। किसी उस्ताद ने उसको बता दिया था कि भूतों से बचने का एक ही उपाय है। तो वह उपाय करता था, वह उपाय उसको सोने नहीं देता था। वह उपाय अजीब था। इस दुनिया में एक से एक ज्ञानी पड़े हैं! मूढ़ों का अंत नहीं है, इसलिए ज्ञानियों का अंत नहीं है। मूढ़ों को चाहिए महामूढ़, तब तो वे उनको गुरु मानें। उसने बताया था कि तरकीब एक ही है भूतों से बचने की और वह यह है कि रात जब सोओ तो एक लोटे में नमक भर कर, उसमें अपना पैर डाल दो। नमक पास रहे और तुम्हें छूता रहे, भूत पास नहीं आ सकता। नमक से भूत बहुत डरते हैं।
तो बेचारा एक बड़ा लोटा, उसमें नमक और उसमें एक पैर डाल कर और उसको पैर
से बांध कर रात सोता था। अब ऐसे कहीं नींद आएगी! मगर नींद की कौन फिकर करे, बचना भूतों से है! ऐसा भयभीत, ऐसा लोभी--और सारा धन उसका! दुनिया का सबसे बड़ा धनी!
धन मिल जाए तो भी कुछ मिलता नहीं; "और" की दौड़ कायम रहती है। और एक दिशा में मिलता है कुछ, तो बाकी दिशाओं में खो जाता है। इसलिए बेचैनी, विषाद बना ही रहता है।
इस दुनिया में इस सत्य को जो देख लेता है कि तृष्णा दुष्पूर है, भरती
ही नहीं, भर सकती ही नहीं--वही व्यक्ति भगवत्ता को उपलब्ध हो जाता है। तृष्णा गिरी कि तुम भगवान हो। तृष्णा ने ही तुम्हें तुम्हारी भगवत्ता से नीचे उतार लिया है। तृष्णा की धूल जम गई है तुम्हारी भगवत्ता पर।
इसलिए महावीर, बुद्ध, कबीर, नानक--जो जागे हैं--उन्होंने एक ही बात समझाई है कि किसी तरह तृष्णा को समझ लो, देख लो और तृष्णा से मुक्त हो जाओ। अब यह मत सोचना कि संसार छोड़ कर भाग जाओगे तो तृष्णा से मुक्त हो जाओगे। तृष्णा से मुक्त होने के लिए खूब जागरूकता चाहिए, सघन ध्यान चाहिए; भगोड़ेपन से कुछ भी नहीं होगा। धन से नहीं मिटती तृष्णा; ध्यान से मिटती है। और धन के त्याग से भी नहीं मिटती तृष्णा; यद्यपि तृष्णा मिट जाए तो धन पर पकड़ छूट जाती है। मगर पकड़ का छूट जाना और त्यागने में बड़ा फर्क है। त्याग तो पकड़ ही है। जब तुम कहते हो कि मैंने त्याग दिया तो तुम यही कह रहे हो कि तुम मानते हो अभी भी कि वह तुम्हारा था, नहीं तो त्यागा क्या? अगर तुम जानते हो--खाली हाथ आए, खाली हाथ जाएंगे--तो त्यागोगे क्या? त्यागने को क्या है?
तो इस जगत में जो व्यक्ति समझ लेता है, वह चुपचाप, जो मिल जाए--झोपड़ा तो झोपड़ा और महल तो महल--उसका उपयोग करता है, लेकिन पकड़ता नहीं। आज महल मिल

जाए तो महल ठीक; कुछ महल से घबड़ाता भी नहीं, कुछ महल से परेशान भी नहीं होता। और कल महल चला जाए तो पीछे लौट कर भी नहीं देखता है। कल झोपड़ा तो झोपड़ा सही। जिस व्यक्ति की तृष्णा गिर गई, वह कह सकता है कबीर के साथ--होनी होय सो होय! जो होना हो हो, मैं राजी हूं। उसकी कोई शर्त नहीं होती अस्तित्व के साथ कि यह शर्त पूरी होगी तो ही मैं प्रसन्न होऊंगा; वह बेशर्त प्रसन्न होता है।
और मेरी यही संन्यास की परिभाषा है--बेशर्त आनंदित। न तो भोग में आनंद है, न त्याग में आनंद है। आनंद है इस अनुभव में, कि यहां भोग भी गलत है, त्याग भी गलत है। यहां अपना कुछ है ही नहीं। उपयोग भर कर लो। सराय है यह, घर नहीं है। कुछ ने घर समझ कर पकड़ लिया है और कुछ ने घर समझ कर छोड़ दिया है। सराय समझ कर ठहरो और सुबह जब चलने का मौका आ जाए तो अलविदा। धीरे-धीरे तुम्हारी भगवत्ता निखर आएगी।
तुम उतने ही भगवान हो, जितने बुद्ध, जितने कृष्ण, जितने राम; रत्ती भर
का भेद नहीं। अगर कुछ भेद है तो इतना ही कि उन्हें बोध है कि वे कौन हैं और तुम्हें बोध नहीं कि तुम कौन हो।

प्यार है विहंगों में
बार-बार जीने का,
बार-बार रंग, रूप, नेह, नीर पीने का,
बार-बार पक्षी का--
जन्म नया पाने का,
बार-बार गाने का--नीड़ के बनाने का।

प्यार है मनुष्यों में--
बार-बार जीने का,
बार-बार राग, रूप, गंध, धूप पीने का, बार-बार पृथ्वी में--
जन्म नया पाने का,
बार-बार गाने का--गेह के बसाने का।

यही तृष्णा है! --

बार-बार गाने का--गेह के बसाने का।
बार-बार गाने का--नीड़ के बनाने का।

सराय समझो। यहां कोई नीड़ नहीं, कोई गेह नहीं। और फिर बार-बार बसाने की क्या चिंता? फिर-फिर लौट आने की क्या आकांक्षा? मुक्त भाव से जीओ, जब तक हो जीओ।
जिसकी और पाने की दौड़ छूट गई, उसकी और आने की दौड़ भी समाप्त हो गई। यह तृष्णा ही है जो तुम्हें जन्मों-जन्मों में वापस ले आती है। यह तृष्णा ही है जो तुम्हें जन्म और मृत्यु के वर्तुल में घुमाती रहती है। तृष्णा गई कि तुम इस चक्र के बाहर हुए। और जो इस चक्र के बाहर है उसके आनंद का पारावार नहीं।

छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

जीवन में है सुरंग सुधियां सुहावनी
छवियों की चित्र-गंध फैली मनभावनी
तन सुगंध शेष रही बीत गई यामिनी
कुंतल के फूलों की याद बनी चांदनी

भूली-सी एक छुवन

बनता हर जीवित क्षण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

यश है न वैभव है, मान है न सरमाया
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया प्रभुता का शरण-बिंब केवल मृग-तृष्णा है हर चांदेरा में छिपी एक रात कृष्णा है

जो है यथार्थ कठिन
उसका तू कर पूजन
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

द्विविधता साहस है दिखता है पंथ नहीं देह सुखी हो पर मन से दुख का अंत नहीं दुख है न चांद खिला शरद रात आने पर
क्या हुआ जो खिला फूल रस-वसंत जाने पर

जो न मिला भूल उसे
करे तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

जगत में छायाएं ही छायाएं हैं--धन की, पद की, प्रतिष्ठा की। इन छायाओं
को पकड़ने को दौड़ोगे, कि दुख बढ़ेगा। पकड़ तो पाओगे नहीं, दुख बढ़ता है, बढ़ता ही रहेगा। जितने हारोगे उतनी ही तेजी से दौड़ोगे। जितना हारोगे उतनी और शक्ति इकट्ठी करके छायाओं को पकड़ना चाहोगे। और छायाएं पकड़ में आती नहीं। इसलिए जिन्होंने जाना, उन्होंने जगत को छाया कहा, माया कहा।
तृष्णा यानी छाया, तृष्णा यानी माया। और छाया और माया से जो जागा उस जागरण में ही भगवत्ता है।
और जब तक तुम तृष्णा में हो, तब तक तुम अपने को कुछ का कुछ समझते रहोगे, क्योंकि तृष्णा बाहर भटकाए रखती है। तृष्णा भीतर आने का समय नहीं देती, अवसर नहीं देती। तुम जान ही न सकोगे कि तुम कौन हो। मैं कौन हूं, यह प्रश्न, यह जिज्ञासा अनुत्तरित ही रह जाएगी। और यही एकमात्र प्रश्न है, जो सच्चा प्रश्न है। और यही एकमात्र प्रश्न है, जो सुलझ जाए तो जीवन की सब उलझन सुलझ जाती है, सब पहेलियां हल हो जाती हैं। और जिसने अपने को जाना नहीं, वह कुछ न कुछ मानता रहेगा। कोई मानता है मैं देह हूं, कोई मानता है मैं मन हूं, कोई मानता है मैं धन हूं।
तुमने देखा, कुछ लोगों का धन खो जाए, दिवाला निकल जाए, तो आत्महत्या ही
कर लेते हैं। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ इतना ही हुआ कि उन्होंने धन को ही अपना जीवन मान रखा था। वह धन ही न रहा, तो अब जी कर क्या करोगे? किसी की पत्नी मर गई, उन्होंने जहर पी लिया। तो उन्होंने पत्नी में ही अपने प्राण रख दिए थे।
तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी होंगी। उन कहानियों में कोई राजा, कोई सम्राट अपने प्राण किसी पक्षी में रख देता है। कोई रख देता है तोते में, कौई मैना में। उस राजा को कितना ही मारो, वह नहीं मर सकता। लेकिन तोते की गर्दन मरोड़ दो कि राजा मर जाता है। वे कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं। यही हमारी दशा है। किसी ने धन में रख दिए अपने प्राण। इनको कितना ही मारो, ये न मरेंगे। इनका धन चला जाए कि बस ये गए। धन में ही इनका जीवन है। लोग कहते हैं कि धन का जो पागल है वह मर भी जाए तो गड़े धन पर सांप होकर बैठ जाता है। मरने की जरूरत ही नहीं, जिंदा में ही लोग सांप होकर बैठे रहते हैं।

तुम्हारा जहां मोह है, वहीं तुम्हारा प्राण है। जिनका राजनीति में मोह है, उनके प्राण दिल्ली में। वे रहें कहीं, तुम उनको कितना ही मारो, मार नहीं सकोगे। गोली आर-पार हो जाएगी, बेकार जाएगी। तुम्हें उनकी कुर्सी को छेदना पड़ेगा। अगर तुम उनकी कुर्सी मार दो, वे मारे गए। बस कुर्सी में ही प्राण हैं। जब तक कुर्सी पर लोग रहते हैं, देखते हो तुम, उनकी छाती कैसी फूली रहती है! उनकी चाल में क्या रंग होता है, क्या ढंग होता है! बूढ़े भी जवान मालूम होते हैं। कुर्सी चली गई जवान भी बूढ़े हो जाते हैं--एकदम लचर-पचर, कमर झुक जाती है! सारा बल ही गया। रीढ़ ही टूट गई।
लोग अपने को कुछ न कुछ माने हुए हैं। जिस चीज में तुम्हारी तृष्णा जुड़ी है, वही तुम हो जाते हो। तृष्णा तादात्म्य पैदा करती है, तादात्म्य से भ्रांति हो जाती है। सारी तृष्णाएं टूट जाएं तो तुम जान सकते हो कि मैं कौन हूं।
मुल्ला नसरुद्दीन को वहम हो गया था कि वह एक चूहा है। कुछ बुरा वहम नहीं। किसी को वहम हो जाता है राष्ट्रपति है, किसी को वहम हो जाता है प्रधानमंत्री है। उससे तो बेहतर। झगड़ा-झांसा तो नहीं है। न चुनाव लड़ने की झंझट, न किसी को परेशान करने की झंझट। बिल्कुल अहिंसात्मक तादात्म्य था उसका--चूहा! किसी की कोई स्पर्धा भी नहीं, कोई भाग-दौड़ भी नहीं। किसी का विरोध भी नहीं। घर के लोग, मित्र-गण, मोहल्ले-पड़ोस के आदमी परेशान। पहले तो समझे कि नसरुद्दीन मजाक करता है, फिर धीरे-धीरे जब समझ में आया कि मामला वाकई में गंभीर है, तो वे मुल्ला को पकड़ कर एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक के पास ले गए।
मनोवैज्ञानिक ने एक माह तक नसरुद्दीन का महंगा इलाज किया। जब मुल्ला
का वहम पूर्णतः दूर हो गया, और वह पुनः अपने आप को मनुष्य मानने लगा, तब उसने फीस चुकाकर डाक्टर से विदा ली। वह डाक्टर के घर की सीढ़ियां उतर रहा था, तभी अचानक एक बिल्ली सामने से गुजर गई। मुल्ला चीख मार कर छलांग लगाता हुआ वापस सीढ़ियां चढ़ गया।
मनोवैज्ञानिक ने पूछाः क्यों मुल्ला, क्या बात है? घबड़ा क्यों रहे हो? नसरुद्दीन बोलाः घबड़ाऊं नहीं तो क्या करूं! जान का खतरा था। अभी-अभी एक बिल्ली रास्ता काट गई। वह तो गनीमत है कि उसकी नजरें मुझ पर नहीं पड़ीं, वरना आज जिंदगी से हाथ धो बैठता।
कंधे पर हाथ रखते हुए मनोवैज्ञानिक ने कहाः नसरुद्दीन, क्या तुम फिर भूल गए कि तुम चूहा नहीं हो? अब तुम मानने लगे हो कि तुम मनुष्य हो? मुल्ला बोलाः आप बिल्कुल ठीक कहते हैं डाक्टर। मैं मानता हू कि मैं मनुष्य हूं, लेकिन बिल्ली को क्या मालूम? उसने थोड़े ही आपसे इलाज करवाया है!
लोगों को गौर से देखो--कोई अपने को धन मानता है, कोई अपने को पद मानता है, कोई तन मानता है, कोई मन मानता है। और स्वाभाविक क्योंकि जब तक तुम अपने को नहीं जानते, कुछ न कुछ तो मानोगे। और अपने को जानने की सुविधा कहां, अवकाश कहां! थोड़ा बाहर की आपा-धापी बंद हो, थोड़ी बाहर की दौड़ क्षीण हो, तो तुम भीतर मुड़ो। थोड़ा समय भीतर जाओ, तो अपने से पहचान हो आत्म-साक्षात्कार हो।
आत्म-साक्षात्कार का एक ही उपाय है: तृष्णा से मुक्ति। और आत्म-साक्षात्कार ही भगवत्ता का अनुभव है। वही बोध है, जहां उदघोष उठता हैः अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक!

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
तीसरा प्रवचन

मैं अपने साहब संग चली

सूत्र

भींजै चुनरिया प्रेम-रस बूंदन।
आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन।
काहे की तोरी बनी चुनरिया काहे को लगे चारों फूंदन।
पांच तत्त की बनी रे चुनरिया नाम के लागे फूंदन।
चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे झूलन।।
भींजै चुनरिया प्रेम-रस बूंदन।

मैं अपने साहिब संग चली।
हाथ में नरियल मुख में बीड़ा, मोतियन मांग भरी।
मैं अपने साहिब संग चली।
लिल्ली घोड़ी जरद बछेड़ी, तापै चढ़ि के चली।
मैं अपने साहिब संग चली।
नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।
मैं अपने साहिब संग चली।

कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ।।
हरि-रस पीया जाणिए, जे कबहूं न जाइ खुमार।
मैंमंता घूमत रहे, नाहीं तन की सार।।
सबै रसायण मैं किया, हरि-सा और न कोई।
तिल इक घट मैं संचरै, तो सब कंचन होइ।।

आइ न सकौं तुज्झपै, सकूं न तुज्झ बुलाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ।।
यहु तन जालौं मसि करूं, ज्यूं धूवां जाइ सुरग्गि।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि।।
यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नांऊं।
लेखणि करूं करंक की, लिखी लिखी राम पठाऊं।।
इस तन का दीवा करौं, बाती मेलूं जीव।
लोही सींचौं तेल ज्यू, कब मुख देखौं पीव।।
कै बिरहीन कूं मींच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दग्झणां, मौपे सहा न जाइ।

अब शीघ्र करो तैयारी मेरे जाने की
रथ जाने को बाहर तैयार खड़ा मेरा,
है मंजिल मेरी दूर बहुत, पथ दुर्गम है, हर एक दिशा पर डाला है तम ने डेरा

कल तक तो मैंने गीत मिलन के गाए थे
पर आज विदा का अंतिम गीत सुनाऊंगा,
कल तक आंसू से मोल दिया जग-जीवन का
अब आज लहू से बाकी कर्ज चुकाऊंगा।

कल खेला था अलियों-कलियों की गलियों में अब आज मुझे मरघट में रास रचाने दो,
कल मुस्काया था बैठ किसी की पलकों पर

हैं भूत-प्रेत--से नाच रहे टूटे सपने हैं विकल चिताएं मुझे चूमने को प्रतिपल दाहक-से सब लगते मुझको मेरे अपने।

पथराती जाती हैं नीली-पीली पुतली,
मन में भीषण तूफान घुमड़ता आता है, सारे शरीर में हलचल है भूचालों की, पलकों पर तम का परदा छाता जाता है।

फिर भी आहों से और सिसकियों से छिन-छिन तुम बांध रहे हो मेरे पैरों की गति को, फिर भी लाकर तुम बाढ़ आंसुओं की अनंत
हो डुबो रहे मुझको, मेरे पथ अथ-इति को।

उस अजित मृत्यु के फंदे के आगे सचमुच
हैं बहुत क्षीण कमजोर तुम्हारी ये बांहें, उसके घन-गर्जन तांडव-नर्तन में सचमुच हैं नहीं एक क्षण टिक सकते आंसू-आंहें।

जीवन में तो आंसू का मूल्य बहुत कुछ है वह साथी है एकाकी सूने जीवन का,
वह दीपक है तम भरी निशा की राहों का,
वह मोती है हत-भाग्य थकित, निर्धन-मन का।

पर काल काल के आगे सोना मिट्टी है। हीरे-मोती की कीमत कब उसने जानी? पहचानी कब उसने पारस की स्वर्ण-शक्ति बस मिट्टी की सत्ता केवल उसने मानी।

उसने कब यह सोचा कि एक कलिका के संग कितने तुतले अरमान बंधे हैं मधुवन के?
कब उसे ज्ञात यह हुआ कि एक सांस के संग कितने सपने जीते-मरते हैं जीवन के?

कब किसी नीड़ के तिनकों से उसने पूछा
किस जगह तुम्हारे दिल पर बिजली टूटी है? कब किसी विकल पंछी से उसने प्रश्न किया किसने जगह तुम्हारी प्राण-पपिहरी छूटी है?

है और किसी से मोह न उसको कभी हुआ, परिवर्तन--केवल परिवर्तन उसका साथी
हैं नाश-सृजन उसके शाश्वत गतिमय दो पग
मृत्तिका-मृत्तिका ही केवल उसकी थाती।

हम सत्य समझते हैं उनको जो नित्य नये
खिलते मधुवन में रंग-बिरंगे फूल-शूल
पर अटहास कर पतझर कहता है हमसे
वह देखो मरघट में किसकी उड़ रही धूल?

जीवन के तीन बड़े सत्य हैं। उनमें दो केवल भासते हैं कि सत्य हैं; हैं नहीं। और एक जो सत्य है, पर भासता नहीं कि सत्य जैसा है। उन तीन सत्यों को समझना जरूरी है। दो केवल आभास हैं, मगर प्रतीत होते हैं कि बहुत वास्तविक। और एक--जो आभास जैसा मालूम होता है, वही है सत्य--एकमात्र सत्य। पहला है

जन्म, दूसरा है मृत्यु और दोनों के मध्य में है प्रेम। जन्म झूठा है। कभी हुआ नहीं। रोज होता लगता है। बार-बार तुम जन्मे हो, पर कभी जन्मे नहीं। जन्म के पहले भी तुम थे।
और ऐसी ही झूठ है मृत्यु। रोज-रोज घटती है। हजार बार तुम मरे हो, मरकर
भी मरे कहां! मृत्यु होती है मगर होती कहां! न कोई जन्मता है न कोई मरता है। जन्म के पहले हो तुम, मृत्यु के बाद भी हो तुम। लेकिन दोनों बड़े सत्य मालूम पड़ते हैं। दोनों से ही बना लगता है जीवन का ताना-बाना।
और दोनों के बीच में है प्रेम। और प्रेम बिल्कुल असत्य मालूम पड़ता है; कवियों की कल्पना मालूम पड़ता है; उन्मत्तों की भावदशा मालूम पड़ता है। लेकिन प्रेम ही है एकमात्र सत्य, क्योंकि प्रेम से ही तुम उसे जान सकोगे जो है--जो जन्म के भी पहले है और मृत्यु के बाद भी है। प्रेम है द्वार परमात्मा का।
मैं तुम्हारे प्रेम की बात नहीं कर रहा। जब तक तुम्हें जीवन और मृत्यु का असत्य न दिखाई पड़े, तब तक तुम्हारा प्रेम भी झूठा ही होगा। झूठा जन्म, झूठी मौत; दोनों के बीच में जो प्रेम होगा; वह सच कैसे हो सकता है? यह किनारा झूठा, वह किनारा झूठा; बीच में सेतु बनाओगे, वह सेतु सत्य नहीं हो सकता। दो असत्यों को जोड़ने वाला सेतु सत्य कैसे होगा?
नहीं, तुम्हारे प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं। उस प्रेम की बात कर रहा हूं जिस प्रेम की बात कबीर कर रहे हैं, मीरा कर रही है, चैतन्य कर रहे हैं। एक प्रेम है, जो वासना नहीं है। एक प्रेम है, जो कामना नहीं है। एक प्रेम है, जो प्रार्थना है। और प्रेम की वह ऊंचाई, वह उत्तुंग शिखर, जहां प्रेम प्रार्थना बन जाता है, अर्चना बन जाता है, आराधना बन जाता है--उससे ही खुलता है द्वार प्रभु का। जागो--जन्म से। जागो--मृत्यु से। जागो--प्रेम में! झूठ से जागो ताकि सत्य को देख सको। प्रेम और परमात्मा पर्यायवाची हैं।
कबीर ठीक कहते हैंः भींजै चुनरिया प्रेम-रस बूंदन।
मेरी चुनरिया तो अब प्रेम की वर्षा में भीगी जाती है। होने लगी बूंदा- बांदी अनंत की, अमृत की।
भाषा के साथ एक कठिनाई है। कबीर कहें प्रेम, तो अपने अर्थो में कहते हैं। तुम सुनोगे प्रेम, अपने अर्थों में सुनोगे। और वहीं सब चूक हो जाती है। कबीर जब प्रेम की बात कर रहे हैं तो तुम्हारे प्रेम की बात नहीं कर रहे हैं, इसे तो तुम गांठ बांध लेना। तुम्हारे प्रेम में तो सिवाय विषाद के, दुख के, पीड़ा के, कलह के, संघर्ष के, ईर्ष्या के, वैमनस्य के--और क्या जन्मता है? तुम्हारे प्रेम में कभी फूल लगते ही नहीं, कांटे ही लगते हैं। यह किसी और ही प्रेम की बात है, जिससे तुम अपरिचित हो और जिससे परिचित होना जरूरी है; जिससे परिचित होने का नाम ही धर्म, योग, तंत्र, ध्यान; जिससे परिचित होने की ही व्यवस्था सदियों-सदियों में बुद्धपुरुषों ने निर्मित की है। तोड़ना है तुम्हारे प्रेम से तुम्हें और जोड़ना है किसी अनूठे प्रेम से, जिसकी तुम्हें खबर ही नहीं; जिसका तुमने स्वप्न भी नहीं देखा है। भीजैं चुनरिया प्रेम-रस बूंदन।
कबीर कहते हैंः नाच उठा हूं, मगन हो गया हूं, मदमस्त हो गया हूं। यह आकाश टूट पड़ा मेरे ऊपर। यह कैसा प्रेम है जो मुझे भिगोए चला जाता है, डुबोए चला जाता है! यह चारों तरफ से कैसे प्रेम की बूंदाबांदी होने लगी!
यह होती है। इस होने के लिए तुम्हारी भूमि तैयार होनी चाहिए, भूमिका निर्मित होनी चाहिए। तुम्हारी पात्रता होनी चाहिए। हम उतना ही पाते हैं जितनी हमारी योग्यता होती है। जिसकी योग्यता हीरे पाने की नहीं है, उसे तुम हीरा दे भी दो तो जल्दी ही गंवा देगा। कंकड़-पत्थर खरीद लेगा। हीरे के बदले में पत्थरों के ढेर लगा लेगा। जिसे गुण का बोध नहीं है, जो केवल परिमाण को ही समझता है, अगर उसे कोई मिल जाएगा पत्थरों का ढेर देने वाला, तो एक हीरे को वह क्या करेगा! वह सोचेगाः "एक हीरे के बदले में इतने पत्थर मिलते हैं, खरीद ही लो! सौदा करने जैसा है।"
हीरा सिर्फ जौहरी के लिए हीरा है।

मैंने सुना है, एक कुम्हार को रास्ते पर चलते समय--बाजार से लौटता था अपनी मटकियां बेच कर, अपने गधे को लेकर--एक हीरा पड़ा मिल गया। बड़ा हीरा! उठा लिया सोच कर कि चमकदार पत्थर है, बच्चे खेलेंगे। फिर राह में ख्याल आया उसे कि बच्चे कहीं गंवा देंगे, यहां-वहां खो देंगे, अच्छा हो गधे के गले में लटका दूं। गधे के लिए आभूषण हो जाएगा।
कुम्हार के हाथ हीरा पड़े तो गधे के गले में लटकेगा ही, और जाएगा कहां! उसने गधे के गले में हीरा लटका दिया। एक जौहरी अपने घोड़े पर सवार आता था। देख कर चौंक गया। बहुत हीरे उसने देखे थे, पर ऐसा हीरा नहीं देखा था। और गधे के गले में लटका! रोक लिया घोड़ा। समझ गया कि इस मूढ़ को कुछ पता नहीं है। इसलिए नहीं कहा कि इस हीरे का कितना दाम; कहा कि इस पत्थर का क्या लेगा? कुम्हार ने बहुत सोचा-विचारा, बहुत हिम्मत करके कहा कि आठ आने दे दें। जौहरी तो बिल्कुल समझ गया कि इसे कुछ भी पता नहीं है। आठ आने में करोड़ों का हीरा बेच रहा है! मगर जौहरी को भी कंजूसी पकड़ी। उसने सोचा: चार आने लेगा? चार आने में देगा? आठ आने, शर्म नहीं आती इस पत्थर के मांगते। कुम्हार ने कहा कि फिर रहने दो। फिर गधे के गले में ही ठीक। चार आने के पीछे कौन उसके गले में पहनाए हुए पत्थर को उतारे!
जौहरी यह सोच कर आगे बढ़ गया कि और दो आने लेगा, ज्यादा से ज्यादा; या आगे बढ़ जाऊं तो शायद चार आने में ही दे दे। मगर उसके पीछे ही एक और जौहरी आ गया। और उसने एक रुपये में वह पत्थर खरीद लिया। जब तक पहला जौहरी वापस लौटा, सौदा हो चुका था। पहले जौहरी ने कहा: अरे मूर्ख, अरे पागल कुम्हार! तुझे पता है तूने क्या किया? करोड़ों की चीज एक रुपये में बेच दी!
वह कुम्हार हंसने लगा। उसने कहाः मैं तो कुम्हार हूं, मुझे तो पता नहीं कि करोड़ों का था हीरा। मैंने तो सोचा एक रुपया मिलता है, यही क्या कम है! महीने भर की मजदूरी हो गई। मगर तुम्हारे लिए क्या कहूं, तुम तो जौहरी हो, तुम आठ आने में न ले सके। करोड़ों तुमने गंवाए हैं, मैंने नहीं गंवाए। मुझे तो पता ही नहीं था।
तुम्हें भी पता नहीं है कि तुम कितना गंवा रहे हो! मगर तुमसे भी ज्यादा वे लोग गंवा रहे हैं जिन्हें शास्त्र कंठस्थ हैं; जिन्हें वेद, उपनिषद, कुरान याद हैं; जो रोज हीरों की बातें कर रहे हैं। तुमसे भी ज्यादा वे गंवा रहे हैं। कम से कम उन्हें तो बोध होना चाहिए। लेकिन परमात्मा की बातें चलती हैं, खोज कोई नहीं करता। आत्मा की बातें होती हैं, लेकिन ध्यान कोई नहीं करता। मंदिर में पूजा-पाठ के आयोजन होते हैं, मगर पूजा कहां, प्रार्थना कहां! पूजा और प्रार्थना क्रियाकांड का नाम नहीं है; औपचारिकता नहीं है।
पूजा और प्रार्थना की तैयारी चाहिए, सम्यक तैयारी चाहिए। उस तैयारी
के दो सूत्र समझ लेने जरूरी हैं, तो ये प्रेम की बूंदें तुम्हारी चुनरिया पर भी बरसें। दो ही सूत्र हैं, और उनमें से तुम एक पूरा कर लो तो दूसरा अपने आप पूरा हो जाता है। एक सूत्र है--ध्यान--कि शून्य हो जाओ। और उस शून्य में परम जागरूकता को साध लो; सब सन्नाटा हो जाए भीतर, सिर्फ बोधमात्र रह जाए-- कि हूं! सो मत जाना। सन्नाटा हुआ और सो गए, तो ध्यान गंवा बैठे; हीरे के पास पहुंचते-पहुंचते हाथ चूक गया। बस जरा और खोदना था, बस जरा और। शायद इंच दो इंच पर्त और मिट्टी की थी और फिर हीरे की खदान थी।
लेकिन अक्सर यह होता है, जो लोग भी ध्यान करने बैठते हैं, जल्दी ही झपकी खा जाते हैं, नींद में पड़ जाते हैं। जब तक विचार चलते रहते हैं तब तक जागे रहते हैं, जैसे ही ध्यान के करीब पहुंचने लगते हैं वैसे ही नींद आने लगती है।
तो तुम्हें मैं एक याददाश्त के लिए वह बात कह दूं कि जब तुम्हें नींद आने लगे ध्यान में, तो समझना कि अब है सम्हलने का वक्त। वह नींद सूचक है इस बात की कि अब मन कह रहा है अब सो जाने में सार है। अब जरा और आगे गए तो मौत है मन की, क्योंकि ध्यान मन की मृत्यु है। तो जब मन झपकी लेने लगे, तंद्रा में उतरने लगे, तब तो झकझोर देना अपने को। तब तो झकझोर कर चौंक जाना। बुद्ध ने, जिन्होंने ध्यान के इस मार्ग पर सर्वाधिक प्रयोग किए, अपने भिक्षुओं को कहा था कि बैठ कर ध्यान करो। लेकिन जैसे ही जरा सी भी झलक

तुम्हें लगे कि नींद का कोई सिलसिला शुरू होता है, उठ कर खड़े हो जाना; फिर चल कर ध्यान करो, फिर बैठ कर ध्यान मत करो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि बैठ कर ध्यान करें, वह तो ठीक है; अगर लेट कर करें तो कोई हर्जा है? हर्जा तो कुछ नहीं है, लेकिन बैठ कर ही तुम सो जाओगे, लेट कर तो फिर बात ही और है। लेटे कि तुम सोए ही। वह मन तरकीबें निकाल रहा है। बैठे-बैठे भी सोओगे, लेकिन सोने की संभावना कम है। क्योंकि जब तुम बैठे हो, तो जमीन का गुरुत्वाकर्षण तुम्हें सोने नहीं देता। जब तुम लेट गए, तो जमीन का गुरुत्वाकर्षण तुम्हारे पूरे शरीर पर समान रूप से पड़ने लगता है। एक तारतम्य बंध जाता है, एक संगीतबद्धता पैदा हो जाती है। इसलिए खड़े होकर सोना और भी मुश्किल है। क्योंकि जमीन का गुरुत्वाकर्षण जोर से खींचता है, और सारे शरीर फर उसका समान अनुपात नहीं होता। बिना तकिए के भी सोना मुश्किल है। क्योंकि गुरुत्वाकर्षण के कारण मस्तिष्क में खून की धारा उतनी ही चलती है, जितनी शरीर के और हिस्सों में चलती है। और मस्तिष्क में खून की धारा चलती रहे, तो नींद आनी मुश्किल। शीर्षासन करके सोना सर्वाधिक मुश्किल है, क्योंकि शीर्षासन किए हुए, सारे खून की धारा सिर की तरफ जा रही है। और सिर को ही सोना है और वहां इतना खून का प्रवाह है कि तंतु एकदम शिथिल नहीं हो सकते और सो नहीं सकते।
पद्मासन में बैठने की जो प्रक्रिया शुरू हुई वह इसीलिए हुई कि रीढ़ पृथ्वी के साथ नब्बे का कोण बनाए, तो सबसे कम संभावना है तंद्रा के उतरने की। और जब भी तुम्हें लगे कि तंद्रा आने लगी, पहली ही उसकी पगध्वनि सुनाई पड़े, तो बुद्ध ने कहाः उठ जाना, खड़े हो जाना, चलने लगना। चार कदम आगे देखते हुए धीरे-धीरे चलना और अब चल कर ही ध्यान करना। तो बुद्ध ने ध्यान की दो विधियां दींः बैठ कर ध्यान करना और चंक्रमण, चल कर ध्यान करना। जब तुम्हें लगे तंद्रा दूर हट गई, फिर बैठ जाना।
अगर तुम बोधगया के मंदिर गए हो, तो जिस बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ उसी के पास वह छोटा सा पथ है, जिस पर पत्थर लगा दिए हैं, जिस पर बुद्ध चंक्रमण करते रहे। वृक्ष के नीचे बैठ जाते, जब तंद्रा उतरने लगती तो उठ आते और चंक्रमण करते। चंक्रमण चलने की एक विशेष प्रक्रिया का नाम है। कहीं जाने के लिए तो चल नहीं रहे, इसलिए तेजी से नहीं चलना है, बहुत आहिस्ता चलना है। इतनी तेजी से चलोगे तो कहीं ध्यान का जो तारतम्य बन रहा है, वह टूट न जाए। जैसे कि कोई भरी हुई मटकी सिर पर लेकर चलता हो, तो फिर तेजी से नहीं चल सकता; तेजी से चलेगा तो मटकी छलक जाए। और अगर मटकी में अमृत भरा हो, तब तो फिर बहुत सम्हल कर चलेगा और ध्यान की मटकी में अमृत ही भरा है। बहुत सम्हल कर आहिस्ता-आहिस्ता एक-एक पैर उठा कर... कोई मंजिल तो है नहीं, कहीं जाना तो नहीं है, मंजिल यही है कि भीतर जागे रहना है। चित्त शून्य हो, निर्विचार हो, और जागरूकता का दीया जले। प्रेम की वर्षा होगी। फिर बूंदा-बांदी होगी, परमात्मा उतरेगा तुममें। उसके पग-घुंघरू जल्दी ही तुम्हें सुनाई पड़ने लगेंगे। उसकी बांसुरी बजेगी। वह निश्चय आता है, वह तुम्हारे द्वार पर थाप देगा।
दूसरा रास्ता है भक्ति का। ध्यान के रास्ते पर अपने को जगाना है, होश
से भर लेना है। जैसे बस मैं ही हूं और कुछ भी नहीं। सारा अस्तित्व खो जाए, सिर्फ भीतर स्वयं का अस्तित्व जगमगाता हुआ प्रज्वलित रह जाए--एक लपट की भांति--ध्यान। और भक्ति ठीक इससे उलटी है। तुम बिल्कुल डूब जाओ। सारा अस्तित्व बचे, तुम न बचो। वृक्ष हों, पहाड़ हों, पर्वत हों, चांद-तारे हों; मगर तुम न बचो, तुम बिल्कुल लीन हो जाओ। जैसे बूंद सागर में खो जाए, जैसे सूरज की किरण पाते ही, ओस की बूंद भाप बन जाए, आकाश में उड़ जाए। ऐसे अपने को डुबा दो--अस्तित्व के सौंदर्य में, अस्तित्व की गरिमा में, इस अस्तित्व के विराट नृत्य में, इस महोत्सव में, अपने को डुबा दो। जरा भी दूर-दूर नहीं। जरा भी फासला नहीं। एक इंच की दूरी न बचाओ। इसमें ऐसे मगन हो जाओ, ऐसे लीन हो जाओ, जैसे तुम हो ही नहीं! सब है, तुम नहीं हो!
ध्यान का अर्थ है: मैं हूं और कुछ भी नहीं। और भक्ति का अर्थ हैः तू है, मैं बिल्कुल नहीं। ये विपरीत दिखाई पड़ने वाले दो मार्ग एक ही जगह ले आते हैं। क्योंकि जब तू नहीं है, तो मैं बच नहीं सकता। ज्यादा देर नहीं बच

सकता। बिना तू के मैं कैसे बचेगा? तू ही तो मैं की परिभाषा बनता है। तू ही से तो मैं की सीमा बनती है, और इसी तरह जब मैं नहीं हूं, तू ही है--तो तू भी ज्यादा देर नहीं बचेगा। क्योंकि मैं से ही तू की सीमा बनती है। जब मैं ही न रहा तो कौन तू! अगर मैं न रहे तो तू मिट जाता है; अगर तू न रहे तो मैं मिट जाता है। ये दोनों ही साथ-साथ जीते हैं और साथ-साथ मरते हैं। तुम एक को मिटा दो, दूसरा अपने आप मर जाता है। और जहां न मैं बचा, न तू बचा, वहीं यह घटना घटती हैः "भींजै चुनरिया प्रेम-रस बूंदन।" फिर चुनरिया भीगने लगती है, तुम फिर दुल्हन हो गए। फिर तुम्हारी भांवरें पड़ गईं। कबीर ने कहा हैः मैं तो राम की दुलहनिया। फिर तुम चुनरिया ओढ़ कर चल पड़े। उसके मंदिर की सीढ़ियां चढ़ने लगे।

किसका अभाव मानस में सहसा शशि सा आ चमका?
है क्या रहस्य, बतला दे कोई इस अंतर्तम का!

इन सरल तरल नयनों में किसकी उज्ज्वल छवि छाई?
किसने मेरे प्राणों में अपनी तसवीर बनाई?

"जलजात" हृदय का मेरे कोई "अज्ञात" खिलाता।
मेरे जीवन के रवि का कुछ पता नहीं मिल पाताः

संध्या के सतम हृदय में कैसा प्रभात सा आया?
किसकी किरणों ने छूकर प्राणों को आज जगाया?

कोई अज्ञात तुम्हारी हृदय-वीणा को छेड़ देगा। कोई अदृश्य अंगुलियां तुम्हारी वीणा के तारों में टंकार उठा देंगी। कोई अदृश्य किरण तुम्हारे भीतर के कमल को खिला जाएगी। कोई अदृश्य रूप तुम्हें अपूर्व सौंदर्य दे जाएगा। कोई संगीत तुम पर बरसेगा। गीत-गीत तुम्हारे रोएं में भर जाएंगे। तुम्हारा रोआं-रोआं नृत्यमग्न हो उठेगा।
आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन।
और जब ऐसा हो जाए, तभी आरती सजती है। जब प्रेम की बूंदा-बांदी होने लगे, तो आरती सजती है। जब आषाढ़ के मेघ घिर जाएं तुम्हारी अंतरात्मा में, बिजलियां कौंधने लगें, लगे अब हुई वर्षा, अब हुई वर्षा--तभी आरती सजती है। अभी तो तुम आरती क्या सजाते हो, अपने को धोखा देते हो, औरों को धोखा देते हो। तुम्हारी आरती थोथी है अभी। तुम्हारा सिर भी मंदिर में झुकता है तो झूठा। तुम्हारा अहंकार तो अकड़ा खड़ा रहता है। तुम्हारी आरती उतरती रहती है, मगर तुम्हारे प्राणों में नृत्य नहीं है, नाच नहीं है, गीत नहीं है, गान नहीं है। तुम्हारी आंखों में कोई रस-विमुग्धता नहीं है। गए हो एक कृत्य पूरा करने। गए हो, क्योंकि जाना चाहिए, एक कर्तव्य है। क्योंकि और भी लोग जा रहे हैं तो तुम भी गए हो। क्योंकि न जाओ तो लोग समझते हैं अधार्मिक हो। और जाओ तो लोग समझते हैं धार्मिक हो। और धार्मिक होना, कम से कम दिखलाना कि तुम धार्मिक हो, कई अर्थों में काम का है, कई अर्थों में उपयोगी है। इसकी सामाजिक उपादेयता है।
आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन।
जब प्रेम की बूंद तुम पर बरस जाती है, तो तुम सुहागिन हो गए। वह बूंद क्या हुई, जैसे सुहाग से तुम्हारी मांग भर गई। और तभी सच्ची खोज शुरू होती है। फिर खोज जिज्ञासा मात्र नहीं, कोई बौद्धिक खुजलाहट नहीं है। फिर खोज केवल प्रश्न की नहीं है। फिर खोज एक जीवंत अर्थ रखती है। फिर तुम सब कुछ गंवाने को राजी हो सकते हो, सब कुछ दांव पर लगा सकते हो; यह सिर भी जाए तो दे सकते हो।
आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन।

शुचि नाम न जाने किसका नव-रश्मि नित्य लिख जाती।
वह भाषा मुझे न आती जो मैं उसको पढ़ पाती।

किस के चरणों पर अविरल आंखें हैं अर्घ्य चढ़ातीं? किस मादक मोहक छवि के मैं नित्य गीत हूं गाती?

स्वप्नों में आ, क्यों "कोई" चुपचाप चला जाता है! बुझते "जीवन-दीपक" को भर "स्नेह" जला जाता है!

किस "महालोक" से आता, किस महालोक को जाता?
किस "स्वर्ण-सदन" में मेरा रहता है भाग्य-विधाता?

किसका अदृश्य कर नभ को प्रति दिन चित्रित कर जाता?
किसका कर दिन-रजनी का यह अविरत चक्र चलाता?

है क्या रहस्य, क्या जाने, इस विस्तृत अगम गगन का?
वह मादक देश कहां है, जीवन के "जीवन-धन" का?

जब बूंद तुम पर गिरती है--पहली बूंद प्रीति की--तो फिर उस सागर को खोजने की अभीप्सा जगती है, जहां से इस बूंद का आगमन हुआ है। जब पहली किरण तुम्हारे आंगन में नाचती है, तो तुम सूरज की तलाश पर निकलते हो। जब पहली सुगंध तुम्हारे नासापुटों को भर देती है, तो तुम उस उपवन की तलाश में चलते हो, जहां ये फूल खिले हैं। नहीं वह मंदिर में है, नहीं वह मस्जिद में, नहीं काबा में नहीं काशी में, तुम्हारे काबा भी तुम्हारे बनाए हुए; तुम्हारे मस्जिद, तुम्हारे मंदिर, तुम्हारे काशी, तुम्हारे कैलाश, सब तुम्हारे मानसिक निर्माण हैं। वह है, तो तुम्हारी बनाई हुई वस्तुओं में नहीं। उसे कहीं और खोजना होगा। उसे खोजना होगा प्रकृति में। उसे खोजना होगा उसकी ही सृष्टि में। तुम्हारा सृजन तो सब खेल-खिलौने हैं।
आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन।
काहे की तोरी बनी चुनरिया, काहे को लगे चारों फूंदन।।
कबीर कहते हैंः यह चुनरिया कैसे बनी? इस चुनरिया के ताने-बाने कैसे बुने गए हैं? और चारों तरफ फूंदन लटके हैं!
पांच तत्व की बनी चुनरिया नाम के लागे फूंदन।
पांच महा तत्वों से बनी है यह देह। यही है हमारी चुनरिया। इसी के भीतर छिपी है हमारी आत्मा। और इस पर जो फूंदन लगे हैं, इस पर जो सौंदर्य है, इस पर जो गरिमा है, इसमें जो जीवन की आभा है, इसके चारों तरफ जो आभा का एक लोक है--वह उस नाम के कारण है, परमात्मा के कारण है।
ऐसे तो सब मिट्टी है, लेकिन मिट्टी में जीवन है। जीवन उससे है। पांचों तत्व, तो तुम मुर्दा हो जाओ तो भी मौजूद होंगे। कोई मर जाता है, तो भी पांचों तत्वों में से कुछ कम नहीं हुआ। वजन उतना का उतना है, मिट्टी उतनी की उतनी है। सब उतना का उतना है।
फिर क्या खो गया?
वे चार फूंदन खो गए। वह जो परमात्मा ने जोड़ा था चारों दिशाओं से अपने
को, वह जो चारों द्वारों से तुममें प्रवेश कर रहा था--वह अब प्रवेश नहीं कर रहा है। उसका साथ छूट गया, उसका हाथ छूट गया।
पांच तत्त की बनी चुनरिया, नाम के लागे फूंदन।
चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे झूलन।।
यह वचन अति प्यारा है। कबीर कहते हैंः चढ़िगे महल... महल कहते हैं तुम्हारी उस आंतरिक अंतिम अवस्था को, जहां सहस्रदल कमल खुलता है, जहां समाधि उपलब्ध होती है। बुद्ध की भाषा में निर्वाण, महावीर की भाषा में कैवल्य, कबीर की भाषा में महल। महल, क्योंकि तुम सम्राट हो जाते हो उस दिन; उसके पहले तो भिखारी हो।
चढ़िगे महल--जैसे ही यह पता चल गया कि ये पांचों तत्वों से मिल कर तो बनी है यह देह, लेकिन असली यह बात नहीं है, यह मेरा असली होना नहीं है, मेरा असली होना तो राम के नाम से जुड़ा है--जिस दिन यह स्मृति आ गई, यह सुरति जग

गई, उसी दिनः चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया... और खुल गया झरोखा! ... दास कबीर लागे झूलन। और फिर जो मस्ती छाती है, उतरती ही नहीं। कबीरदास कहते हैं कि फिर तो जो झूलना शुरू हुआ वह जो नाच शुरू हुआ, वह जो नृत्य शुरू हुआ, वह बंद ही नहीं होता है, झूलता ही रहता हूं, मदमस्त ही हूं!

मैं समझ नहीं पाया हूं अब तक यह रहस्य
मरने से क्यों सारी दुनिया घबड़ाती है,
क्यों मरघट का सूनापन चीखा करता है,
जब मिट्टी मिट्टी से निज ब्याह रचाती है।

फिर मिट्टी तो मिटती भी नहीं कभी भाई!
वह सिर्फ शक्ल की चोली बदला करती है, संगीत बदलता नहीं किसी भी सरगम का
केवल गायक की बोली बदला करती है।

पर कहता है अस्तित्व जिसे संसार सकल उसकी सत्ता तो सचमुच एक भुलावा है, कर्ता को नहीं, जन्म कृति का ही होता है, केवल कृतित्व जग जीवन का पहनावा है।

सूरज से प्राण, धरा से पाया है शरीर, ऋण लिया वायु से है हमने इन सांसों का, सागर ने दान दिया है आंसू का प्रवाह, नभ ने सूनापन विकल विधुर उच्छवासों का।

जो जिसका है उसको उसका धन लौटा कर मृत्यु के बहाने हम ऋण यही चुकाते हैं, इसको ही कोई कहता है अभिशाप-ताप
वरदान समझ कुछ इस पर खुशी मनाते हैं।

जो हंसने की है बात न यूं उस पर रोओ गीला मत करो आंसुओं से अपना आंचल,
है पंथ पुकार रहा, जल्दी दो विदा मुझे बांध लो गांठ में मानस की सारी हलचल।

किसके रोने से कौन रुका है कभी यहां जाने को ही सब आए हैं सब जाएंगे, चलने की तैयारी ही तो बस जीवन है
कुछ सुबह गए, कुछ डेरा शाम उठाएंगे।

संध्या को जब सूरज ढलता है पश्चिम में तब कितने फूल बाग में मुरझा जाते हैं, जब सुबह सिसक कर चांद कहीं सो जाता है तब कितने आंसू धरती पर उग आते हैं!

पर ठहरा सूरज कभी? कभी क्या चांद रुका? क्या थमा समय कोई घर-द्वार बसाने को? आने से पहले कौन गया है नहीं यहां जाने से पहले आया कौन बुलाने को?

आता है एक रोज मधुवन में जब वसंत
तृण तृण हंस उठता कली कली खिल जाती है, कोयल के स्वर में भर जाती है नई कूक

कोंपल पेड़ों पर पायल नई बजाती है।

पर जब तक बने सुहागिन जग की सुंदरता सिंदूर चुरा कर सब वसंत चल देता है, लुट जाता है जीवन-बगिया का सब सिंगार वैधव्य समान विषाद करवटें लेता है।

मिट्टी में लेटी कली-कली जब कहती है
इस तरह लूटना था तो क्यों यह रूप दिया? कोयल चिल्लाती--जब कि रुलाना ही था फिर-- क्यों मेरे सोए स्वर को गीत अनूप दिया?

धरती की राजकुमारी फूट बिलखती है,
"कुछ देर अभी तो और पास प्रियतम! ठहरो, है पूरी तरह खिला भी नहीं अभी यौवन,
कुछ देर अभी तो और कपोलों पर लहरो।"

पर अट्टाहस कर ऋतुपति उत्तर देता है
मैं नहीं ठहरने को--जाने को आया था,
तुझको तेरी असली तस्वीर दिखानी थी
इसलिए तुझे यह नकली रूप उढ़ाया था।

यह जो हमने ओढ़ रखा है रूप देह का, यह जो चदरिया, यह जो चुनरिया हमने ओढ़ रखी है, यह हमारा असली होना नहीं है।

पर अट्टाहस कर ऋतुपति उत्तर देता है
मैं नहीं ठहरने को--जाने को आया था,
तुझको तेरी असली तस्वीर दिखानी थी
इसलिए तुझे यह नकली रूप उढ़ाया था।

असली को दिखाना हो तो नकली के साथ ही दिखाया जा सकता है। जैसे हम ब्लैक-बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखते हैं। सफेद दीवाल पर भी सफेद खड़िया से लिखा जा सकता है, लेकिन पढ़ना मुश्किल होगा, पढ़ना असंभव ही होगा। सफेद कागज पर लिखते हैं तो काली स्याही से लिखते हैं। विपरीत से ही अनुभव हो सकता है।
तुम्हारे भीतर शाश्वत है। उसका अनुभव कराने का एक ही उपाय है कि तुम्हें एक चुनरिया दी जाए जो क्षणभंगुर है। तुम्हारे भीतर अमृत है। तुम्हें एक चुनरिया दी जाए, जो अब मरी तब मरी तो ही तुम्हारे भीतर के शाश्वत की प्रतीति इस परिप्रेक्ष्य में हो सकती है। इसी संदर्भ में हम अमृत को जान सकते हैं। मृत्यु के बिना अमृत को जानना बहुत मुश्किल है, असंभव है। अंधेरे के बिना प्रकाश को कैसे जानोगे? दिन के बिना रात नहीं, रात के बिना दिन नहीं। सौंदर्य के बिना कुरूपता कैसे पहचानोगे? कुरूपता के बिना सौंदर्य की क्या पहचान होगी? इस द्वंद्व को ठीक से समझ लो, तो फिर जीवन में इतनी उलझन नहीं रह जाती; सब साफ-सुथरा होने लगता है; पहेली सुलझने लगती है।
चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे झूलन।
मैं अपने साहिब संग चली।
और जब झूलने लगोगे, जब अनुभव हो जाएगा, अमृत का, जब शाश्वत से थोड़ी पहचान होगी, परिचय होगा--तो फिर यह घटना घट सकती हैः मैं अपने साहिब संग चली। फिर तुम्हारा संग-साथ उस एक से ही हो जाता हैः अनेक से टूट जाता है।
फिर तुम भीड़ में भी रहो, बाजार में भी रहो, तो भी याद उसकी, सुरति उसकी।
हाथ में नरियल मुख में बीड़ा, मोतियन मांग भरी।
लिल्ली घोड़ी जरद बछेड़ी, तापै चढ़ि के चली।

नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।
कबीर कहते हैं कि दोनों कुलों को तार दिया। एक कुल है क्षण भंगुर का
और एक कुल है शाश्वत का। इन दोनों से मिल कर हम बने हैं--मिट्टी से और अमृत से।
नदी किनारे सतगुरु भेंटे, ...
यह जो जीवन की बहती हुई सतत धारा है, इसके किनारे ही सतगुरु से मिलना हुआ।
नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी।
और कबीर कहते हैंः क्षण भर नहीं लगता। सतगुरु से मिलन हो जाए तो तुरंत जीवन में क्रांति घट जाती है। लेकिन मिलन? मिलन होकर भी कहां हो पाता है! क्योंकि तुम दूर-दूर खड़े रहते, बचे-बचे खड़े रहते। तुम जरूरत से ज्यादा होशियार हो। तुम गणित में बहुत निपुण हो। तुम अपने को बचा-बचा कर चलते हो। और यह रास्ता उनका है, जो जुआरी हैं; जो बचा-बचा कर नहीं चलते।
सदगुरु से संबंध तो उन्हीं का हो सकता है जो दीवाने हो उठते हैं, जो मतवाले हो उठते हैं। यह होशियारों का काम नहीं, दीवानों का काम है। और इस दुनिया के ऊपर दीवानों का बहुत बड़ा ऋण है। अगर दीवाने न होते तो इस दुनिया में कबीर, और दादू, और मलूक, ऐसे अदभुत लोग नहीं हो सकते थे। अगर इस दुनिया में सभी दुकानदार होते तो यह दुनिया बड़ी दीन होती। इस दुनिया में कुछ लोग हुए जो दुकानदार नहीं थे; कुछ लोग हुए, जिन्होंने उस परम सत्य के लिए सब कुछ चढ़ा दिया।
नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।
कबीर कहते हैंः मैंने तो अपने दोनों कुल सुधार लिए। जब कोई व्यक्ति परम ज्ञान को उपलब्ध होता है तो उसकी चेतना पर ही अमृत नहीं बरसता, उसकी मिट्टी तक अमृत में सरोबोर हो जाती है। उसकी देह में भी एक गंध आ जाती है-- परलोक की।
यह तो तुम जानते हो कि हम सदगुरुओं के शरीर को जलाते नहीं। सिर्फ इसी कारण नहीं जलाते। सदगुरुओं के शरीर को हम बचाते हैं। तिब्बत में, इजिप्त में तो हजारों साल पुराने सदगुरुओं की देहें अब भी सुरक्षित हैं। इस देश में भी हम उनकी समाधि बनाते हैं; उनको जलाते नहीं। क्योंकि उनकी देह में परमात्मा का संस्पर्श हुआ है, यह देह जलाने के लिए नहीं। जलाते तो हम देह को इसीलिए हैं कि मिट्टी है, मिट्टी में मिल जाने दो। अब इस देह को क्या बचाना है!
बुद्धों की अस्थियों को हम सम्हाल कर रखते हैं। अभी तक बुद्ध की हड्डियों के छोटे-छोटे टुकड़े अलग-अलग जगह सम्हाल कर रखे गए हैं। लंका में जो प्रसिद्ध मंदिर है कैंडी का, वहां बुद्ध का एक दांत सुरक्षित है। पच्चीस सौ वर्ष बीत गए, किसलिए इस दांत को सुरक्षित रखे हो? लेकिन जिन लोगों के पास देखने की क्षमता है, वे उस दांत में आज भी उन किरणों को विकीर्णित होते देखेंगे। वह दांत साधारण नहीं है। ऐसे तो साधारण ही है। वैज्ञानिक परीक्षा में तो साधारण ही उतरेगा। लेकिन उसकी असाधारणता केवल उनको उपलब्ध हो सकती है जो ध्यान की आंख से देखने में समर्थ हैं। तब वह दांत साधारण दांत नहीं है; वह दांत गवाही है एक अपूर्व घटना का।
हमने उस वृक्ष को बचा कर रखा है जिसके नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ। क्यों? क्योंकि जब यह परमज्ञान की घटना घटती है तो इतना आलोक का विस्फोट होता है कि वह वृक्ष भी पी गया होगा। और यह जानकर तुम चकित होओगे कि वट वृक्ष अब वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रतीत होता है सारे वृक्षों में सर्वाधिक बुद्धिमान वृक्ष है। वैज्ञानिक के कहने के तो दूसरे कारण हैं। मनुष्य की बुद्धि के लिए जो तत्व सर्वाधिक जरूरी है, जिस रसायन के खो जाने से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह रासायनिक तत्त्व वट वृक्ष में सर्वाधिक पाया जाता है, किसी और वृक्ष में उतना नहीं। वट वृक्ष थोड़ा अनूठा है। वट वृक्ष की जाति के सारे वृक्ष अनूठे हैं--पीपल और सारे वृक्ष, जो वट

वृक्ष की जाति के हैं। यह कुछ आश्चर्य नहीं है कि भारत में पीपल की और वट की पूजा सदियों से चली है। उनमें कुछ खूबियां हैं।
यह कुछ आश्चर्य नहीं है कि बुद्ध को वट वृक्ष के नीचे जब ज्ञान उपलब्ध हुआ हो तो उनकी विकीर्णित किरणें वह वृक्ष भी पी गया हो, आत्मसात कर लिया हो उसने। इसलिए उस वृक्ष को बचाने की कोशिश की गई। मूल वृक्ष को तो हिंदुओं ने नष्ट कर दिया बोधगया में, लेकिन अशोक ने उसकी एक शाखा लंका भेजी थी, जो वहां लगाई गई, फिर उसकी एक शाखा लाकर वापस भारत लगाई गई। इसलिए उस वृक्ष की संतान अब भी मौजूद है। ठीक मूल वृक्ष तो नहीं, लेकिन उसका एक अंश अब भी मौजूद है।
और अब भी पृथ्वी पर जहां-जहां कभी कोई बुद्ध हुआ है, वहां-वहां कुछ न कुछ गवाही मौजूद हो जाती है। पत्थर भी, चट्टानें भी आत्मसात कर लेती हैं उस अपूर्व घटना को; उस रोशनी की कोई झलक उनमें सदा के लिए निर्मित हो जाती है।
कबीर ठीक कहते हैं कि दोनों कुल को तार कर जा रहा हूं। आत्मा तो चली ही परमात्मा की तरफ, लेकिन जिस देह में उस आत्मा का वास था वह देह भी धन्य हो गई।
कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
मैं तो बहुत बार कहता हूं कि यह मंदिर नहीं, मधुशाला है। कबीर की बात सुनते हो! मधुशाला तो फिर भी मैं थोड़ा अच्छा शब्द उपयोग करता हूं। कबीर कर रहे हैंः कबीर भाटी कलाल की, ... यह तो कलाल की भट्टी है।... बहुतक बैठे आइ।
बहुत से आकर बैठ जाते हैं। मगर बैठने से कुछ भी न होगा।
सिर सौंपे सोई पिवै...
जो अपना सिर देगा वही पीने का हकदार हो सकता है।
... नहीं तो पिया न जाइ।
बिना सिर दिए कोई पी नहीं सकता। एक ही कीमत है जो चुकानी पड़ती है।
हरि-रस पीया जाणिए, जे कबहूं न जाइ खुमार।
और पहचान क्या है? साधारण शराब में और इस शराब में एक ही पहचान है।
साधारण शराब का नशा उतर जाता है--अभी चढ़ा, अभी उतरा। क्षणभंगुर है। बरसाती नदी है। और--हरि-रस पीया जाणिए, जे कबहूं न जाइ खुमार। एक बार पी लिया तो फिर खुमार उतरता ही नहीं; फिर लाख उतारना चाहो तो उतरता नहीं; फिर सारी दुनिया विरोध करे तो उतरता नहीं; मंसूर को सूली भी दे दी तो भी खुमार नहीं उतरा। जीसस को मार डाला, खुमार नहीं उतार सके।

चलने को तो सांसें सालों तक चलती हैं,
यात्रा-क्रम भी प्रतिपल ही बढ़ता जाता है,
पर मैंने तो देखा है सौ-सौ सालों में
मुश्किल से कोई एक दिवस जी पाता है।

हैं पढ़े न मैंने मजहब के पोथे मोटे,
संचित न कर सका किसी वाद का तनिक ज्ञान, मंदिर-मस्जिद की ओर न मेरी दृष्टि गई, काबा-काशी का मुझे न आया कभी ध्यान।

संध्या-नमाज का राज न अब तक जान सका, इसलिए वक्त उसमें न किया बर्बाद कभी, अपने जीवन की सूनी घड़ियों को मैंने, है किया न तर्क-विवादों से आबाद कभी।

मैं वही पढ़ा जो मुझे पढ़ाया जीवन ने, हूं सीख सका वह गया सिखा जो समय-काल, मैंने बस मानवता को पूजा जीवन में, बस सदा आदमी के आगे यह झुका भाल।

क्या सत्य असत्य, नहीं मैंने कुछ भी सोचा, उर-शांति मिली जिसको पा, उसको सत्य कहा,
जो आकर जीवन में आंसू सा चला गया,
मेरी ममता ने केवल उसे असत्य कहा।

फिर और दूसरा भी मेरा यह अनुभव है,
जो सत्य, वही जीवन में थिर रह पाता है,
जो मिथ्या है, भ्रम है, असत्य है, क्षण भर में,
हलचल सा आता है, जल सा बह जाता है।

चाहे वह मिट्टी, सोना हो, आंसू मोती,
चाहे वह प्रीति, घृणा हो, चाहे सच, सपना
है सत्य वही केवल इस जग में, जीवन में,
आखिरी श्वास तक साथ निभाए जो अपना।

सत्य की परिभाषा यही है कि जो टिके; जो सदा टिके; समय जिसे बदल न पाए, रूपांतरित न कर सके; जो क्षणभंगुर न हो। सत्य शाश्वत ही हो सकता है। खोजो ऐसा खुमार, ऐसी खुमारी, ऐसा नशा--कि चढ़े तो चढ़े, उतरे नहीं। और ऐसा नशा चढ़ जाए तो तुम भी चढ़ सकोगे उस महल में--"चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया, दास कबीर लगे झूलन।"
हरि-रस पीया जाणिए, जे कबहूं न जाइ खुमार।
मैंमंता घूमत रहे नाहीं, तन की सार।।
मदमाता घूमता है फिर व्यक्ति; तन का बोध ही नहीं रह जाता, ख्याल ही नहीं रह जाता।
सबै रसायण मैं किया, हरि-सा और न कोई।
तिल इक घट मैं संचरै, तो सब कंचन होइ।।
कबीर कहते हैंः रसायनशास्त्र को मैंने खूब झांक डाला--अलकेमी--सब देख डाला रसायन-शास्त्र; लेकिन हरि जैसा और कोई रसायन नहीं है।
तिल इक घट मैं संचरै...
उस परमात्मा का एक जरा सा अंश भी, एक बूंद भी तुम्हारे भीतर घट में उतर जाए--तो सब कंचन होइ--तो मिट्टी भी सोना हो जाती है। तो सब खालिस सोना हो जाता है।
सारी दुनिया के कीमियागर सदियों से खोजते रहे हैं कोई तरकीब, कोई रसायन, जिससे लोहा सोना हो जाए। लेकिन असली रसायन वह है जो तुम्हारी भीतरी मिट्टी को सोना कर दे; जो तुम्हारे भीतर की मिट्टी को अमृत का स्वाद दे दे; जो तुम्हारे भीतर के क्षणभंगुर को शाश्वत की छाया दे दे; जो तुम्हारे भीतर जन्म-मृत्यु का निरंतर चलता हुआ प्रवाह है, उसको ठहरा दे--और ऐसी मस्ती से भर जाए कि कोई छीन न सके उस मस्ती को; कोई चुरा न सके उस मस्ती को। तलवार उसे काट न सके। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि। आग उसे जला न सके। नैनं दहति पावकः। मृत्यु उसे मिटा न सके। तो ही जानना कि जीवन सार्थक हुआ, अन्यथा यूं ही जीए, यूं ही मरे; व्यर्थ ही जीए, व्यर्थ ही मरे।

सौ-सौ बार चिताओं ने मरघट पर मेरी सेज बिछाई
सौ-सौ बार धूल ने मेरे गीतों की आवाज चुराई
लाखों बार कफन ने रोकर मेरा तनशृंगार किया पर,
एक बार भी अब तक मेरी, जग में मौत नहीं हो पाई।

मैं जीवन हूं, मैं यौवन हूं, जन्म-मरण है मेरी क्रीड़ा, इधर विरह सा बिछुड़ रहा हूं, उधर मिलन सा आ मिलता हूं, क्या है यह तूफान, अरे मैं खुद आंधी बन कर चलता हूं।

तुम्हें बहुत बार मिटाया गया, बहुत बार बनाया गया; फिर भी तुम्हें याद नहीं आती कि कुछ है तुम्हारे भीतर, जो न बनता है और न मिटता है। बस उसी को खोज लेना धर्म है। उस मूल स्वभाव को पहचान लेना-जीवन की असली खोज है।
आइ न सकौं तुज्झपै, सकूं न तुज्झ बुलाइ।
कबीर कहते हैंः स्वाद तेरा लग गया, चल पड़ी पिया को खोजने, किबरिया खुल गई। दूर तेरा देश है। तेरे दर्शन भी हो गए--दूर देश से, किवड़िया से। लेकिन अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई।
आइ न सकौं तुज्झपै, सकूं न तुज्झ बुलाइ।
न तो आ सकती हूं तेरे पास, न तुझे पुकार सकती हूं। तू दूर बहुत। मेरे
पग छोटे, मेरे हाथ छोटे--यात्रा लंबी।
जियरा यौंही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ।
क्या इरादे हैं? क्या ऐसे ही मेरे प्राण ले लोगे--विरह में तपा-तपा कर?
यहु तन जालौं मसि करूं, ज्यूं धूवां जाइ सुरग्गि।
कहो तो इस शरीर को जला कर ऐसा कर दूं--धुएं जैसा, क्योंकि धुएं की एक खूबी है कि वह ऊपर की तरफ उठता है, आकाश की यात्रा पर निकल जाता है। अगर यही मर्जी हो तो यही करूं। धुआं स्वर्ग तक पहुंच जाता है। तो मैं भी धुआं हो जाऊं।
प्रेमी सब कुछ मिटाने को तैयार होता है।
यहु तन जालौं मसि करूं, ज्यूं धूवां जाइ सुरग्गि।
अगर यह मर्जी हो तो यही सही। राख कर दूंगा इस देह को। बन जाऊंगा धुएं
की भांति, उड़ चलूंगा आकाश की तरफ, क्योंकि और तो मुझे कोई पंख दिखाई नहीं पड़ते।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावे अग्गि।
इतना ही ख्याल रखना, बीच में दया करके वर्षा मत कर बैठना, नहीं तो आग बुझ जाए, धुआं न उठ पाए।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावे अग्गि।
यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नांऊं।
अगर तुम्हारी मर्जी हो तो इस शरीर को मिटा कर स्याही बना लूं और राम-राम लिखता रहूं। क्या करूं? विरह की असहाय अवस्था!
लेखणि करुं करंक की, लिखी-लिखी राम पठाऊं।
और यह जो देह की ठठरी है, इसकी कलम बना लूं, हड्डियों की कलम बना लूं और उसी से लिख-लिख कर राम-नाम, राम-नाम, राम-नाम... अगर यह तुम्हारी मर्जी हो तो इसकी भी तैयारी है।
इस तन का दीवा करौं...
या कहो तो इस तन का दीया बना लूं।
... बाती मेलूं जीव।
और जीवन की बाती बना लूं।
लोही सींचौं तेल ज्यूं...
और रक्त का तेल बना लूं।
... कब मुख देखौं पीव।
मगर एक बात पक्की हैः जो चाहो करवा लो, लेकिन अब तुम अपने से दूर न रखो। --कब मुख देखौं पीव। अब प्यारे को देखे बिना नहीं रहा जाता। जरा किबरिया खुली। देखा है तुम्हें दूर-दूर, जैसे हजारों मील दूर से कोई गौरीशंकर को देखे-सुबह के सूरज में चमकता हुआ स्वर्ण शिखर जैसा! और फिर वह छवि भूलती नहीं। फिर वह छवि खींचने लगती है।
कबीर ठीक कह रहे हैं। विरह-अवस्था के अनुभव की बात कहते हैं। कहते हैंः कहो धुआं हो जाऊं, कहो तो दीया बन जाऊं; क्योंकि देखा मैंने कि दीये की ज्योति आकाश की तरफ उड़ने लगती है। तो लहू का तेल बना दूंगा, जीवन की ज्योति बना दूंगा, शरीर का दीया बना दूंगा; मगर अब तुम से मिल कर रहूंगा।
अब कोई उपाय और नहीं। अब इस द्वार से तुम मुझे हटा न सकोगे।
कै बिरहीन कूं मींच दे, कै आपा दिखलाई।

कबीर कहते हैंः सीधी बात साफ तुमसे कह देता हूं। या तो मुझे मिटा डालो--कै बिरहीन कूं मींच दे--कि मेरी गरदन काट दो, कि मुझे मृत्यु दे दो।
तुम्हारे बिना जीने का कोई अर्थ नहीं। तुम्हारे लिए मर जाना भी सार्थक है और तुम्हारे बिना जीना भी व्यर्थ है।
कै बिरहीन कूं मींच दे...
--कि या तो विरहिन को मार दे, बिल्कुल मिटा दे, नेस्तनाबूद कर दे।
... कैं आपा दिखलाई।
और या फिर खुद प्रकट हो जा। अब इन दो से और कोई उपाय नहीं। ये दो ही विकल्प हैं।
आठ पहर का दग्झणां, मौपे सहा न जाइ।
अब यह आठ पहर तक धू-धू कर जलना, कब तक सहूं?
यह है अर्चना! यह है पूजा! यह है आरती का थाल! ऐसे कोई होता है भक्त! और तुम क्या करते हो--राम-नाम की चदरिया ओढ़ ली, तिलक लगा लिया, जनेऊ पहन लिया, बैठे माला फेर रहे हो और आंखें भटक रही हैं सब तरफ। लोग, भगत जी कहने लगेंगे, मगर ऐसे तुम भगवान को न पा सकोगे।
अगर सब मिटाने की तैयारी हो तो सब प्रकट हो जाए। बस तैयारी पर्याप्त है। कुछ ऐसा नहीं कि तुम्हें दीया बनना पड़ेगा--मगर तैयारी! कुछ ऐसा नहीं कि तुम्हें धुआं बनना पड़ेगा--मगर तैयारी! तुम्हारी तरफ से सौ प्रतिशत तैयारी होनी चाहिए, तो तुम्हारे ही भीतर वह प्रकट हो जाता है जो बहुत दूर दिखाई पड़ा है। वह जो स्वर्ण-शिखर दिखाई पड़ा है दूर उसके मंदिर का, वह तब तक ही दूर है जब तक तुम अपने को मिटाने को राजी नहीं; जैसे ही तुम मिटने लगे, मिटाने की तैयारी बढ़ने लगी, वैसे ही मंदिर करीब आने लगा। जिस घड़ी तुम मिट जाते हो, तुम हैरान होकर देखते वे मंदिर के शिखर तुम्हारे ही अंतरतम में प्रकट हो गए हैं!

गायक के अधरों पर है ऐसा एक गीत
चुप होकर भी जो युग युग गाया जाता है,
मुरझाते उपवन में है ऐसा एक फूल
जिसके तन को पतझार नहीं छू पाता है।

सांसों के घर में एक सांस ऐसी रहती
मरघट का सूना भी न जिसे भर सकता है, मिट्टी की पुतली में है ऐसा एक स्वप्न जिसके कारण इनसान नहीं मर सकता है।

वह इस मिट्टी के अंदर बंद मगर फिर भी, तुम क्या, उसको तो काल नहीं पा सकता है, वह जहां जाग कर भोर कर चुका है अपना, उस जगह नहीं कोई सूरज जा सकता है।

पड़ जाएगा यह चंदा काला वहां, जहां उसके जीवन की रात थकी-सी सोती है,
ले सकता थाह नहीं उसकी कोई सागर,
जिस सजल सीप का वह अनबींधा मोती है।

जिसकी गति उसके पांवों में बंदी अनंत उतना न तेज चल सकता है कोई समीर, जितनी गहरी उसके आंसू की एक बूंद, उतना गहरा संसृति का कोई नहीं नीर।

उसकी ऊंचाई के सम्मुख हिमगिरी नगण्य, उसकी नीचाई के सम्मुख नीचा पताल, उसकी असीमता के सम्मुख आकाश क्षुद्र,

उसकी विराटता के सम्मुख अति क्षुद्र काल।

सौंदर्य सकल यह उसका ही प्रतिबिंब रूप, है स्वर्ग उसी का सुंदरतम कल्पना नीड़
है नरक उसी की ग्लानि-घृणा का गेह-ग्राम, जग की हलचल उसके ही मन की भाव-मीड़।

ये सूर्य, चंद्र, उषा, पूषा, नक्षत्र पुंज, उसकी ही कांति ज्योति हे ज्योतित भासमान, यह निशा उसी के नयनों की पुतली,
मृदु हास अधर का मधुर ज्योतिवाही विहान।

है आंख उसी की बरसा करती बादल से,
है उसकी ही मुस्कान थिरकती फूलों पर, संगीत उसी का गूंज रहा है कोयल में,
हैं बिंधे उसी के स्वप्न नुकीले शूलों पर।

वह अणु में बंदी होकर भी है मुक्त सदा,
वह जल में रह कर भी जल से है बहुत दूर
जल कर भी ज्वाला में न राख बनता है वह,
पाषाणों से दब कर भी होता नहीं चूर।

और वह शाश्वत, वह सनातन तुम्हारे भीतर मौजूद है। पहले बाहर दिखाई पड़ेगा, क्योंकि हम बहिर्मुखी हैं। पहले सूरज की किरणों में दिखाई पड़ेगा, चांद की चांदनी में दिखाई पड़ेगा, फूलों की गंध में दिखाई पड़ेगा, तितलियों के पंखों पर दिखाईर् पड़ेगा, इंद्रधनुषों में दिखाई पड़ेगा, आकाश के तारों में दिखाई पड़ेगा, वृक्षों की हरियाली में! और तब एक दिन अचानक जिस दिन तुम पूरा-पूरा सौ प्रतिशत दांव पर लगाने को राजी हो जाओगे, तुम उसे अपने अंतर्तम में विराजा हुआ पाओगे। तुम उसके मंदिर हो! वह तुमसे इंच भर भी दूर नहीं।
मगर यह सिर्फ बौद्धिक विचार हो, तो कुछ भी न होगा। यह तुम्हारा अस्तित्वगत अनुभव बनना चाहिए। और इसे अनुभव बनाने का एक ही उपाय है--एक अहर्निश प्यास जलने लगे, दग्ध करने लगे; रोआं-रोआं उत्तप्त हो उठे; श्वास-श्वास उसे पुकारने लगे।
जिसे तुम जीवन समझते हो, यह तो मिट जाएगा। इसके पहले कि यह जीवन मिटे,
इस जीवन को उस जीवन को पाने की सीढ़ी बना लो, जो कभी नहीं मिटता है। उस शाश्वत को जाने बिना मत जाना, क्योंकि जो उसे बिना जाने गया, फिर-फिर वापस लौट आया है--इसी देह में, इसी चक्कर में, इसी व्यवसाय में, इसी उधेड़बुन में। कितनी बार तुम आए, कितनी बार तुम गए, बहुत हो चुकी आपा-धापी! अब जागो! अब अपने को पहचानो! अपने प्यारे को पहचानो! उसको जानते ही जीवन के सारे दुःख विदा हो जाते हैं। अमावस अचानक क्षण भर में पूर्णिमा हो जाती है। उस अनुभव के बिना जो जाता है, उसने अपने मनुष्य होने का ठीक-ठीक उपयोग नहीं किया। मिला था एक महत अवसर, यूं ही गंवा दिया। कंकड़-पत्थर बीनने में ही गंवा दिया, जब कि सब हीरे तुम्हारे हो सकते थे।
प्रभु का राज्य तुम्हारा है और तुम उसे यूं गंवा रहे हो--कूड़े-करकट में! चेतो! जितनी जल्दी चेत जाओ उतना अच्छा है। फिर ख्याल रखनाः सुबह का भूला अगर सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहा जाता है।

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
चौथा प्रवचन

मधुर मधुर मेरे दीपक जल

पहला प्रश्नः ओशो!
क्या मोहब्बत की घड़ी है आजकल
इक सदी लमहा है आजकल
आरजुओं को अब बरसाएं हम कहां,
दिल की कलियां खिल रही हैं आजकल
दिल की दुनिया आनंद से आबाद है
मुस्तकिल रोशनी जल रही है आजकल।

आनंद मोहम्मद! रोशनी तो सदा से जल रही थी। रोशनी से ही तुम बने हो। वही तुम्हारा स्वभाव है। हां, बोध अभी-अभी आया, स्मृति अभी-अभी जगी। भूली- बिसरी याद, पुनः याद आने लगी है।
लेकिन जब पहली बार प्रकाश का अवतरण होता है, तो ऐसा ही लगता है जैसे बाहर से आ रहा है, कहीं दूर से आ रहा है। आता है तुम्हारे ही भीतर से, तुम्हारे अंतस्तल से। जब आनंद की वर्षा होती है तो आकाश में नहीं घिरते मेघ, घिरते हैं अंतर-आकाश में। जब सत्य का सूर्य उदय होता है, तो प्राची लाल नहीं होती, तुम्हारा अंतस्तल ही उसके स्वागत में सुर्ख हो उठता है। जो भी महत्वपूर्ण है, वह भीतर घटता है और जो भी कचरा है, वह बाहर घटता है। कचरा ही बाहर है। हीरे तो भीतर हैं। हीरे तो परमात्मा ने बहुत सम्हाल कर रखे हैं--तुम्हारे अंतस्तल में। तुम भी तो, घर में जो हीरे होते हैं, उन्हें खूब छिपा कर रखते हो; गहरा खोद कर जमीन में, गुप्त किसी को कानोंकान खबर न हो। ऐसे ही परमात्मा ने, जो हीरे हैं वे तुम्हारे भीतर गहरे खोद कर रखे हैं--इतने गहरे कि तुम्हें भी कानोंकान खबर नहीं हुई।
सत्य कोई उपलब्धि नहीं है--सिर्फ सुरति है, जैसा कबीर कहते हैं। है सदा से। पर हम भीतर मुड़ते नहीं। जहां नहीं है वहां खोजते हैं और जहां है वहां पीठ किए रहते हैं। इसीलिए एक क्षण में क्रांति घट सकती है। अगर प्रश्न परमात्मा को पाने का होता, तो यात्रा बहुत लंबी थी, अनंत थी; शायद ही कोई पूरी कर पाता; शायद ही कभी कोई परमात्मा को उपलब्ध हो पाता। वह अपवाद होता। लेकिन परमात्मा कोई उपलब्धि नहीं है। परमात्मा तो वही है जो सदा से उपलब्ध है--जिसे तुमने कभी खोया नहीं; जिसे तुम खोना चाहो तो खो सकते नहीं; खोने के लाख उपाय करो तो भी हारोगे, असफल हो जाओगे। हां, एक काम कर सकते होः भुला सकते हो। गंवा नहीं सकते, भुला सकते हो। लेकिन जब हम भुला देते हैं, तो करीब-करीब गंवाने जैसा हो जाता है।
सदगुरु तुम्हें परमात्मा से नहीं मिलाता। तुम कभी छूटे ही नहीं। इसलिए परमात्मा से मिलाने की बात ही व्यर्थ है। ये तो थोथे गुरु, झूठे गुरु, परमात्मा से मिलाने की बातें करते हैं। सदगुरु तो तुम्हें केवल स्मृति दिलाता है, झकझोर देता है। जैसे कोई नींद में पड़ा हो और कोई आंखों पर ठंडे पानी के छींटे मार दे--बस इतना। ठंडे पानी के छींटे--और आंखें खुल गईं, और तुम जाग गए! जागरण ठंडे पानी के छींटों से नहीं आया; जागरण तो तुम्हारी क्षमता थी। ठंडे पानी के छींटों ने सिर्फ जो क्षमता सोई-सोई थी, खोई-खोई थी, भूली-भूली थी, उसके प्रति तुम्हें सजग कर दिया।
सदगुरु परमात्मा से नहीं मिलाता; याद दिला देता है कि तुम परमात्मा हो। तत्त्वमसि! तुम वही हो! इंच भर कम नहीं, रत्ती भर भिन्न नहीं।
इसलिए आनंद मोहम्मद, बहुत प्रेम उमगेगा--इतना कि समा न सकोगे। देह बहुत छोटी है। भीतर छिपा प्रकाश बहुत बड़ा है। देह तो बूंद जैसी, और प्रकाश सागर जैसा है। हां, गागर में सागर है। और जब जागोगे, तो गागर को तोड़ कर बहने लगेगा सागर। देह बहुत पीछे पड़ी रह जाएगी; जैसे बीज की खोल पड़ी रह गई और बीज का छिपा प्राण एक विराट वृक्ष हो गया। बीज को देख कर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कभी कि इसके भीतर इतने विराट वृक्ष का आविर्भाव हो सकता है; इतने फूल लगेंगे, इतने रंग-बिरंगे, इतने फल, इतने पत्ते, इतनी प्रशाखाएं, ऐसी

आकाश में दूर-दूर तक फैलेंगी इसकी शाखाएं कि हजारों लोग इसके नीचे विश्राम कर सकें। कि इसकी सुगंध उड़ेगी दूर-दूर, कि हवाएं इससे सुवासित हो उठेंगी! कि पक्षी नीड़ बनाएंगे, कि पक्षी गीत गाएंगे! कि सूरज की किरणें इसके पत्तों से रास रचाएंगी! कौन सोच सकता था बीज को देख कर?
तुम्हें देख कर भी कोई नहीं सोच सकता कि परमात्मा छिपा होगा। तुम अभी बीज हो। जरा हिम्मत की और बीज टूटा, खोल पड़ी रह जाती है पीछे। ऐसी ही देह पड़ी रह जाती है पीछे। तुम देह को पार कर फैलने लगते हो।
तुम्हारे भीतर तुम से बड़ा प्रेम छिपा है। तुम्हारे भीतर तुम से विराट चैतन्य छिपा है। तुम्हारे भीतर तुमसे अनंत प्रकाश छिपा है। तुम्हारे भीतर इतना बड़ा आकाश है, कि जब पहली दफा तुम उसे देखोगे तो भरोसा न आएगा। सोचोगे--कोई भ्रम तो नहीं हो रहा? मैं किसी स्वप्न में तो नहीं खो गया हूं? कोई सम्मोहित दशा तो नहीं है? मैं किसी कल्पना के जाल में तो नहीं उलझ गया हूं?
इसलिए गुरु की जरूरत है उस दिन भी। गुरु की दो बार जरूरत पड़ती है जीवन में। एक बार कि पानी के छींटे मारे आंखों पर; और दूसरी बार, कि जब तुम आंखें खोल कर देखो और अपने से पहली बार परिचय हो, तो तुम्हें आश्वासन दे कि घबड़ाओ मत--यही हो तुम, तत्त्वमसि! मत भय करो! नहीं तो अपनी ही विराटता से भय पैदा होता है। अपनी ही अनंतता से छाती थर्रा जाती है! अपने ही आकाश को देख कर भागने का मन होने लगता है।... "इतना बड़ा शून्य सम्हालूंगा कहां? इतनी बड़ी संपदा बचाऊंगा कहां?"
कौड़ी-कौड़ी जोड़ने के हम आदी हैं। कौड़ी की भाषा हमें समझ में भी आती है। लेकिन जब अनंत वर्षा होती है, जब छप्पर तोड़ कर उसकी वर्षा होती है, तब हम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।
इसीलिए तो परमात्मा का पहला संस्पर्श करीब-करीब लोगों को उन्मत्त कर जाता है, विक्षिप्त कर जाता है। ऐसी मादकता से भर जाता है कि कहीं रखते हैं पैर और कहीं पड़ते हैं! कहते हैं कुछ, कह जाते हैं कुछ! करते हैं कुछ, हो जाता है कुछ! जैसे अपने बस के बाहर! जैसे अपना कोई नियंत्रण नहीं। ऐसी ही किसी घड़ी में तो कबीर ने कहा--होनी होय सो होय।
योग प्रीतम का यह गीत, इस पर ध्यान करना--

हर जगह महफिल उसी की है सजी
जिंदगी का गीत सुनना हो--रुको
बह रही रसधार उसकी सब तरफ
इस अमृत का पान करना हो--झुको

तुम सुनो संगीत उसका है मुखर
बस हृदय में मौन का उल्लास हो तृप्ति का सागर हिलोरें ले रहा प्राण में बस एक पागल प्यास हो

नृत्य उसका ही अहर्निश चल रहा हो अगर थिरकन तुम्हारे पांव में तुम उसी की ज्योति से जगमग हुए
जी रहे हो तुम उसी की छांव में

देख सकते हो कुंआरी आंख से
सब कहीं आनंद-उत्सव चल रहा
हो हृदय अभिभूत तो तुम जान लो
धड़कनों में बस वही तो पल रहा

आनंद मोहम्मद, तुमने हिम्मत की है, साहस किया है। और जो साहस करता है, हिम्मत करता है, उसका दांव व्यर्थ नहीं जाता।

आनंद मोहम्मद मुश्किल में पड़े हैं। मुसलमान होकर मेरे संन्यासी होना मुश्किल की तो बात है ही। सूरत जब संन्यासी होकर लौटे, तो और मुसलमानों ने हजार झंझटें खड़ी कर दीं। लोग कहने लगे, तुम हिंदू हो गए। अब मेरा संन्यासी न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न जैन है, न ईसाई है। मेरा संन्यासी तो सिर्फ संन्यासी है। संन्यास भी कहीं हिंदू, मुसलमान और जैन होता है! ये भेद-भाव संसार में रखो। ये छोटी-छोटी बातें, संन्यास कहीं इनमें बंधेगा, अटकेगा! लेकिन आनंद मोहम्मद ने फिकर न ली, अपनी मस्ती में डोलते रहे, गीत गुनगुनाते रहे।... तो जो दांव लगाता है, व्यर्थ नहीं जाता। जितनी कीमत चुकाता है, उससे बहुत गुना पाता है।

हर जगह महफिल उसी की है सजी
जिंदगी का गीत सुनना हो--रुको

और तुम रुके, इसीलिए गीत की पहली कड़ियां तुम्हारे कानों में पड़ने लगीं।

बह रही रसधार उसकी सब तरफ
इस अमृत का पान करना हो--झुको

और तुम झुके, तो तुम मालिक हो गए। जो झुका वह जीता। जो अकड़ा रहा, वह हारा। जीवन का परम गणित बड़ा उलटा है। दुनिया में तो जो अकड़ा रहता है, जितना अकड़ता है, उतना ही जीतता मालूम होता है। यहां तो झुका दुनिया में कोई कि हारा। झुका कि धूल में गिरा। झुका कि लोगों ने उसके सिर को सीढ़ी बनाया। इस दुनिया में तो जो रुका, उसने गंवाया। यहां तो दौड़ चाहिए। अहर्निश दौड़ चाहिए। बिना इसकी फिकर किए कि कहां जा रहे हो, चले चलो; इतना ही ख्याल रहे कि दौड़ धीमी न हो, औरों से तेज हो। न यह पूछने की फुर्सत है, न जानने की, न सोचने की कि कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं? जो इस सोचने में अटका, वह पीछे रह जाता है। सोच-विचार का अवसर कहां है? अवकाश कहां है? यहां दौड़-धाप ऐसी है, कि पहले दौड़ लो, फिर सोच लेंगे बाद में पहुंच कर।
लेकिन परमात्मा के जगत में नियम बिल्कुल विपरीत है। वहां जो दौड़ा, वह भटका। वहां जो रुका, वह पहुंचा। रुकने का नाम ही ध्यान है। चित्त का चलन रुक जाए। चित्त की गति रुक जाए। चित्त का यह आवागमन, यह सतत चहल-पहल, यह चलता हुआ--रास्ता, यह विचार और वासनाओं की दौड़, यह आपाधापी, यह व्यस्तता, ये कल्पना और स्मृति के जाल--चित्त किसी में न उलझे, रुक जाए, ठहर जाए, पूर्णविराम लगा दे--बस ध्यान हुआ। और जो रुका, वह पहुंच गया। क्योंकि जो रुका वह अपने को देखने से कैसे वंचित रहेगा! जब तक दौड़ रहे हो, आंख किसी और चीज पर लगी है--धन पर, पद पर, प्रतिष्ठा पर; जब रुकोगे, आंख अपने आप बंद हो जाएगी। जब दौड़ना ही नहीं, तो बाहर देखना क्या? जब दौड़ना ही नहीं, तो चारों तरफ आंखों को क्यों भटकाना! ये आंखें भी चारों तरफ चंचल भटकती हैं, क्योंकि मन तलाश कर रहा है किस विषय की तरफ दौडूं। अनंत प्रलोभन हैं यहां, सभी तो पाए नहीं जा सकते। दो हाथ हैं, दो पैर हैं, छोटी दौड़ है। छोटा पात्र है, किससे भर लूं? तो मन चारों तरफ टटोल रहा है, किस दिशा में मेरी सफलता होगी? इसीलिए आंखें भटक रही हैं।
आंखें चंचल हैं, क्योंकि मन चंचल है। आंखें सबूत हैं मन की चंचलता की। आंखें द्वार हैं, झरोखे हैं। मन रुका कि आंखें बंद हुईं। मन ठहरा कि आंखों की गति भी गई, आंखें भी थिर हुईं।
और जिसकी आंख थिर हुई, वह अपने भीतर न देखेगा तो और कहां देखेगा? जिसकी आंख बंद हुई, वही क्षमता जो सारे जगत को देखती थी, अपने पर लौटने लगती है।
वही रोशनी, जिसमें सारे पदार्थ आलोकित हो रहे थे, अचानक अपने पर गिरती है।
और तब मालिकों के मालिक का दर्शन हो जाता है।

बह रही रसधार उसकी सब तरफ
इस अमृत का पान करना हो--झुको

दुनिया में तो अकड़ना, झुकना मत; टूट जाओ, मगर झुकना मत--लोग कहते हैं। मिट जाओ, मगर झुकना मत। यहां तो संघर्ष है--एक-दूसरे को मिटाने का। मिटाने में मिटना ही पड़ेगा। जो तलवार उठाएगा, वह तलवार से ही गिरेगा। परमात्मा के जगत में, अंतर्जगत में, अंतरलोक में, नियम बिल्कुल विपरीत है। वहां झुको। वहां ऐसे मिट जाओ, जैसे हो ही नहीं। और तभी तुम अपनी झोली हीरों से भर पाओगे।
उसकी धार तो बह रही है। नदी के तट पर तुम खड़े हो, अकड़े हुए। प्यासे, मगर अकड़े हुए। झुको कैसे! तुम--और नदी के सामने झुको! तो खड़े रहो अकड़े। नदी कोई छलांग लगा कर तुम्हारी अंजुली में न आ जाएगी। और नदी छलांग लगा कर तुम्हारे कंठ में न उतर जाएगी। नदी को क्या पड़ी। नदी को क्या लेना-देना! जब तुम्हीं झुकने को राजी नहीं--जिसकी प्यास है--तो नदी को भी क्या प्रयोजन! तुमसे नदी जबरदस्ती न करेगी। नदी हिंसा नहीं करेगी। नदी चुपचाप बहती रहेगी। पीना हो तो झुको। बनाओ अंजुली, झुको। भरो हाथ, फिर जी भर कर पियो!

बह रही रसधार उसकी सब तरफ
इस अमृत का पान करना हो--झुको

आनंद मोहम्मद, तुम रुके भी थोड़े, तुम झुके भी थोड़े। इसलिए यह घड़ी आ गई। इसीलिए आज तुम कह सकते हो--

क्या मोहब्बत की घड़ी है आजकल
एक सदी एक लमहा है आजकल
आरजुओं को अब बरसाएं हम कहां?
दिल की कलियां खिल रही हैं आजकल
दिल की दुनिया आनंद से आबाद है
मुस्तकिल रोशनी जल रही है आजकल

लेकिन यह अभी शुरुआत है, भूल मत जाना। सिर्फ यात्रा का पहला कदम है। यद्यपि पहले कदम पर भी यात्रा इतनी मधुर होती है कि लगता है आ गई मंजिल! पहले कदम पर भी आनंद का अनुभव ऐसा गहन होता है! कभी जाना ही नहीं था आनंद। जैसे जन्मों-जन्मों के प्यासे को घूंट भर जल मिल जाए, तो लगता है सब मिल गया।
स्मरण रहे, यह अभी बस शुरुआत है। अभी बहुत कुछ होना है। रुकना मत। अभी
और भीतर, और भीतर गति करनी है। बुद्ध ने कहा हैः चरैवेति, चरैवेति! चले चलो, चले चलो। और गहरे डुबकी मारो। जितनी गहरी डुबकी भीतर होगी, उतने ही बड़े हीरे-मोती हाथ लगेंगे।
लेकिन शुभारंभ हो गया है। रात बीत गई, सूरज उगने के करीब है। प्राची लाली से भर गई। पक्षी गीत गुनगुनाने लगे। धन्यभागी हो। अड़चनें बहुत आएंगी। बहुत लोग दुश्मनी खड़ी करेंगे। उन सब को मित्र जानना, क्योंकि उनकी सब दुश्मनियां, उनके द्वारा खड़ी की गई सब अड़चनें, अंततः लाभ पहुंचाती हैं, हानि नहीं। अंततः तुम उन्हें धन्यवाद दोगे। एक दिन तुम उन्हें धन्यवाद दोगे। क्योंकि न करते वे अड़चनें खड़ी, न देते चुनौती, न तुम्हारे जीवन में यह क्रांति हो पाती। जितनी बड़ी चुनौती मिलेगी उतनी ही बड़ी क्रांति हो जाती है। संन्यास चुनौती है। और मेरा संन्यास तो और बड़ी चुनौती है। आमतौर से लोग सोचते हैं, कि मैंने संन्यास को सरल कर दिया। उनकी धारणा बिल्कुल गलत है। आम लोग सोचते हैं कि मैंने तो संन्यास को बिल्कुल संसारी बना दिया। उनकी धारणा बिल्कुल गलत है।
पुराना संन्यास सस्ता है। भाग गए, इससे सस्ता और क्या होगा। भगोड़ेपन
से सस्ती और क्या बात होती है? भगोड़ापन कायरता का ही दूसरा नाम है। जिसको तुम त्याग कहते रहे हो अब तक, वह पलायन था; पीठ दिखा दी। और पीठ दिखाने वालों को तुम महात्मा कहते रहे। पीठ दिखाने में कोई बहुत बड़ी कला चाहिए? भाग जाने के लिए कोई बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए? इसीलिए यह कोई

आश्चर्यजनक नहीं है, कि तुम्हारे तथाकथित महात्माओं के जीवन में कोई बुद्धि का, प्रतिभा का, मेधा का, लक्षण नहीं दिखाई पड़ता। कोई चमक नहीं, कोई दमक नहीं, कोई कौंध नहीं, कोई धार नहीं। बोथले-बोथले? जंग खाई हुई तलवारें, कि साग-सब्जी भी काटो तो न कटे। पुराना संन्यास सस्ता था। सस्ता था, क्योंकि चुनौतियों से भाग जाता था। जब तुम पत्नी से भागते हो, तो किससे भाग रहे हो वस्तुतः? पत्नी एक चुनौती है। चुनौती है प्रतिपल; जैसे कि पति एक चुनौती है, बच्चे चुनौती हैं, परिवार चुनौती है, समाज चुनौती है। इन सब से भाग गए, बैठ गए जाकर दूर एक गुफा में जहां कोई चुनौतियां नहीं हैं; और तुम सोचते हो तुमने बहुत बड़ा काम कर लिया!
मैंने संन्यास को, बीच बाजार में खड़ा कर दिया! जहां सब तरह की चुनौतियां हैं; जहां सब तरफ से पत्थर पड़ेंगे; जहां सब तरफ से अड़चनें आएंगी। और वहां भी तुम्हें धैर्य रखना है, शांति रखनी है, आनंद रखना है, अहोभाव रखना है। जब पत्थर तुम्हारे ऊपर पड़ें, तब भी तुम्हारे प्राणों से धन्यवाद उठता रहे। फिर तुम्हें कोई रोक न पाएगा।
आनंद मोहम्मद ने दूसरा प्रश्न भी पूछा है कि "मैं क्या करूं? और मुसलमान हैं, वे कहते हैं, मैं भ्रष्ट हो गया! हिंदू हो गया! और हजार तरह की अड़चनें डाल रहे हैं।"
धन्यवाद दो उनको। वे भी तुम्हारे मार्ग में, सोचते तो हैं कि पत्थर बन जाएंगे। मगर तुम अगर जरा समझ का उपयोग करोगे, तो पत्थर सीढ़ियां बन जाते हैं। पत्थर और सीढ़ियों में भेद ही क्या होता है? उनको पत्थर बनने दो, तुम सीढ़ियां बना लो। तुम रोज-रोज उनके पत्थरों की सीढ़ियां बना कर ऊपर उठते जाओ। तुम इस सबको सहज भाव से स्वीकार करना। आनंद बहुत घना होगा।
अभी मंजिलें और हैं, यह तो पहला ही कदम है। बीच में बहुत पड़ाव भी आएंगे, पड़ावों को भी मंजिल मत समझ लेना। मंजिल तो तभी है जब तुम बचो ही नहीं, सिर्फ आनंद ही आनंद बचे, आनंद को अनुभव करने वाला भी न बचे--तभी समझना कि मंजिल है। जब तक तुम्हें लगे कि मैं हूं, आनंद है, मैं हूं और कैसा महासुख--तब तक जानना, अभी पड़ाव है। जिस दिन अचानक पाओ कि मैं कहां, आनंद ही आनंद है। अनुभोक्ता गया, अनुभव ही अनुभव बचा। अनुभव का सागर लहरें ले रहा है। और खोजे से पता नहीं चलता उसका, जो अनुभव करने निकला था। जो सत्य का साक्षात्कार करने निकला था वह तो न मालूम कहां खो गया! सत्य है। कबीर कहते हैंः हेरत-हेरत हे सखि, रह्या कबीर हिराइ। निकले थे खोजने, खो गए। जिस दिन ऐसा हो, उस दिन मंजिल आ गई। अब आगे जाने का उपाय न रहा, क्योंकि अब जाने वाला ही न रहा। नमक का पुतला था, गल गया, घुल गया। सागर की गहराई खोजने चला था, सागर में लीन हो गया। तब तक यात्रा, अंतर्यात्रा या अंतर की डुबकी गहरी करते जाना है।
मैं आनंदित हूं। मेरे सारे आशीष तुम्हारे साथ हैं!

दूसरा प्रश्नः ओशो, सूफी संत अलगजाली ने कहा है--इश्क-मजाजी और इश्क-हकीकी, भिन्न-भिन्न नहीं है; वरन, इश्क-मजाजी इश्क-हकीकी तक पहुंचने की पहली सीढ़ी है। इश्क-मजाजी यानी भौतिक प्रेम, इश्क-हकीकी यानी अभौतिक प्रेम। और इसी संबंध में दो बड़ी रोचक कथाएं भी उन्होंने कही हैंः
पहलीः जुलेखा का यूसुफ से प्रेम हो गया। वह प्रेम इतना घनीभूत हुआ कि उसे कोई आकर यह कह देता कि मैंने यूसुफ को देखा है, तो उसे गले का हार दे देती। उसके पास सत्तर ऊंट हीरे थे। धीरे-धीरे वे सब समाप्त हो गए। वह मात्र यूसुफ को याद करती थी। यहां तक कि जब वह आकाश की ओर देखती, तो तारों में यूसुफ का नाम ही उसे दिखाई पड़ता। किंतु विवाह हो जाने के पश्चात उसका प्रेम और व्यापक हो गया और उसने यूसुफ के साथ रहना अस्वीकार कर दिया। उसने यूसुफ से कहाः मैं तुमसे उस समय तक प्रेम करती थी, जब तक ईश्वर को नहीं जानती थी। ईश्वरीय प्रेम ने मेरे हृदय में घर कर लिया है। अब मैं उस स्थल पर किसी दूसरे को नहीं रख सकती।
दूसरी कथाः इससे भी प्रभावशाली कथा मजनू की है। वह लैला के पीछे पागल
हो गया था। यदि उससे कोई उसका नाम पूछता तो वह कह उठता--लैला! यदि कोई पूछता क्या लैला मर गई, तो वह कह उठता, लैला तो मेरे हृदय में है, उसकी

मृत्यु नहीं हो सकती। मैं ही लैला हूं! एक दिन वह लैला के कूचे से गुजर रहा था, आकाश की ओर उसकी आंखें लगी हुई थीं। किसी ने कहाः मजनू! तुम आकाश को न देखो, बल्कि लैला के घर की दीवालों की ओर देखो। शायद वह दिखाई पड़ जाए। मजनू ने तत्काल उत्तर दियाः मैं तो उन तारों से ही संतुष्ट हूं, जिनका प्रतिबिंब लैला के घर पर पड़ रहा है।
ओशो, क्या लौकिक प्रेम ही, ईश्वरीय प्रेम में रूपांतरित हो जाता है? समझाने की अनुकंपा करें!

नरेंद्र! अलगजाली, ऐसे तो ठीक ही बात कह रहे हैं, मगर मैं जो कह रहा हूं, वह उनसे थोड़ा एक कदम आगे है। अलगजाली सूफी संत नहीं हैं, सूफी दार्शनिक हैं। अलगजाली दुनिया के बड़े दार्शनिकों में से एक हैं। अरस्तू, अफलातूं ऐसे बड़े-बड़े दार्शनिकों की कोटि में उनका नाम है। लेकिन वे रहस्यवादी संत नहीं हैं। कबीर, फरीद, रूमी, बहाऊद्दीन--ऐसे संत नहीं हैं। उनकी चर्चा बारीक है, और सूक्ष्म है; लेकिन बौद्धिक है, अनुभवगत नहीं है। और इसलिए मैं उनसे राजी भी और राजी नहीं भी। राजी इसलिए, कि इशारा तो अनजाने में उनका ठीक है।
जैसे कभी-कभी अंधेरे में भी कोई तीर चलाए और लग जाए। लग जाए तो तीर, न लगे तो तुक्का। अंधेरे में भी तुम तीर चलाते ही रहो तो कभी न कभी लग सकता है। मगर, अंधेरे में चलाए तीर, लग भी जाएं, तो भी तुम तीरंदाज नहीं हो जाते हो, तो भी तुम धनुर्धर नहीं हो जाते हो। और कुछ न कुछ भूल रह जाएगी। और वही भूल रह गई है।
ये दोनों कथाएं प्रीतिकर हैं। ये दोनों कथाएं सूफियों की हैं। लेकिन अलगजाली के हाथ में, इन्होंने सूफियाना रंग खो दिया। तुम थोड़ा चौंकोगे। जैसे पहली कथा में... सूफी ऐसा कभी नहीं कह सकते। मैं तो सूफी हूं, इसलिए मैं ऐसा नहीं कह सकता। पहली कथा में गजाली कहते हैं, कि जब जुलेखा का विवाह हो गया तो उसने यूसुफ के साथ रहना अस्वीकार कर दिया। कहा कि मैं तुमसे उस समय तक प्रेम करती थी, जब तक ईश्वर को नहीं जानती थी।
क्या ईश्वर के जानने में, यूसुफ ईश्वर के बाहर हो गया? क्या ईश्वर के जानने में यह भी नहीं जान लिया गया कि यूसुफ भी ईश्वर है। बस यहीं गजाली चूक गए। यहीं तीर जरा इरछा-तिरछा लगा; अंधेरे में चलाया गया था। लगा भी, और लगा भी नहीं। जिसने ईश्वर को जान लिया, वह यह कैसे कह सकता है कि ईश्वरीय प्रेम ने मेरे हृदय में घर कर लिया है? अब कहां "मैं" और मेरा हृदय? और वह यह भी नहीं कह सकता कि अब मैं उस स्थल पर किसी दूसरे को नहीं रख सकती। जिसने ईश्वर को जान लिया उसे दूसरा बचता ही कहां है? और अगर दूसरा अभी भी बचा है, तो अभी ईश्वर से पहचान नहीं हुई है।
इसलिए दार्शनिक टटोलते हैं अंधेरे में, और कभी-कभी ठीक बात कह जाते हैं। लेकिन फकीर देखते हैं, टटोलते नहीं। उनका अनुभव विचार नहीं है--अनुभव है। दार्शनिकों का काम बड़े और तरह का है।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा धनुर्धर बादशाह, जिसे बड़ा लगाव था धनुर्विद्या से, अपने स्वर्ण-रथ पर सवार एक गांव से गुजरता था। उस गांव में उसने जो देखा, तो उसकी आंखें फटी की फटी रह गईं। उसे भरोसा न आया-- वृक्षों पर, खलिहानों के दरवाजों पर, दीवालों पर, तीर चुभे थे। कोई बहुत बड़ा निशानेबाज गांव में रहता है। क्योंकि हर तीर ठीक एक वर्तुलाकार निशान के मध्य में लगा था--बिल्कुल मध्य में। एक बार भी कहीं कोई चूक नहीं थी। सम्राट ने कहाः रथ रोको। मैंने बहुत धनुर्धर देखे हैं, मैं स्वयं भी धनुर्धर हूं; जीवन भर मैंने यही साधना की है। लेकिन मेरे भी सौ में, निन्यानबे तीर ही ठीक लगते हैं, एक तो कभी चूक ही जाता है। मगर इस गांव में कौन धनुर्धर है, जिसका हमें पता भी नहीं! जिसका एक तीर नहीं चूका है! दीवालों पर, वृक्षों पर, खलिहानों पर, खेतों पर, जहां भी उसके तीर लगे हैं, ठीक लक्ष्य के बिल्कुल मध्य में लगे हैं! मैं उससे मिलना चाहता हूं। गांव के लोगों से पूछो।"
गांव के लोगों से पूछा, लोग हंसने लगे। लोगों ने कहा कि आप फिजूल की बातों में न पड़ें, अरे वह पगला है, पागल है।

सम्राट ने कहाः पागल हो या कोई भी हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? मुझे उसके पागलपन से कुछ लेना-देना नहीं। मगर मैं उसे पुरस्कृत करूंगा। वह हमारे राज्य का सबसे बड़ा धनुर्धर है। उन लोगों ने कहाः आपको बात ही पता नहीं, वह तीर पहले मारता है और बाद में गोला खींचता है। बीच में लगने का सवाल ही नहीं है, जहां भी लगे... ।
दार्शनिक भी बस यही करते रहते हैंः तीर पहले मार दिया, फिर बड़े विचार, सिद्धांत, उनसे गोला खींचते हैं। वर्तुल भी बन जाता है। तीर बिल्कुल मध्य में मालूम लगता है। और लगता है कि बात बड़ी गहरी कही।
अलगजाली दार्शनिक तो बड़े थे, विचारक बड़े थे, लेकिन अनुभवी सूफी नहीं हैं। मीरा, या कबीर, या नानक, या दादू, ये सब गजाली के मुकाबले दर्शनशास्त्र में तो हार जाएंगे। मगर इनके पास आंखें हैं और गजाली अंधे हैं। अंधेपन का प्रत्यक्ष सबूत है। कहते हैंः "जुलेखा ने यूसुफ से कहा कि अब ईश्वर ने मेरे हृदय में घर कर लिया है।" जैसे पहले ईश्वर हृदय में नहीं था! अब घर कर लिया है! ईश्वर सदा से वहां है। जानने वाला कभी यह नहीं कहेगा कि अब, घर कर लिया है। था ही, अब मुझे होश आया। और जानने वाला यह भी नहीं कहेगा कि मेरा हृदय। इतनी अस्मिता भी कहां शेष रह जाती है? उसका ही हृदय है, वही घर किए है! मैं कौन हूं? मैं न कल था, न आज हूं। वह कल भी था, और आज भी है। मैं कल भी झूठ था, आज भी झूठ हूं। वह कल भी सच था, आज भी सच है। वह सत्य है, मैं झूठ हूं। सत्य और झूठ का मिलन कैसे हो! जैसे अंधेरे और प्रकाश का मिलन नहीं होता, ऐसे ही सत्य और झूठ का भी मिलन नहीं होता।
इसलिए जो "मैं" भाव से खोजने चला है, वह तभी तक परमात्मा को नहीं देख पाता जब तक "मैं" भाव बना रहता है। जिस दिन "मैं" भाव गिर जाता है, उस दिन चकित हो जाता है। चकित होता है यह जान कर कि मेरे "मैं" भाव के कारण ही मेरी आंखों पर परदा था, नहीं तो परमात्मा तो सदा से मौजूद है। मैं ही अंधा था। या मैंने ही आंख बंद कर रखी थी। अहंकार की धूल ने ही, मुझे अंधा बना रखा था। अहंकार की धूल ही मेरे दर्पण पर जम गई थी और परमात्मा का प्रतिबिंब नहीं बन रहा था।
और फिर जब परमात्मा का अनुभव होगा, तो कोई कैसे कह सकता है कि उस स्थल
पर मैं किसी दूसरे को नहीं रख सकती। दूसरा बचता है फिर? फकीरों से पूछो, सूफियों से पूछो।
राबिया ने अपनी धर्म-पुस्तक में से कुछ वचन काट दिए थे। वे वे वचन जहां यह कहा गया है कि शैतान को घृणा करो, उसने काट दिए। एक दूसरा फकीर हसन उसके घर मेहमान था। उसने ये कटे हुए, संशोधन देखे। धर्मशास्त्र में कोई संशोधन कर सकता है! जैसे वेद में तुम संशोधन कर दो, तो सारे हिंदू नाराज हो जाएंगे कि तुम हो कौन संशोधन करने वाले? हमारा शास्त्र--और संशोधन करो! कहीं शास्त्रों में संशोधन होता है, कुरान में या बाइबिल में कहीं संशोधन होता है? वे तो जैसे हैं, वैसे हैं। ईश्वर का संदेश है, उसमें संशोधन करने वाले तुम कौन हो?
हसन ने कहा: राबिया, यह तूने क्या किया? यह तो गुनाह है, यह तो पाप है।
यह कुफ्र है। तूने कुरान के वचन काट दिए। तो तू क्या समझती है कि तू मोहम्मद के वचनों में संशोधन करेगी!
राबिया ने कहाः प्यारे हसन, मैं क्या करूं? इसमें मेरा कोई कसूर नहीं। वही करवाता है, मैंने बहुत अपने को रोका, कि यह करना ठीक नहीं। जैसा तुम कहते हो, मैंने भी अपने को बहुत समझाया, बहुत दिन रोका। बहुत दिन कुरान की किताब के पास नहीं जाती थी, कि वहां गई कि संशोधन करूंगी। मगर यह कब तक रुक सकता था, एक दिन यह हो ही गया। यह होना अनिवार्य था। क्योंकि जब से परमात्मा को जाना है, तब से अगर शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो, तो मुझे शैतान नहीं दिखाई पड़ेगा, परमात्मा ही दिखाई पड़ेगा। अब मैं शैतान को घृणा कैसे कर सकती हूं? पहली तो बात यह है कि परमात्मा को जानने के बाद दूसरा कोई बचा नहीं। अब तो शैतान भी परमात्मा में ही लीन हो गया। दूसरी बात, मेरे भीतर प्रेम के अतिरिक्त घृणा नहीं बची। बाहर शैतान नहीं बचा, भीतर घृणा नहीं बची। और यह सूत्र कहता है कि शैतान को घृणा करो। ये दोनों बातें असंभव हो गयीं। न शैतान दिखाई पड़ता है कहीं और न घृणा शेष रही। अब मैं क्या करूं? अब

मैं यह तरमीन न करूं, यह सुधार न करूं, यह तरमीन न करूं तो क्या करूं? मजबूरी है, करनी ही पड़ी है।
और गजाली कहता है कि जुलेखा ने कहाः अब मैं उस स्थल पर किसी दूसरे को नहीं रख सकती। नहीं, गजाली को कुछ पता नहीं है। जिसके हृदय में परमात्मा आ गया, पहली तो बात वह मिट जाता है। उसके आते ही तुम डूब गए, मिट गए, समाप्त हो गए। तुम बचोगे? और फिर, कौन दूसरा? और परमात्मा क्या सबको समा लेगा, सिर्फ गरीब यूसुफ को छोड़ देगा? आखिर यूसुफ का कसूर क्या है? यूसुफ को इतनी विशिष्टता, इतना अपवाद? नहीं, कोई भी अपवाद नहीं है। क्या यूसुफ का कसूर यही है कि यूसुफ के प्रेम में पड़ कर जुलेखा को परमात्मा का प्रेम दिखाई पड़ गया? यूसुफ का कोई गुनाह हो गया? सच तो यह है, यूसुफ के प्रति अब आभार होना चाहिए--और भी घना, पहले से भी ज्यादा घना, क्योंकि वही झरोखा बना।
अगर कोई सूफी इस कहानी को कहेगा--अगर मैं इस कहानी को कहूंगा, तो मुझे सुधार करना ही पड़ेगा। यह कहानी का अंत इस तरह नहीं कर सकता हूं। मेरे लिए, इश्क-मजाजी और इश्क-हकीकी, भौतिक प्रेम और अभौतिक प्रेम दो प्रेम नहीं हैं--एक ही प्रेम के दो रूप हैं। जैसे कीचड़ और कमल। कीचड़ में कमल छिपा है और कमल में कीचड़ छिपी है। जब कीचड़ थी तो कमल दिखाई नहीं पड़ता था। और अभी कमल है तो तुम्हें याद भी नहीं आती कि यह गंदी कीचड़ से निकला है और कल फिर कीचड़ में गिर जाएगा, फिर कीचड़ हो जाएगा।
कीचड़ और कमल दो नहीं हैं। रूपांतरण हुआ है। एक ही ऊर्जा है। जिसको हम इश्क-मजाजी कहते हैं, वह, और जिसको कहें इश्क-हकीकी--उन दोनों में केवल रूप का भेद है। वही प्रेम है। प्रेम कहीं दो तरह के होते हैं? प्रेम तो एक ही तरह का होता है। प्रेम यानी प्रेम! हां, विस्तार बड़ा हो जाता है। लेकिन अगर यूसुफ उस विस्तार के बाहर छूट गया, तो जुलेखा को अभी परमात्मा का कोई अनुभव नहीं हुआ है। नहीं तो यूसुफ भी परमात्मा हो जाएगा। जब और सब परमात्मा हो गया, तो यूसुफ ही परमात्मा न होगा!
स्वामी रामतीर्थ अमरीका से भारत वापस लौटे। उन्होंने बड़ी ख्याति अमरीका में पाई। ख्याति पाने योग्य उनकी क्षमता थी। जब भारत वापस आए, तो सोचा था कि जब अमरीका जैसे भौतिकवादी देश में, इतना सम्मान मिला, और लोगों ने इतने प्रेम से, आनंद से, अहोभाव से, एक-एक शब्द को पीया, तो भारत में तो क्या नहीं हो जाएगा! मगर उनकी गलती थी। स्वभावतः उन्होंने चाहा कि भारत की यात्रा काशी से शुरू करें। बस यात्रा वहीं खत्म हो गई। बोले; बीच प्रवचन में एक पंडित खड़ा हो गया, और उसने कहा कि रुकिए। आप संस्कृत जानते हैं, व्याकरण का बोध है? वेद पढ़ा है? रामतीर्थ संस्कृत नहीं जानते थे। पंजाब में पैदा हुए, तो फारसी जानते थे। और उपनिषद और वेद भी पढ़े थे तो उनका फारसी अनुवाद पढ़ा था। संस्कृत नहीं पढ़ी थी। रामतीर्थ ने कहा: लेकिन परमात्मा को जानने के लिए क्या संस्कृत जाननी जरूरी है?
उस पंडित ने कहाः बिना संस्कृत जाने, क्या खाक तुम्हारा ब्रह्मज्ञान! व्याकरण का बोध नहीं है, चले ब्रह्मज्ञान की बातें करने! और पंडितों ने भी साथ दिया। हो-हल्ला हो गया। स्वागत होने की जगह, शोरगुल मच गया, उपद्रव मच गया। काशी के पंडे गुंडों से कुछ कम नहीं। रामतीर्थ के मन को बड़ा धक्का पहुंचा। ऐसी आशा न की थी। यात्रा छोड़ दी। हिमालय चले गए। एक कुटिया में, टिहरी गढ़वाल की पहाड़ियों में एक कुटिया में रहने लगे। उनकी पत्नी को खबर मिली, दूर पंजाब में, कि पति लौट आए हैं, उनके दर्शन को आई। एक प्रसिद्ध विचारक और लेखक, सरदार पूर्णसिंह उनकी सेवा में रहते थे। जब पत्नी को रामतीर्थ ने आते देखा दरवाजे से, दूर चढ़ते हुए पहाड़ी पर, तो पूर्णसिंह से कहाः दरवाजा बंद कर दो, और बाहर तुम रहो और उसको कह देना कि रामतीर्थ मिलना नहीं चाहते। पूर्णसिंह को तो बहुत धक्का लगा। पूर्णसिंह ने कहा, कि हजारों स्त्रियां आपसे मिलने आती हैं, किसी से आपने मिलने से इनकार नहीं किया, सिर्फ इस स्त्री का कसूर क्या है? क्या इसे आप अब भी अपनी पत्नी मानते हैं? नहीं तो रोक क्यों रहे हैं?
बात पते की कही--बहुत पते की कही! ... जब और किसी स्त्री को कभी नहीं रोकते, तो इसी स्त्री का कसूर क्या है? और यह गरीब, दूर पंजाब से यात्रा करके दर्शन करने आई है, इसको दर्शन भी नहीं देंगे!

पूर्णसिंह ने कहाः तो फिर आप तय कर लें! या तो इस पत्नी को दर्शन दें,
या मैं भी चला। फिर मैं भी आपके पास रुकने वाला नहीं हूं।
रामतीर्थ को बात ख्याल में आई, कि बात तो सच है। आखिर मैं पत्नी को मिलने से रोक क्यों रहा हूं! जरूर मैं उसे अब भी पत्नी मानता हूं। कहीं, अभी भी भय समाया हुआ है। इसकी चोट उन पर इतनी गहरी पड़ी कि उसी दिन उन्होंने गैरिक वस्त्र छोड़ दिए। यह जान कर तुम हैरान होओगे कि रामतीर्थ जब मरे, तो गैरिक वस्त्रों में नहीं थे। उन्होंने गैरिक वस्त्र छोड़ दिए, कि यह क्या मेरा संन्यास! इस संन्यास का क्या मूल्य है? चोट गहरी पड़ी, पत्नी से मिले और उससे क्षमा मांगी; हालांकि उसे तो कुछ पता ही नहीं था कि बीच में क्या हुआ? उसने पूछा भी कि क्षमा किस बात की? कहाः क्षमा इस बात की कि मैं इनकार कर रहा था मिलने से, बचना चाहता था। उससे सिर्फ मेरा भय प्रकट होता है। अलगजाली का यह कहना कि जुलेखा ने कह दिया यूसुफ को, कि अब मैं तुझसे प्रेम नहीं कर सकूंगी, क्योंकि अब मेरे हृदय में परमात्मा का वास है, वहां दूसरे की कोई जगह नहीं"--इसमें थोड़ा डर है। इसमें थोड़ा भय है। भय है यह कि कहीं यूसुफ रहा भीतर तो परमात्मा को निकाल बाहर न कर दे। हृदय में जगह भी बहुत छोटी मालूम पड़ती है। हृदय न हुआ, बंबई का कोई अपार्टमेंट हुआ। या तो भगवान जी रहें, या यूसुफ जी रहें; दोनों जी साथ नहीं रह सकते!
परमात्मा का अनुभव तुम्हें विराटता देता है। उसमें एक यूसुफ क्या लाखों यूसुफ समा जाएं! परमात्मा का प्रेम इस योग्य बनाता है कि सारा अस्तित्व तुम्हें प्रीतम जैसा मालूम होने लगे। आदमी तो आदमी, पशु-पक्षी, पौधे, चांद-तारे सब तुम्हारे प्रेम के पात्र हो जाते हैं। सिर्फ बेचारे यूसुफ का कसूर क्या है? इतना ही कसूर कि उसके आधार से, उसके झरोखे से तुम्हें परमात्मा का दर्शन हुआ? यह कसूर है उसका?
नहीं, अलगजाली कोई संत नहीं हैं, कोई सूफी नहीं हैं--दार्शनिक हैं। और दार्शनिक से इस तरह की भूलें होनी स्वाभाविक हैं; अंधेरे में तीर चलाए जा रहे हैं।
तुमने पूछा है, नरेंद्रः "ओशो, क्या लौकिक प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम में रूपांतरित हो जाता है?"
निश्चय ही, लौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम का बीज है। और ईश्वरीय प्रेम, लौकिक प्रेम का खिल जाना है, फूल हो जाना है।
परमात्मा और हमारा होना, संयुक्त है; जैसे तुम और तुम्हारी छाया। तुम चले, तुम्हारी छाया चली। तुम रुके, तुम्हारी छाया रुकी। परमात्मा, और हमारे बीच वही नाता है। परमात्मा अगर सत्य है, तो हम उसकी छाया मात्र। परमात्म-प्रेम अगर सत्य है, तो लौकिक प्रेम उसकी छाया। और परमात्मा की छाया भी सुंदर है। परमात्मा की माया भी सुंदर है। आखिर परमात्मा की है, सुंदर ही होगी!
इसलिए तो तुमसे कहता नहीं, कि भागो, छोड़ो! क्योंकि यह जो माया है, यह जो छाया है, यह भी उसकी ही है। कहीं इससे भाग खड़े हुए, तो डर यह है कि मूल से भी दूर न हो जाना। हो ही जाओगे। अगर तुम किसी की छाया से भागोगे तो उससे भी तो भाग गए! मैं कहता हूं उसकी छाया को समझो, उसकी छाया को पकड़ो, उसकी छाया को आधार बनाओ--सूत्र। और उसी के सहारे चलते-चलते एक दिन तुम मूल को पकड़ लोगे।

तुम तुंग-हिमालय-शृंग
और मैं चंचल-गति-सुर-सरिता;
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास,
और मैं कांत-कामिनी-कविता;
तुम प्रेम और मैं शांति।
तुम सुरा-पान-घन अंधकार-- मैं हूं मतवाली भ्रांति।।

तुम दिनकर के खर किरण-जाल, मैं सरसिज की मुसकान;
तुम वर्षो के बीते वियोग,

तुम तुंग-हिमालय-शृंग
और मैं चचंल-गति सुर-सरिता;
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास,
और मैं कांत-कामिनी-कविता;
तुम प्रेम और मैं शांति।
तुम सुरा-पान-घन अंधकार--
मैं हूं मतवाली भ्रांति।।

भेद जरा भी नहीं। भेद आभास मात्र है। ये नदी के दो किनारे, एक ही नदी
के दो किनारे हैं। यह किनारा उतना ही नदी का है, जितना वह किनारा। यह लोक उतना ही परमात्मा का है, जितना वह लोक। देह भी उसकी, आत्मा भी उसकी। भेदों को छोड़ो, भेदों के पार उठो। भेदों के पार उठ कर जिस दिन अभेद का दर्शन करोगे, उसी दिन जानना मुक्ति हुई, निर्वाण हुआ; उसी दिन जानना--साक्षात, सत्य; उसी दिन जानना--मुक्ति, मोक्ष। उसके पहले सब बौद्धिक हिसाब-किताब है।
अलगजाली बड़े विचारक हैं। मगर कोई अनुभव इस अतिक्रमण का नहीं है, जहां द्वंद्व मिट जाते हैं। और तथाकथित धार्मिक लोग इन्हीं द्वंद्वों में जीते रहे हैं। इसलिए उन्हें मैं धार्मिक नहीं कहता।
मैने एक दार्शनिक की कहानी पढी। वह बड़ा भक्त है परमात्मा का। दिन-रात उसी की माला जपता है। उसका पोता, छोटा सा बच्चा, जब वह माला जप रहा है, उसकी गोद में आ बैठा। उसने उसे, प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया। लेकिन तभी उसे ख्याल आया कि अरे, यह मैं क्या कर रहा हूं... । ईश्वर मुझे उसके लिए कभी माफ नहीं करेगा। उसकी माला जपना छोड़ कर और अपने पोते को छाती से लगा रहा हूं! उसने एक धक्का मार कर पोते को, गोदी से नीचे गिरा दिया और कहा कि दुष्ट, शैतान! हट जा यहां से! मेरी पूजा, मेरी उपासना को भ्रष्ट कर रहा है।
एक हिंदू संन्यासी मुझे यह कहानी सुना रहे थे। उन्होंने कहाः आपका इस संबंध में क्या कहना? मैंने कहा कि मुझसे अगर पूछो, बुरा न मानो, सच्ची बात कह दूं? उन्होंने कहा कि सच्ची बात पूछने के लिए आपसे... । तो मैंने कहाः परमात्मा पोते के रूप में आया था। और मूरख ने धक्के मार कर खतम कर दिया। जिंदगी भर माला जपी कि आओ, आओ, आओ! कांव-कांव मचा रखी थी! और अब आया तो धक्का मार दिया।
आखिर उस पोते में कौन है? और वह निर्दोष बच्चा, जो गोद में आ बैठा है,
वह कोई तुम्हारी पूजा-पाठ को बिगाड़ने आया है? उसे क्या तुम्हारी पूजा-पाठ का पता! सरलचित्त बच्चा, उसे ऐसे धक्का मार दिया जैसे वह शैतान हो!
लेकिन यह धारणा रही।
जिस संन्यासी ने मुझे यह कहानी सुनाई थी, वह भी बहुत चौंका। उसने कहाः मैं तो यह कहानी अक्सर अपने प्रवचनों में लोगों को कहता हूं। और कहता हूं, इसको कहते हैं भक्ति! आपने तो सब गड़बड़ कर दिया!
यह भक्ति नहीं है। अगर यह भक्ति है, तो फिर अभक्ति क्या होगी? और इतना कंजूस हृदय, इतना कृपण हृदय! परमात्मा का प्रेम विराटता देगा, कि इतना संकीर्ण हो जाएगा? कि इतना भयभीत हो जाएगा, इतना सिकुड़ जाएगा? परमात्मा अगर विस्तार है--विराट विस्तार--तो उसका प्रेम भी तुम्हें विराट विस्तार देगा। उसमें एक यूसुफ क्या, हजारों यूसुफ समा सकते हैं। इसलिए तो हमने कंजूसी नहीं की, इस देश में हमने कंजूसी नहीं की। जो समझा तो कंजूसी नहीं की, जिन्होंने नहीं समझा वे कंजूसी कर गए। कृष्ण को हमने कहा कि सोलह हजार सखियां। इसको कहते हैं अकृपणता! यह भी क्या एक पोते को धक्का मार दिया!
और उस संन्यासी को मैंने कहा कि तुम तो कृष्ण-भक्त हो! हरे कृष्ण, हरे राम! सोलह हजार सखियों के बीच कृष्ण नाचते रहे, और घबराए नहीं; और यह पोते से ही घबड़ा गया! और तुम यह कहानी कहते हो!
कृष्ण को हमने पूर्णावतार कहा है। ऐसे ही नहीं कह दिया। कारण हैः ऐसा विस्तार, इतनी विराटता! प्रेम का ऐसा सागर, जो सबको समाहित कर ले--कभी और किसी दूसरे में देखा नहीं गया था! राम उन अर्थों में सीमित मालूम होते हैं। इसलिए उनको हम कहते हैं--मर्यादा-पुरुषोत्तम। मर्यादा यानी सीमा।

कृष्ण है अमर्याद। मर्यादा नदी की होती है। सागर की क्या मर्यादा! तो राम को हमने आंशिक अवतार कहा। बुद्ध को भी हमने आंशिक अवतार कहा। लेकिन कृष्ण को हमने पूर्णावतार कहा। पूर्णावतार कह कर कृष्ण को, हमने यह उदघोषणा की, कि अगर परमात्मा का प्रेम सघन होगा, तो उसकी कोई सीमा नहीं हो सकती है। जहां सीमा है, वहां संकोच है। और जहां असीम का पदार्पण होता है, वहीं परमात्मा का अनुभव है।
प्रेम झरोखा है। इसी प्रेम से धीरे-धीरे प्रार्थना का आगमन होगा, प्रार्थना से धीरे-धीरे परमात्मा का आगमन होगा। लेकिन ध्यान रखना, इस आगमन से पुराने झरोखे जला नहीं दिए जाएंगे, तोड़ नहीं दिए जाएंगे; पुराने झरोखे और भी समादृत हो जाएंगे, तुम्हारा अनुग्रह और सघन हो उठेगा।
इसलिए तो गुरु के झरोखे से हम परमात्मा को जानते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि फिर गुरु को हम भुला देते हैं। गुरु के प्रति हमारा सम्मान और सघन हो जाता है, क्योंकि उसके ही माध्यम से तो परमात्मा की झलक मिली। कबीर कहते हैंः गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांव। एक घड़ी आती है, जब गुरु के झरोखे से परमात्मा दिखाई पड़ा, गोविंद दिखाई पड़ा। तो कबीर का प्रश्न बिल्कुल ठीक है, ठीक पूछते हैंः गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांव? अब बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। किसके पहले पैर छुऊं? अगर परमात्मा के छुऊं पहले पैर... सोचना! कबीर कहते हैंः अगर परमात्मा के पहले पैर छुऊं तो गुरु का अपमान हो जाएगा, और यह मैं नहीं कर सकता। और गुरु के पहले पैर छुऊं तो परमात्मा का कहीं अपमान न हो जाए। यह मैं कैसे करूं?
गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांव।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो बताय।।
लेकिन बलिहारी कही गुरु की कि धन्य हैं आप कि जल्दी से इशारा कर दिया
कि संकोच न कर, परमात्मा के चरण छू ले! मगर यह पद जाहिर नहीं करता कि कबीर ने फिर पैर छुए किसके? आमतौर से इसकी व्याख्या करने वाले लोग कहते हैं कि फिर परमात्मा के छुए, क्योंकि गुरु ने इशारा कर दिया। मैं कहता हूंः नहीं, क्योंकि "बलिहारी" शब्द कुछ और कह रहा है। बलिहारी यह कह रहा हैः गुरु ने तो इशारा किया परमात्मा की तरफ, लेकिन अब कैसे परमात्मा के पैर पहले छुए जा सकते हैं? वह बलिहारी शब्द कह रहा है, साफ कर रहा है कि कबीर ने पैर तो गुरु के ही छुए। कहा कि फिर ठीक है, अब ऐसे गुरु के पैर न छुओ तो क्या करो, जो इशारा कर रहा है कि परमात्मा के छू! छोड़ मुझे, भूल मुझे!
तो मेरे हिसाब में तो कबीर ने पैर छुए गुरु के ही।
सीढ़ियां भूल नहीं जानी चाहिए। जो पहुंचा देती हैं उत्तुंग शिखरों पर, उनको नमस्कार नहीं करोगे? नाव जो उस पार लगा देती है, जाते समय उसे धन्यवाद नहीं दोगे?
नहीं, अलगजाली को कुछ भी पता नहीं है। बड़ा तत्त्वदार्शनिक था; लेकिन कोई सूफी नहीं, कोई ज्ञाता नहीं।

तीसरा प्रश्न: ओशो, मैं प्रेम में मरा जा रहा हूं।

सिद्धार्थ!
मरौ हे जोगी मरौ! मरौ मरण है मीठा!
तिस मरणी मरौ जिस मरणी मरि गोरख दीठा।
इसीलिए तो यहां आए हो सिद्धार्थ--मरने की कला सीखने। और प्रेम में मरे
तो पुनरुज्जीवन है। प्रेम में मरे तो शाश्वत जीवन है। प्रेम में मरे कि सब पा लिया। प्रेम में मरने से बड़ी और कोई घटना नहीं। सो कंजूसी न करो! तुम्हारे प्रश्न से ऐसा लग रहा है कि पूछ रहे हो कि बचाओ। जैसे कि कोई नदी में डूब रहा हो, चिल्लाता है। मैं बचाने वाला नहीं। मैं कहता हूं: डूबो, हे डूबो जोगी! डूबो! यह मौका मत चूको क्योंकि जो डूबे सो ऊबरे। मैं बचाने को आने वाला नहीं, क्योंकि बच कर क्या करोगे? बचे तो बहुत जन्मों से हो! बच-बच कर क्या पाया? अब जरा खोने की कला सीखो। अब जरा दांव पर लगाओ सब। प्रेम में मरना ही होता है। प्रेम मृत्यु है--अहंकार की, अस्मिता की, मैं-भाव की। प्रेम मृत्यु से भी बड़ी मृत्यु है; वह महामृत्यु है। इसलिए

गोरख ने फर्क कियाः "तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरख दीठा!" ऐसे तो सभी मरते हैं, मगर इस तरह मरने से कोई दर्शन नहीं होता। तिस मरणी मरौ! वह मरनी मरो जिस मरने से गोरख को दिखाई पड़ा। वह कौन सी मरनी है? वह प्रेम की मरनी है। प्रार्थना में मरो, प्रेम में मरो! परमात्मा के मार्ग पर मरो। धर्म मृत्यु की कला है।
तो तुम यह मत पूछो सिद्धार्थ, इस तरह मत पूछो कि "ओशो, मैं प्रेम में मरा जा रहा हूं।" तो कुछ बुरा नहीं हो रहा है। इलाज की चिंता न करो। और यह दर्द ऐसा है भी नहीं कि इसकी कोई दवा हो। और यह दर्द ऐसा है कि जैसे-जैसे दवा करोगे वैसे-वैसे मर्ज बढ़ेगा।
और मेरा काम ही यह है कि तुम्हारी बीमारी बढ़ाऊं। तुम दवा भी मांगते हो, तो रंग-बिरंगा पानी तुम्हें पिला देता हूं, बाकी उसमें कुछ है नहीं; वह सिर्फ सांत्वना है कि ठीक है सिद्धार्थ, रखे रहो बोतलें, भरोसा रहा आएगा। मगर असली बात तो मरना है।
मरो, और फिर छोड़ो सब उस पर! होनी होय सो होय! फिर उसकी जो मर्जी। उबारे
तो उबार लेगा, डुबाए तो डुबा देगा। अपनी मर्जी को छोड़ देना ही मृत्यु है-- असली मृत्यु।

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित;
तेरे जीवन का अणु गल-गल!
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल!

सारे शीतल कोमल नूतन,
मांग रहे तुझसे ज्वाला-कण; विश्व-शलभ सिर धुन कहता "मैं हाय, न जल पाया तुझमें मिल!" सिहर-सिहर मेरे दीपक जल!

जलते नभ में देख असंख्यक, स्नेहहीन सागर नित कितने दीपक, जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले गिरता है बादल! विहंस-विहंस मेरे दीपक जल!

द्रुम के अंग हरित कोमलतम, ज्वाला को करते हृदयंगम
वसुधा के जड़ अंतर में भी
बंदी है तोपों की हलचल!
बिखर-बिखर मेरे दीपक जल।

मेरी निश्वासों के द्रुततर, सुभग न तू बुझने का भय कर; मैं अंचल की ओट किए हूं,
अपनी मृदु पलकों से चंचल! सहज-सहज मेरे दीपक जल!

सीमा की लघुता का बंधन,
है अनादि तू मत घड़ियां गिन;

मैं दृग के अक्षय कोषों से तुझमें भरती हूं आंसू-जल! सजल-सजल मेरे दीपक जल!

तम असीम तेरा प्रकाश चिर, खेलेंगे नव खेल निरंतर,
तम के अणु-अणु में विद्युत-सा-- अमिट चित्र अंकित करता चल! सरल-सरल मेरे दीपक जल!

तू जल-जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू--
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल!
मदिर-मदिर मेरे दीपक जल!

युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

सिद्धार्थ, जलो, मिटो, गलो। क्योंकि यही है उसे पाने का मार्ग। यही है उसे पाने की एकमात्र विधि। तुम जब तक हो, वह नहीं है। तुम मिटे कि वह है। पीड़ा तो होती है मिटने में। घबड़ाहट भी होती है। डर भी लगता है। मन कहता है: "कहां चल पड़े हो, किस अज्ञात पथ पर! लौट चलो वापस अपनी सुरक्षा में।" पर वापस, वहां पाया क्या था? वहां मिला क्या, जिसके लिए वापस लौटना चाहते हो?
पीछे लौट कर भी मत देखना, क्योंकि पीछे सिवाय राखों के और कुछ भी नहीं है।

जो जग-मग ज्योति जगाता रहता जग के कण-कण में,
वह क्यों न करेगा "क्रीड़ा" मेरे भी व्याकुल मन में?
आशा है एक दिवस तो चमकेंगी "किरणें" उज्जवल।
तब तक लहरों पर तरणी तिरती रहने दूं अविरल।

घबड़ाओ मत, अगर दूसरा किनारा न भी दिखाई पड़े और पुराना किनारा दिखाई पड़ना भी बंद हो जाए, लगे कि भटक गया, लगे कि मिटने लगा, लगे कि डूबी अब यह मेरी नौका--फिकर मत करना।

जो जग-मग ज्योति जगाता रहता जग के कण-कण में,
वह क्यों न करेगा क्रीड़ा मेरे भी व्याकुल मन में?

वह जो चांद-तारों को चला रहा है, वह जो छिपा है वृक्षों की हरियाली में, फूलों के रंगों में, वह जो व्याप्त है हवा के कण-कण में--वह तुम्हें भी सम्हालेगा। कोई और हाथों की आवश्यकता नहीं है।

मैं भूल न जाऊं उसको जग आंखों से हट जाए,
उसका ही "प्रेम" निरंतर यह "जीवन-तरी" चलाए।
मैं अपनी अभिलाषाएं करती हूं उसे समर्पित।
सौंपे देती हूं सुख-दुख सब पाप-पुण्य चिर-अर्जित।

सब सौंप दो उसे--पाप भी, पुण्य भी। सब सौंप दो उसे--ज्ञान भी, अज्ञान भी। सब सौंप दो उसे--जीवन भी, मृत्यु भी। और उसी क्षण क्रांति घट जाएगी। जब तक कुछ भी बचाओगे, रत्ती भर भी बचाओगे, तब तक क्रांति नहीं घट सकती। सौ प्रतिशत पर ही क्रांति घटित होती है। शुभ घड़ी है। मृत्यु की घड़ी है। मरण

की बेला है, क्योंकि मरण की बेला जागरण की बेला है। इस मरण को आत्मसात कर सको तो जागरण बन जाए। अगर घबड़ा जाओ, भाग जाओ, तो फिर नींद है। फिर वही पुरानी नींद। फिर वही पुराने दुखस्वप्न।

निशि के आंचल से मुंह ढंक जग--शिशु है सोने
वाला।
पर पिला रहा है मुझको कोई जागृति का प्याला।

जब मूंद पलक देखेगा जग सुख के सपने प्यारे,
क्या सूने में बैठूंगी मैं व्याकुल गिनती तारे? विश्राम करेंगे जब सब नीड़ों में श्रम से हारे, क्या तरी खोजती मैं ही भटकूंगी सिंधु-किनारे?

पर जब इस अस्थिर जग के उस पार जगत है मेरा,
तब क्यों न चलूं उस पार, मैं तोड़ क्षितिज का घेरा।
इस भूले-भटके जग ने समझा है जिसे किनारा,
वह माया-जाल भ्रमों का दिखने में मोहक, प्यारा।

उस पर यह हृदय भटक कर फिरता है मारा-मारा
इस जग के पार क्षितिज से प्रियतम ने मुझे पुकारा।।

मृत्यु की प्रतीति हो रही है, अर्थात उस प्यारे की पुकार कहीं सुनाई पड़ने लगी है। वह कह रहा हैः मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा। वह पुकार रहा है कि गलो! जगह दो, ताकि मैं प्रवेश पा सकूं। स्थान खाली करो, ताकि मैं उसे भर सकूं।
जब तक अहंकार तुम्हारे सिंहासन पर बैठा है, परमात्मा को बैठने के लिए जगह नहीं है।

जो प्यास हृदय में जागी क्या रोके रुक सकती है?
चातक की तृष्णा जग के झरने से बुझ सकती है?

छू स्वर्ण-रश्मियों ने उर जाने क्या भाव जगाया।
जाने किस मलयानिल ने मानस का कमल खिलाया।

उन्मत्त हृदय है, मद की दी पिला किसी ने प्याली।
आवेंगी फिर न कभी ये घड़ियां प्यारी, मतवाली।

ऐ हृदय, आज बहने दे नौका को झोंके खाती।
आने दे यदि आती है आंधी तूफान उठाती।

सीमा के बंधन टूटे चेतना लुप्त है मेरी।
मैं आंखें मूंद बढूंगी लहरों पर सागर तेरी।

कितनी नौकाएं डूबीं भव-कूल नहीं है पाया, फिर भी मैंने इस जर्जर तरणी को आज बहाया।

ऐसे तो सभी को मरना है।

कितनी नौकाएं डूबीं भव-कूल नहीं है पाया, फिर भी मैंने इस जर्जर तरणी को आज बहाया।

ऐसे तो सभी मरते हैं; लेकिन धन्यभागी है वह, जो बोधपूर्वक मरता है, जो प्रेम में मरता है। देह तो मरेगी ही; लेकिन जो अहंकार को मर जाने देता है, उससे बड़ा सौभाग्यशाली व्यक्ति इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
पांचवां प्रवचन

पीवत रामरस लगी खुमारी

सूत्र

छारि पर्यौ आतम मतवारा।
पीवत रामरस करत बिचारा।।
बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा।
लै कसाब रस राम चुवावा।।
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा।
मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।।
कहैं कबीर फाबी मतवारी।
पीवत रामरस लगी खुमारी।।

सील-संतोख ते सब्द जा मुख बसै, संतजन जौहरी सांच मानी।
बदन विकसित रहै ख्याल आनंद मैं, अधर मैं मधुर मुसकान बानी।
सांच गेलै नहीं झूठ बोलै नहीं, सुरत मैं सुमति सोइ स्रेष्ठ ज्ञानी।
कहत हौं ज्ञान पुकारि कै सबन सों, देत उपदेस दिल दर्द जानी।
ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है, दया की भक्ति दिल माहिं ठानी।
ओर ते छोर लौं एक रस रहत है, ऐस जन जगत मैं बिरलै प्रानी।
ठग्ग बटमार संसार में भरि रहे, हंस की चाल कहं काग जानी।
चपल और चतुर हैं बनै बहु चकिने, बात मैं ठीक पै कपट ठानी।
कहा तिन सों कहों दया जिनके नहीं, घात बहुतें करैं बकुल ध्यानी।।
दुर्मती जीव की दुबिध छूटे नहीं, जन्म जन्मांत पड़ नर्क खानी।
काग कूबुद्धि सूबुद्धि पावै कहां, कठिन कट्ठोर बिकराल बानी।
अगिन के फुंज हैं सितलता तन नहीं, अमृत और विष दोऊ एक सानी।
कहा साखी कहे सुमति जागा नहीं, सांच की चाल बिन धूर धानी।
सुकृति और सत्त की चाल सांची सही, काग बक अधम की कौन खानी।
कहै कबीर कोउ सुघर जन जौहरी, सदा सावधान पियो नीर छानी।।

जॉर्ज गुरजिएफ से उनके एक शिष्य ने पूछाः "आप मनुष्य को प्रेम करते हैं या नहीं?" पूछने का कारण था, क्योंकि गुरजिएफ मनुष्य के संबंध में अति कठोर सत्य बोलता था। कहता थाः मनुष्य है ही नहीं फृथ्वी फर, मशीनें हैं। मनुष्य तो कभी-कभार फैदा होता है--कोई बुद्ध, कोई जीसस, कोई जरथुस्त्र; शेष तो सब यंत्र हैं। धोखे में हैं मनुष्य होने के। मनुष्य हो सकते थे, हो सकते हैं; लेकिन मनुष्यता जन्म के साथ नहीं मिलती, उपलब्ध करनी होती है, अर्जित करनी होती है, आविष्कृत करनी होती है।
गुरजिएफ यह भी कहता था कि आत्मा सभी व्यक्तियों में नहीं होती। यह और
भी कठोर बात थी; क्योंकि सदा से ऐसा ही कहा जाता रहा है कि आत्मा प्रत्येक के भीतर है। लेकिन गुरजिएफ कहता थाः सोई हुई आत्मा का होना और न होना बराबर है। जागे, तो ही है; सोई हो, तो नहीं है। कितनों की आत्मा जागी हुई है? जिनकी जागी है वे ही आत्मवान हैं, शेष सब आत्महीन हैं।
इसलिए प्रश्न स्वाभाविक था और शिष्य ने पूछा कि आप मनुष्य को प्रेम करते हैं या घृणा? आपके वचन बड़े कठोर हैं। गुरजिएफ ने जो कहाः उस पर खूब ध्यान देना। गुरजिएफ ने कहाः मनुष्य जैसा है उसे तो मैं घृणा करता हूं। उसकी सात पीढ़ियों पीछे तक घृणा करता हूं। और मनुष्य जैसा हो सकता है उसके प्रति मेरे मन में सिवाय समादर के और कुछ भी नहीं।
मनुष्य जैसा है, वह तो कूड़ा-करकट है। लेकिन जैसा हो सकता है! जैसा है,
वह तो कीचड़ है, लेकिन हो सकता है कमल। बीज का क्या मूल्य; बीज जब विकसित हो, फूल खिलें, गंध उड़े, तो कुछ मूल्य है। हम केवल संभावना की भांति पैदा होते हैं। जीवन एक अवसर है--जीवन को पाने का। इससे ही तृप्त मत हो जाना, नहीं तो चूक जाओगे। इससे ही राजी मत हो जाना। मत समझ लेना कि जन्म मिल गया तो जीवन

मिल गया। जन्म मिला तो केवल मृत्यु मिली, क्योंकि जन्म का अंत मृत्यु में है।
जीवन तो मिलता है--जन्म से नहीं; ध्यान से। एक और जन्म चाहिए--ध्यान का जन्म। द्विज होना होगा। एक जन्म तो मिलता है माता-पिता से। एक जन्म देना होता है स्वयं को। जो माता-पिता से मिलता है वह तो देह का जन्म है। देह तो मरेगी; वह तो क्षणभंगुर है। पानी का बबूला है; अभी है अभी नहीं। एक और जन्म है, जो स्वयं को ही देना होता है। वही शाश्वत है। वही ले जाता है महाजीवन में।
कबीर के ये सूत्र, उसी महाजीवन की तरफ एक-एक सीढ़ियों की भांति हैं। सीधे-सादे वचन, पर महावाक्य हैं ये।

कितनी दूरी मंजिल की हो
चलते चलते कट जाती है।

विदा दिवस-मणि की बेला में,
धरती तम-वसना बन जाती,
रजनी सुधि बुधि भूली जैसी
अगम गगन में सेज बिछाती;

कितनी रात अंधेरी हो पर
धीरे-धीरे कट जाती है।

साहस हो तो बढ़ चल आगे
हार न पंथी भर न निराशा,
कुहू निशा की बेला में भी देख सितारा राह दिखाता;

घनी अंधेरी उजियाले की
एक रेख से फट जाती है।

भूल न भावुकता में भोले,
दुर्बलता न कभी फल पाई,
नहीं याचना से जीवन में
दो कण भी भिक्षा मिल पाई?

विश्वासों की कुछ किरणों से, दुख की बदली छंट जाती है।

नींद रंगीली बन सकती है,
सपने स्वर्णिम बन सकते हैं, ढलते रवि की किरणों में भी
इंद्रधनुष नव तन सकते हैं;

राह कंटीली प्रिय संबल पर
हंसते-हंसते कट जाती है।

कितनी दूरी मंजिल की हो
चलते-चलते कट जाती है।

यात्रा तो लंबी है। मार्ग तो कठिन है। चढ़ना है पर्वत-शिखर की ओर। उतार आसान होते हैं, चढ़ाव कठिन होते हैं। और यह तो अंतिम चढ़ाव है। चैतन्य के शिखर को छूना; इससे बड़ी न कोई यात्रा है, न कोई बड़ा अभियान है।

लेकिन घबड़ाना मत। कितनी ही हो दूर मंजिल, चलते-चलते कट जाती है। एक-एक कदम चल कर--लाओत्सु ने कहा है--दस हजार मीलों की यात्रा पूरी हो जाती है। यही सोच कर कोई बैठ रहे कि इन छोटे से कदमों से कैसे पहुंच पाऊंगा, तो फिर कोई यात्रा संभव नहीं; छोटी सी दूरी भी पूरी नहीं हो सकती। प्रत्येक को एक ही कदम तो मिला है। एक बार एक ही कदम तो चल सकते हो। मगर एक-एक कदम चलते- चलते अनंत यात्रा भी पूरी हो जाती है।
ये छोटे-छोटे कदम हैं जो कबीर सुझा रहे हैं। पहले तो बात करते हैं उस अंतिम घड़ी की, उस शिखर की, ताकि तुम्हारे मन में वीणा बज उठे। पहले तो दिखाते हैं दृश्य--दूर गौरीशंकर का, प्रभात के सूर्य में स्वर्ण जैसा चमकता हुआ! ताकि तुम्हारे भीतर भी एक अदम्य अभीप्सा जाग सके। और अभीप्सा जागे तो ही कोई यात्रा पर निकल सकता है। इतनी कठिन यात्रा छोटे-मोटे विचारों से नहीं होती--महासंकल्प चाहिए, समग्र संकल्प चाहिए!
इसलिए सारे संतों ने पहले तो परमात्मा की आनंद-अनुभूति के गीत गाए हैं कि तुम्हारे भीतर बीज अंकुरित हो उठे। उठे एक अदम्य भाव कि मैं भी पाकर रहूंगा। यह भरोसा जगाया है कि मिल सकता है तुम्हें भी। और फिर उस लंबी यात्रा के पड़ावों की चर्चा की है।
छारि पर्यौ आतम मतवारा।
कहते हैं कबीरः जैसे वर्षा हो उठे, जैसे घिर जाएं मेघ और अमृत बरस उठे--ऐसा हुआ है!
छारि पर्यौ आतम मतवारा।
ऐसी वर्षा हुई है आनंद की कि आत्मा मतवाली हो गई है।
पीवत रामरस करत बिचारा।
अब रामरस पी रहा हूं, जी भर कर पी रहा हूं। जितना पी सकूं उससे ज्यादा बरस रहा है। इस आनंद-अमृत में मदमस्त हूं, नाच रहा हूं, गा रहा हूं। और एक विचार उठता हैः बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा।" लेकिन यह जो मधुरिमा मिली है, यह जो गुड़ मिला, यह जो मिठास मिली, यह बहुत कीमत चुका कर मिला। यूं ही नहीं मिला, मुफ्त नहीं मिला।
धर्म मुफ्त नहीं है और भिक्षा मांगने से नहीं मिलता। और धर्म सस्ता नहीं है और थोथे क्रियाकांडों, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, इस सब धोखे में समय मत खराब करना, ऐसे नहीं मिलता।
कहते हैं कबीर: बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा।
बहुत कीमत चुकाई, तब यह मधुरिमा मिली है, तब यह मिठास मिली है। क्या कीमत चुकाई?
लै कसाब रस राम चुवावा।
वह जो कषाय रस भरे हुए थे, उनको निकाल बाहर किया। क्रोध है, मोह है, लोभ है, काम है, ईर्ष्या है, मद है, मस्तर है--कषाओं से हम घिरे हैं। कषाय यानी शत्रु। इन शत्रुओं को जब निकाल कर बाहर किया... लै कसाब! राम ने जब ये सब कषाएं ले लीं, जब हमने सब ये कषाएं उसे दे दीं, उसके चरणों में चढ़ा दीं... ! फूल चढ़ाने से कुछ भी न होगा। फूल तुम्हारे हैं भी नहीं। तोड़ लिए गुलाब
की झाड़ी से और चढ़ा दिए परमात्मा फर। परमात्मा भी तुम्हारा झूठा--पत्थर की मूर्ति; और फूल भी उधार--वे भी गुलाब के, तुम्हारे नहीं। झूठे परमात्मा पर उधार फूल चढ़ा कर तुम सोच रहे हो, अमृत की वर्षा होगी? तुम उस अलौकिक आनंद को उपलब्ध हो सकोगे? तुम उस स्वर्ण-शिखर पर पहुंच सकोगे? तुम्हारा पुनर्जन्म हो सकेगा? तुम्हारे जीवन में ऐसे वसंत आएगा? नहीं, इतनी सस्ती बात नहीं है।
कबीर कहते हैंः सब कषाएं जब उसके हाथ में दे दीं--अहंकार, मद-मत्सर, काम, क्रोध, लोभ सब चढ़ा दिए उसके पैरों पर... ये चढ़ाने की चीजें हैं। फूल चढ़ाने से क्या होगा? दीये जलाने से क्या होगा? नारियल फोड़ने से क्या होगा? सिर चढ़ाओ, अहंकार चढ़ाओ।
आदमी बड़ा चालबाज है। नारियल आदमी के सिर जैसा मालूम पड़ता है, इसलिए उसको खोपड़ा भी कहते हैं न! उसके आंखें भी होती हैं, दाढ़ी-मूंछ। आदमी ने तरकीब निकाल लीः अपना सिर चढ़ाने की जगह नारियल चढ़ाने लगा। अपना लहू चढ़ाने

की जगह उसने मंदिर की मूर्तियों पर कुमकुम चढ़ा दी, लाल रंग से मूर्तियां पोत दी हैं। किसको धोखा दे रहे हो?
बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा।
लै कसाब रस राम चुवावा।।
जब राम ने सब कषाएं रखवा लिए अपने चरणों में, तब रस की वर्षा हुई, तब उसने अमृत पिलाया।
तुम्हारा पात्र अगर गंदा हो तो उसमें अमृत भी पड़ेगा तो गंदा हो जाएगा। तुम्हारा पात्र अगर जहर से भरा हो तो उसमें अमृत कौन डालेगा! पहले तो इस सारे जहर को परमात्मा को सौंप देना होगा। और कुछ तुमसे मांगता नहीं परमात्मा--कोई धन नहीं मांगता, कोई पद नहीं मांगता, कोई प्रतिष्ठा नहीं मांगता। मांगता है तुम्हारे रोग, तुम्हारी बीमारियां, ताकि तुम्हें स्वास्थ्य दिया जा सके।

ज्योतित दीप झरो!

वसुधा के आंगन में नभ के
ज्योतित दीप झरो!

घोर अमा के अंधकार में
नभ, भू, तम की गहन धार में
शुभ आलोक भरो!
ज्योतित दीप झरो!

निर्मल-नभ का हास्य अनोखा
धरणी मंद-मंद मुस्काती,
नई नवेली बनी सुहागिन
तारों से शुभ मांग सजाती,

दीप अवनि से उमग-उमग कर
तम पर टूट पड़ो।

प्रार्थनाएं तो करते हैं लोग कि जलो दीप, ज्योतित दीप झरो! प्रार्थनाएं तो लोग करते हैंः अंधकार गहन है। हे परमात्मा, हे ज्योतिर्मय--ज्योति दे! पर कीमत चुकाने की बात ही भूल जाते हैं, बस प्रार्थनाएं चलती रहती हैं। और ऐसी प्रार्थनाएं न सुनी जाती हैं, न ऐसी प्रार्थनाएं कभी किसी सार्थकता को उपलब्ध होती हैं। ऐसी प्रार्थनाओं में गंवाया समय बस सिर्फ गंवाया समय है। प्रार्थना का मूल्य तभी है, प्रार्थना की प्रामाणिकता तभी है, जब तुम उसके साथ मूल्य भी चुकाने को राजी होओ। और मूल्य क्या है? कूड़ा-करकट सब चढ़ा दो उसके चरणों में। देने योग्य तुम्हारे पास और है भी क्या? हीरे-जवाहरात तो हैं भी नहीं: कंकड़-पत्थर हैं। मगर इनको ऐसे छाती से लगा कर बैठे हो!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः क्रोध छूटे नहीं छूटता। क्रोध से पाया क्या है जो इतना जोर से पकड़े हो? दुख पाया, पीड़ा पाई, जहर पाया; फिर भी छूटता नहीं और उनकी बात से ऐसा लगता है जैसे क्रोध ने उन्हें पकड़ा है। शेख फरीद के पास ऐसे ही किसी आदमी ने जाकर पूछा था--फरीद कबीर के समसामयिक थे--कि क्रोध नहीं छूटता। फरीद मस्तमौला आदमी थे। बैठे थे, उठ कर खड़े हो गए। पास ही खंबा था मंदिर का, उस खंबे को जोर से पकड़ लिया और चिल्लाने लगेः छुड़ाओ! छुड़ाओ! भीड़ इकट्ठी हो गई। लोगों ने कहा कि आपका दिमाग तो ठीक है? आप अचानक पागल तो नहीं हो गए? खंबे को आप ही पकड़े हो और कहते होः बचाओ! छुड़ाओ!
फरीद ने कहाः इस आदमी को उत्तर दे रहा हूं। यह कहता है क्रोध से छुड़ाओ; जैसे कि क्रोध ने तुम्हें पकड़ा हो! अब यह खंबा थोड़े ही मुझे पकड़े है; मैं ही इसको पकड़े हूं। यह रहा, छोड़ दिया तो छूट गया।

इस बोध को स्मरण में लो। ये भी तरकीबें हैं तुम्हारे मन की--क्रोध से छुड़ाओ, मोह से छुड़ाओ, लोभ से छुड़ाओ। इसमें तुमने मौलिक भ्रांति को स्वीकार ही कर लिया कि जैसे इन्होंने तुम्हें पकड़ा है।
इन्होंने तुम्हें नहीं पकड़ा है; तुम्हीं इन्हें पकड़े हो। तुम जिस दिन छोड़ना चाहोगे, क्षण भर भी देर नहीं करनी होगी। तुमने निर्णय किया और छूटे, तत्क्षण छूटे।
लै कसाब रस राम चुवावा।
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा।
कितने शरीर के नगरों में से तुम गुजर चुके, कब सीखोगे पाठ? प्रत्येक शरीर एक गागर थी, जिसमें परमात्मा का सागर उतर सकता था। मगर तुम भरे रहे-- राख से, कूड़े-करकट से, कंकड़-पत्थर से। तुमने परमात्मा को अवकाश न दिया, स्थान न दिया। कितने शरीरों से गुजर गए हो यूं--अंधे, आंख बंद किए! कितने अवसर तुमने गंवाए हैं उसकी अनुकंपा अपार है कि फिर-फिर तुम्हें अवसर देता है; थकता ही नहीं; आशा नहीं छोड़ता; तुम पर भरोसा नहीं छोड़ता। तुमने उस पर भरोसा नहीं किया है; उसका भरोसा अडिग है, अथक। आज नहीं कल तुम लौट ही आओगे। सुबह नहीं तो दोपहर, दोपहर नहीं तो सांझ तुम लौट ही आओगे।
मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।
तुम कितने नगरों से निकले और मांग-मांग कर चाहते थे रस मिल जाए। बड़े नासमझ हो। कबीर कहते हैंः बड़े बेचारे हो, बड़े दया-योग्य हो, दया के पात्र हो।
मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।
आशा रखते हो कि मांगने से अमृत मिल जाएगा। मांगने से अर्थ है--हमारी वासनाएं, हमारी आकांक्षाएं, हमारी अभिलाषाएं। ये सब भिखमंगेपन के सबूत हैं। हम मांगते ही चले जाते हैं--यह दो, वह दो। हमारी मांग कभी समाप्त ही नहीं होती। एक मांग पूरी नहीं होती कि दस नई मांगे खड़ी हो जाती हैं। हमारा भिक्षापात्र भरता ही नहीं, भरना जानता ही नहीं!
मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।
रस कहां मिला तुम्हें? बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न चून। रहीम
ने ठीक कहा है। मांगने से कुछ भी न मिलेगा। कुछ चीजें हैं जो बिना मांगे मिलती हैं, क्योंकि कुछ चीजें हैं जो मालिकों को मिलती हैं, भिखमंगों को नहीं मिलतीं। भिखमंगों को वही मिलता है जो भिखमंगों के योग्य है। मालिकों को वही मिलता है जो मालिकों के याग्य है।
तुम जरा क्रोध, लोभ, माया, मोह परमात्मा के चरणों में तो रख कर देखो, अचानक तुम पाओगे तुम मालिक हो गए! इनके जाते ही तुम्हारी गुलामी कट गई, तुम्हारी जंजीरें टूट गईं, तुम्हारा कारागृह नष्ट हो गया। और परमात्मा केवल मालिकों को ही दे सकता है। जिनकी कोई मांग नहीं, उनको दे सकता है। जिनकी कोई मांग नहीं, वे पाने के अधिकारी हैं। मांगा कि चूके। नहीं मांगो। मांगने के ऊपर उठ जाओ--तत्क्षण वर्षा हो जाएगी, तत्क्षण वसंत आ जाएगा।

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत-रजनी!

तारकमय न वेणी बंधन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित फन-अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी!
पुलकती आ वसंत-रजनी!

मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि, अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि भर पद-गति में अलस तरंगिणि तरल रजत की धार बहा दे

मृदु स्मित से सजनी!
विहंसती आ वसंत-रजनी!

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि, कर में हो स्मृति की अंजलि, मलयानिल का चल दुकूल अलि! घिर छाया-सी श्याम, विश्व को आ अभिसार बनी,
सकुचती आ वसंत-रजनी!

सिहर-सिहर उठता सरिता--उर खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा भर, मचल-मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी!
सिहरती आ वसंत-रजनी!

सिहरती आ वसंत-रजनी!
पुलकित हो गई यह अवनी!

यह सारी पृथ्वी जैसे वसंत के आगमन पर दुल्हन बन जाती है, ऐसे ही तुम जब अपने को शून्य कर लेते हो व्यर्थ की वासनाओं से, तो उतरता है एक महावसंत। कहो उसे निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य, परमात्मा, या जो भी नाम तुम्हें प्रिय हो। फूल पर फूल तुम्हारे भीतर खिलते चले जाते हैं--चैतन्य के फूल! और अपूर्व सुगंध उठती है!
लेकिन यह मालिकों के ही जीवन में वसंत आता है। भिखमंगों के जीवन में कभी वसंत नहीं आता। संन्यास मालिक बनने की प्रक्रिया है। इसलिए संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी का अर्थ है: मालिक। अब वह भिखमंगा नहीं। मगर संन्यास ऊपर से ही लिया तो किसी अर्थ का नहीं। तुम्हारे भीतर मालकियत की घोषणा होनी चाहिए। और एक ही उपाय है कि तुम चुका दो, परमात्मा जो कीमत मांगता है।
कहै कबीर फाबी मतवारी।
और कबीर कहते हैंः जब तक मांगा तब तक हम दयनीय अवस्था में रहे, कुछ न पाया। और अब! ऐसी वर्षा हो रही है, ऐसी अनंत आनंद की धार बह रही है--फाबी मतवारी! ऐसी मस्ती छा रही है।
पीवत रामरस लगी खुमारी।
अब जो राम-रस पीया है, तो ऐसी खुमारी लगी है जो टूट नहीं सकती। यह जो शराब पी ली है परमात्मा की, अब बस यह नशा उतरने वाला नहीं। जो नशा उतर जाए वह भी कोई नशा है! नशा चढ़े और उतरे नहीं, वही नशा है।
कबीर कहते हैंः मांग-मांग कर नहीं मिला था और बिना मांगे मिला है। ऐसे
ही तुम्हें भी मिलेगा।
और इस खुमारी को पाए बिना जाना मत, विदा मत होना। कितनी ही प्रतीक्षा करनी पड़े, प्रतीक्षा करना। और कितना ही श्रम करना पड़े, श्रम करना। और कितनी ही कठिनाई हो उसके चरणों में अहंकार चढ़ाने में, झेल लेना कठिनाई, मगर यह सिर चढ़ा ही देना है!

मैं मिलन प्रतीक्षा में प्रिय की
अलि हंस कर दिवस बिता लूंगी

मेरे शीतल निश्वासों से
मधु वात सिहर सी जाती है,
मेरी अंतर-ज्वाला से ही
यह रात्रि सुलगती जाती है,

सखि, मैं वियोग के तम में ही अपना उज्ज्वल विध पा लूंगी।

पथ मेरा परिचित है, पथ का अणु-अणु मेरा चिर-परिचित रे! मंजिल कितनी ही दूर रहे
यह गैल सदा की परिचित रे।

पथ के कंटक को भी अलि मैं,
सुख से दो पग में छा लूंगी।

अंतर में ज्वाल उठा करती
नयनों से धार बहा करती;
उर की इस विकल रागिनी को
दुनिया दे कान सुना करती।

सखि, मैं प्रिय के सुख-हेतु तार
उर के सब आज बजा लूंगी।।

उस परमात्मा के सामने तुम्हारे हृदय की वीणा बजनी चाहिए। भिखमंगा यह नहीं कर सकता। वह तो रोता है, गिड़गड़ाता है। उसकी वीणा पर क्या आनंद के गीत उठेंगे? वह क्या वसंत को पुकारेगा? वह तो कौड़ियों के पीछे दीवाना है। उसकी नजर तो कौड़ियों पर अटकी है।
रामकृष्ण कहते थेः चील आकाश में भी उड़ती है तो भी उसकी नजर घूरे पर पड़े मरे चूहे में लगी रहती है। उड़ती आकाश में है, लेकिन नजर घूरे पर लगी रहती है। मरे चूहे में! तुम मंदिर में भी बैठे हो, नजर कहां है? कोई मरा चूहा! किसी घूरे पर। हाथ में पूजा का थाल है, नजर कहां है? मुख पर राम-राम है और बगल में छुरी। नजर कहां है?
और नजर ही निर्णायक है। क्या तुम कर रहे हो, क्या तुम कह रहे हो--इसका कोई मूल्य नहीं। तुम्हारी दृष्टि में क्या है? क्योंकि तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी सृष्टि है। वही तुम्हें निर्मित करती है। वही है सृजन की प्रक्रिया।
यह तो कबीर ने उस परम दशा की बात कही। अब वह कहते हैं मार्ग की बात। मंजिल की पहले कही, कि थोड़ी तुम्हारी हृदय-तंत्री झनझना उठे। अब मार्ग की बात--
सील संतोख ते सब्द जा मुख बसै, संतजन जौहरी सांच मानी।
सील-संतोख! एक तो शील... शील का अर्थ साधारण आचरण नहीं होता, साधारण नैतिकता नहीं साधारण चरित्र नहीं। साधारण चरित्र तो दो कौड़ी का है। वह तो तुम्हारा अहंकार का ही आभूषण है। उससे तुम्हें मान मिलता, मर्यादा मिलती, पद-प्रतिष्ठा मिलती। लोग कहते हैं: "अहा, कैसा धार्मिक व्यक्ति है, कैसा चरित्रवान! कलियुग में भी सतयुगी है!" और तुम्हारा अहंकार फूलता है।
और चरित्र ऊपर से थोपी हुई बात है। जो तुम्हारे मां-बाप ने, समाज ने, चर्च ने, पंडित-पुरोहितों ने सिखा दिया है, वही तुम्हारा चरित्र बन जाता है। और शील! शील ध्यान से उठी हुई सुगंध का नाम है। कोई और नहीं सिखाता उसे; वह तुम्हारे भीतर का आविर्भाव है। जब तुम शांत होते हो तो तुम्हारे जीवन में एक प्रसाद होता है, एक सौंदर्य होता है, एक गरिमा, एक महिमा। बाहर से आरोपित नहीं, अभ्यास की गई नहीं--तुम्हारे भीतर से जागी। तुम्हारे भीतर मौन होते चैतन्य ने ही तुम्हें जो दृष्टि दी है, उसके अनुसार तुम चलते हो-- वह शील। पंडित-पुरोहित जो समझाते हैं, उनके अनुसार चलते हो--वह चरित्र। चरित्र थोथा होता है। उसकी गहराई चमड़ी से भी ज्यादा गहरी नहीं होती; जरा सा खरोंच दो, खत्म हो जाता है।

एक युवक न्यूयार्क गया। वह अपने मित्र के साथ बगीचे की एक बैंच पर बैठा हुआ है। एक सुंदर युवती निकली। उस युवक ने अपने मित्र से पूछा: यह कौन है? उसने कहाः यह है सुजान। दस डालर। उसके पीछे एक दूसरी स्त्री आती थी, पूछा, यह कौन है? कहाः यह है अन्ना। बीस डालर। उसके पीछे एक तीसरी स्त्री आती थी, कहाः यह कौन है? कहाः गिलोरिया। पचास डालर। मित्र ने पूछा कि क्या न्यूयार्क में एक भी चरित्रवान स्त्री नहीं है? हर स्त्री की कीमत बता रहे हो!
मित्र ने कहाः चरित्रवान स्त्रियां क्यों नहीं हैं! हैं! मगर तुम उनकी कीमत न चुका सकोगे।
बस कीमत के भेद हैं। तुम खुद ही सोचो। तुमसे कोई पूछे कि दस रुपये का नोट पड़ा है राह के किनारे, उठाओगे? तुम कहोगेः कभी नहीं, मैं कोई चोर हूं! लेकिन कहे कि दस लाख रुपये पड़े हैं, तो फिर तुम कहोगे, जरा विचार करना पड़ेगा। दस लाख छोड़ना मुश्किल हो जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक लिफ्ट में सवार हुआ। साथ एक महिला और थी। एकांत, लिफ्ट जैसे ही दरवाजा बंद हुआ ऊपर की तरफ उठी, मुल्ला ने पूछा, अगर हजार रुपये दूं तो तुम मेरे साथ चलने को राजी हो? उस स्त्री ने कहाः तुमने मुझे क्या समझा है? अभी रोकती हूं लिफ्ट और अभी शोरगुल मचाती हूं।
मुल्ला ने कहाः ठहर, पहले पूरी बात सुन ले। दस हजार दे सकता हूं। उस स्त्री ने कहाः दस हजार! शांत हो गई। कहाः ठीक है। तो मुल्ला ने कहाः और दस रुपया? उस स्त्री ने कहाः अभी दरवाजा खोलती हूं और चीख मारती हूं। मुल्ला ने कहाः अब चीख वगैरह मारने की कोई जरूरत नहीं। उस स्त्री ने कहाः मुझे तुमने समझा क्या है? मुल्ला ने कहाः वह तो अपन ने तय ही कर लिया। अब तो मोल-भाव कर रहे हैं। तू कौन है, वह हम समझ गए। हम कौन हैं, वह तू समझ गई। हम खरीददार, तू बेचने वाली। दस हजार में बेच सकती है, तो बात ही खतम हो गई, बात तो तय हो गई। अब रहा मोल-भाव करने का, तो वह तो दस रुपये से ज्यादा मेरे पास हैं नहीं।
हर आदमी की कीमत है यहां। यहां बड़े से बड़े राजनेताओं की कीमत है, राष्ट्रपतियों की कीमत है, प्रधानमंत्रियों की कीमत है। हां, जरा बड़ी कीमत है स्वभावतः। पुलिसवाले की बेचारे की उतनी कीमत है जितनी उसकी हैसियत है।
जिनको तुम चरित्रवान कहते हो, यह हो सकता है उनकी कीमत जरा ज्यादा हो
और तुम न चुका सको। मगर चरित्र की कीमत होती है, क्योंकि चरित्र अंतर से आविर्भूत नहीं होता; बाहर से ही थोपा गया है। और बाहर से भी थोपा गया है तो प्रलोभन के आधार पर ही थोपा गया है। तुम्हें कहा गया है कि अगर सच बोलोगे; अगर ईमानदार रहोगे तो स्वर्ग में बड़ा सुख मिलेगा। उस सुख को पाने के लिए तुम सच भी बोल रहे हो; लेकिन अगर कोई सुख देने को यहीं राजी हो जाए, तो फिर तुम सोचोगे कि अब मरने के बाद की बात बाद में देखेंगे, पहले यहां सुख ले लें, और बाद की कौन जान आया है! कोई लौट कर कहता तो नहीं आकर कि बाद में क्या घटता है। हाथ की आधी रोटी खोना कल्पना की पूरी रोटी के लिए--नासमझी है। तुम्हारा गणित तुमसे कहेगा कि राजी हो जाओ; अभी फिलहाल इसको तो निपटाओ, फिर आगे का आगे देखेंगे। और अभी जिंदगी पड़ी है, और पुण्य कर लेंगे। मगर यह अवसर छोड़ना ठीक नहीं।
चरित्र का कोई आधार नहीं होता, स्रोत नहीं होता तुम्हारे भीतर। ऊपर
से टांगा हुआ होता है। जैसे कोई कागजी फूल ले आए और वृक्षों पर लटका दे। शायद पास-पड़ोस के लोगों को धोखा भी हो, लेकिन कागज के फूल, कागज के फूल हैं असली फूल वृक्षों की जड़ों से जुड़े होते हैं।
और यही फर्क है चरित्र और शील में। चरित्र होता है कागजी, आरोपित। शील होता है अंतःस्फूर्त; भीतर से जागा हुआ। जैसे झरने का कलकल-नाद, ऐसे तुम्हारे ध्यान का जो कलकल-नाद है, वही शील है।
कबीर कहते हैंः सील-संतोख! दोनों को एक साथ रखा, क्योंकि जहां शील है वहां संतोष है ही। चरित्रवान जरूरी नहीं है कि संतोषी हो।
अक्सर लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि हम हर तरह से नैतिक जीवन जी रहे हैं, मगर हर जगह अनैतिक लोग मजा लूट रहे हैं। यह कैसा न्याय है! भ्रष्ट लोग

धन पा रहे हैं, पद पा रहे हैं। यह परमात्मा का कैसा न्याय है? इनको संतोष नहीं है अपने चरित्र से। चरित्र से इन्हें कोई रस भी नहीं है। ये चाहते थे चरित्र के साथ इनको पद भी मिले, प्रतिष्ठा भी मिले तो ये मानेंगे कि परमात्मा न्यायशील है। और इन बेईमानों को समझाने के लिए पंडित-पुरोहितों ने रास्ते निकाल लिए हैं, वे कहतेः उसकी दुनिया में देर है, मगर अंधेर नहीं। देर की तरकीब निकाल ली, क्योंकि नहीं तो समझाएं कैसे! यहां दिखाई तो यही पड़ता है कि बेईमान सिर पर बैठ जाते हैं। ईमानदार सब जगह चारों खाने चित्त और बेईमान छाती पर चढ़े हैं। अब कैसे लोगों को समझाएं कि ईमानदार रहो! बेईमानी जीतती मालूम पड़ती है। असत्य जीतता मालूम पड़ता है। सत्य की जगह-जगह हार है। कैसे समझाएं सत्यमेव जयते, कि सत्य की विजय होती है? तो उन्होंने एक तरकीब निकाली, एक फार्मूला निकाला कि देर है, अंधेर नहीं; घबड़ाओ मत। थोड़ी देर लगेगी; इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में, मगर मिलेगा। मगर देर भी क्यों? आग में हाथ डालते हो, अभी जलता है कि देर लगती है? और मजा यह है कि ईमानदारों के लिए ही देर है, बेईमान अभी मजा ले रहे हैं! उनके लिए न देर है न अंधेर है। और क्या पता जो देर कर रहा है, वह आखिर में अंधेर भी करे! और जो यहां जीत रहे हैं, कौन जाने वहां भी जीत जाएं, क्योंकि जीतने की कला उन्हें आ जाएगी। छाती पर बैठने का गणित वे समझ लेंगे। बहुत संभावना तो यही है कि जो तुम्हारे सिर पर यहां बैठे हैं, वे ही लोग तुम्हारे सिर पर स्वर्ग में भी बैठेंगे, अगर कहीं कोई स्वर्ग होगा। क्योंकि तुम्हारी आदत हो जाएगी लोगों को सिर पर ढोने की, उनकी आदत हो जाएगी सिर पर बैठने की। बहुत संभावना तो यही है कि अगर कोई भी दूसरा लोक है तो इसी लोक का सिलसिला होगा। इसी लोक के साथ उसका तारतम्य होगा; वह इससे विपरीत नहीं हो सकता।
इसी में उसकीशृंखला जुड़ी होगी।
मगर ये झूठे चरित्र को बनाए रखने के लिए ये सारी तरकीबें ईजाद करनी पड़ीं।
शील के साथ संतोष होता ही है। शीलवान वही है, जिसके साथ संतोष भी हो।
जो शील से भरा है उसके मन में कभी यह सवाल ही नहीं उठता कि बेईमान जीत रहा है; वह तो जानता है--मैं जीत ही गया हूं। ठीकरे मेरे पास नहीं हैं, न हों। उसे दया आती है जिनके पास ठीकरें हैं उन पर, क्योंकि वह जानता है--असली संपदा मेरी है और ये बेचारे व्यर्थ की चीजों में उलझे हैं और व्यर्थ की चीजों के लिए कितना गंवा रहे हैं!"
रामकृष्ण के पास एक आदमी आया, दस हजार रुपये रामकृष्ण को भेंट करना चाहता था। रामकृष्ण ने कहा कि तू ही इनको रख, तू ही इनको रखने का पात्र है; क्योंकि हम हैं भोगी, तू है त्यागी। वह आदमी तो बहुत चौंका। उसने रामकृष्ण से कहा, आप कह क्या रहे हैं; आप होश में हैं परमहंस देव? मुझ भोगी को त्यागी बता रहे हैं, और आप जैसा त्यागी, अपने को भोगी कह रहा है!"
रामकृष्ण ने कहा कि नहीं, भोगी मैं हूं, क्योंकि मैंने कचरा छोड़ा और रामरस पी रहा हूं। और तुमने रामरस छोड़ा और कचरा छाती से लगाए बैठे हो। त्यागी कौन? त्यागी तुम हो! हीरे छोड़ दिए, कंकड़-पत्थर पकड़े-त्यागी तुम। मैंने तो हीरे पकड़े, कंकड़-पत्थर छोड़े--यह कैसा त्याग! मैं तो भोगी हूं। जिन्होंने जाना है वे यही कहेंगे। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने त्यागा है वे ही जानते हैं भोग का असली अर्थ, भोग का असली राज; क्योंकि उन्होंने ही भोगा है, और बाकी तो सिर्फ भोग की भ्रांति में हैं। बुद्ध ने भोगा, कृष्ण ने भोगा, कबीर ने भोगा, फरीद ने भोगा, नानक ने भोगा; बाकी तुम तो भ्रांति में हो। तुम सब त्यागी हो। तुम असली चीज तो छोड़े हो। पास ही अमृत की धार बह रही है, उसको छोड़े हो और एक गंदे नाले में पानी पी रहे हो, तो त्यागी नहीं तो कौन हो! महात्यागी हो।
जहां शील है वहां एक अपूर्व संतोष होगा। लेकिन शील उठता है भीतर से;
वह ध्यान का परिणाम है।
सील-संतोख ते शब्द जा मुख बसै, ...
कबीर जो ध्यान के लिए शब्द उपयोग करते हैं वह शब्द है--"सबद।" जिसके भीतर राम की धुन अपने आप उठने लगी है, उठानी नहीं पड़ती; जिसके भीतर ओंकार का नाद होने लगा है--उसको "सबद" कहते हैं वे। जिसके भीतर अनाहत बजने लगा।

जिसने सुन लिया परम संगीत। जिसने जीवन की परम संगीतमयता का अनुभव कर लिया। मैं उसको ध्यान कह रहा हूं; वे उसको "सबद" कहते हैं, वह उनका शब्द है।
सील-संतोख ते सब्द जा मुख बसै, संतजन जौहरी सांच मानी।
संतजन ऐसे ही व्यक्ति को सच्चा मानते हैं, बाकी सब झूठे हैं; क्योंकि बाकी सब थोथे हैं, ऊपर-ऊपर रंग लिया है चेहरे को, मुखौटे लगा लिए हैं। होली आई और दिल्ली में एक घटना घटी। एक बड़े नेताजी को--लोग बहुत दिन से फिकर में थे कि होली आए तो मजा चखाएं। होली है इसीलिए कि जिनको तुम गाली नहीं दे सकते--नहीं तो अदालत में मुकदमा चलेगा--उनको तुम होली के दिन गाली दे सकते हो। वह सुविधा है। और तुम देखते हो कि होली पर जो गालियां दी जाती हैं, उन गालियों का नाम है--"कबीर!" क्योंकि कबीर ने ऐसी कुटाई की है, ऐसा सिर फोड़ा है पंडितों का, पुरोहितों का कि "कबीर" शब्द ही एक तलवार की धार हो गया है।
और पकड़ो नेताओं को; और जो साल भर तुम्हारी छाती पर मूंग दलते हैं मलो उनके चेहरों पर कालिख, कोलतार... तो नेताजी को पकड़ लिया लोगों ने और खूब कोलतार मला और आशा रखते थे कि महीने दो महीने भी छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा। शाम को देखने गए कि हालत क्या है। नेताजी बैठे मुस्करा रहे! कोलतार का कोई पता ही नहीं! लोग बड़े चौंके। उन्होंने कहा कि हुआ क्या, इतने जल्दी आपने धो कैसे डाला!
उन्होंने कहा कि तुम नेताओं का राज ही नहीं जानते। वह देखो! ... कोने में मुखौटा पड़ा था, जिस पर कोलतार पोता था।
कोई नेताजी का असली चेहरा होता है! वे तो कई चेहरे रखते हैं--जब जैसी जरूरत हुई। चेहरा बदलते उन्हें देर नहीं लगती, क्षण में बदल लेते हैं। उनका असली चेहरा पकड़ में नहीं आता। अब यह भी कहना पक्का नहीं कि अभी जो चेहरा है वह असली होगा। यह दूसरा मुखौटा हो सकता है। संभावना यही है, क्योंकि असली चेहरा तो केवल संतों के पास होता है।
... संतजन जौहरी सांच मानी।
संतजन असली जौहरी हैं, पारखी हैं। जो मनुष्य को पहचानते हैं उन्होंने
इस बात को आधार बनाया है: सील संतोख तुम्हारे भीतर के सबद से उठें तो तुम सच्चे मनुष्य हुए; तुम पहली बार मनुष्य हुए।
बदन विकसित रहै ख्याल आनंद मैं, अधर मैं मधुर मुसकान बानी।
और तुम्हारा जीवन एक कमल की तरह खिलता रहे। ख्याल आनंद मैं... और सदा भीतर आनंद के फूल खिलते रहें।... अधर है मैं मधुर मुसकान बानी। और तुम्हारा जीवन एक मुस्कराहट हो, तो ही ऐसा संतोष... । मुरदा संतोष नहीं। एक मुरदा संतोष होता है--अंगूर खट्टे वाला संतोष कि लोमड़ी नहीं पहुंच सकी अंगूरों तक, तो यह कह कर चल दी कि अंगूर खट्टे हैं। यही संतोष, तुम्हें दिखाई पड़ेगा अधिक लोगों में। वे कहते हैंः रखा क्या है धन में, क्योंकि पा नहीं सके; रखा क्या है महलों में, क्योंकि पा नहीं सके। अब इस तरह संतोष कर रहे हैं! यह संतोष नहीं हैं। यह चालबाजी है। यह अपने को समझाना है। यह सांत्वना है, संतोष नहीं। संतोष बड़ी और बात है।
संतोष का अर्थ हैः महलों से बड़ा महल पा लिया; हीरों से बड़े हीरे पा लिए; यह जगत जो दे सकता है, उससे बड़ी संपदा अनुभव कर ली, उपलब्ध कर ली--इसलिए संतोष है। इसलिए--नहीं कि अंगूर खट्टे थे।
इस देश में तुम्हें अंगूर खट्टे वाला संतोष बहुत फैला हुआ मिलेगा। क्या करें, लोग दीन-हीन हो गए हैं सदियों से, अब इसी दीन-हीनता को उन्होंने गौरव बना लिया। दीन-हीनता को भी उन्होंने सुंदर शब्द दे दिए हैं--"दरिद्रनारायण।" दरिद्र होना भी जैसे गरिमा की बात हो गई! दरिद्र होने में एक आध्यात्मिकता आ गई। अछूत को अब कहने लगे--"हरिजन।" हरिजन हमने कहा है बुद्धों को और अब अछूत होना काफी है हरिजन होने के लिए। सभी ब्राह्मण भी हरिजन नहीं हैं; कभी-कभार कोई हरिजन होता है।
और अब तो शूद्र होना काफी है हरिजन होने के लिए। हम अच्छे शब्द देने में बड़े होशियार हो गए हैं, बड़े कुशल हो गए हैं! अच्छे शब्द लगा देते हैं।
असलियत को ढांपने के लिए, छिपाने के लिए शब्दों का जाल बिछा देते हैं।

संतोष, सांत्वना, धैर्य, शांति--और सबके पीछे भीतर जलती हुई आग है, विषाद है, पराजय है, विफलता है।
नहीं, यह संतोष कबीर का संतोष नहीं। यह संतोष मेरा संतोष नहीं। संतोष
तो वह, जब तुम्हारे भीतर सहस्रदल कमल खिलें!
बदन विकसित रहै ख्याल आनंद मैं, अधर मैं मधुर मुसकान बानी।
सांच गैले नहीं झूठ बोलै नहीं, सुरत मैं सुमति सोई श्रेष्ठ ज्ञानी।
सांच गेलै नहीं झूठ बोलै नहीं, ...
सत्य को छोड़े नहीं, झूठ बोले नहीं।
... सुरत मैं सुमति सोई स्रेष्ठ ज्ञानी।
और जिसकी अंतर्प्रज्ञा में परमात्मा का स्मरण सतत बहता रहे, वही है ज्ञानी; वेद का ज्ञाता नहीं, कुरान का ज्ञाता नहीं। उपनिषद और गीता कंठस्थ हों, इससे कुछ नहीं होता। भीतर सुरति बहती रहे। और जब भीतर सुरति बहती है, स्मृति बहती है, तो परमात्मा सब जगह दिखाई पड़ने लगता है।

तुम छिपो चाहे जहां प्रिय, मैं तुम्हें पहचान लूंगी।

कुमुदिनी के शशि बनो, अथवा
कमल के रवि बनो तुम;
तुम उषा के प्राणवल्लभ, या
निशा की छवि बनो तुम।
दिवस हो या रात्रि हो, पर मैं तुम्हें तो जान लूंगी।

तुम्हीं में अरमान मेरे
हो तुम्हीं धन-मान मेरे,
हैं तुम्हारे ही लिए
दिन-रात नंदित गान मेरे।
मैं तुम्ही में घुल गई प्रिय, और क्या वरदान लूंगी।
तुम छिपो चाहे जहां प्रिय, मैं तुम्हें पहचान लूंगी।

भीतर अंतर्धारा बहने लगे उसके स्मरण की, तो वृक्षों से झांकती हुई धूप और छाया उसकी ही माया है। फिर भीतर खिले फूल कि बाहर खिले फूल, सब उसके ही फूल हैं; सब खिलावट उसकी है। फिर भीतर उठे गंध या बाहर उठे गंध, सब उसकी ही सुगंध है। यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर है। फिर उसी के स्वर्ण-कलश चारों तरफ चमकने लगते हैं। फिर तुम जहां झुके वहां काबा। फिर तुम जहां बैठे शांत और मौन होकर, वहां काशी। फिर नहीं तुम्हें किसी तीर्थ-यात्रा पर जाने की कोई जरूरत है; तुम जहां हो वहीं तीर्थ है।
सांच गेलै नहीं झूठ बोलै नहीं, ...
मगर ध्यान रखना, इस भेद को सदा ध्यान रखना इन पूरे सूत्रों में--कि एक
तो है चरित्रगत सत्य, कि सत्य बोलूंगा, चाहे कुछ भी हो जाए। भीतर झूठ उठ रहा है और तुम सत्य बोल रहे हो कबीर इसकी बात नहीं कर रहे हैं। कबीर कह रहे हैंः भीतर से ही सत्य उठे; बोलना न पड़े, थोपना न पड़े, आरोपण न करना पड़े। और जब भीतर से ही सत्य उठे तो झूठ तुम कैसे बोलोगे? बोलना भी चाहो तो न बोल सकोगे। बोलने जाओगे, तो भी सत्य ही निकल जाएगा।
कहत हौं ज्ञान पुकारि कै सबन सों, देत उपदेस दिल दर्द जानी।
और ऐसा जो ज्ञानी है, जिसके भीतर सुरति बहने लगी है, जिसके भीतर सत्य
का आविर्भाव हुआ है, झूठ जिसके भीतर से हट गया है; जैसे अंधकार हट जाए दीये के जलने पर, ऐसे सत्य के जलने पर झूठ हट जाता है--वह बोलता है तो किसी शाब्दिक, सैद्धांतिक, बौद्धिक विवाद को पैदा करने के लिए नहीं; किसी को हिंदू, मुसलमान, ईसाई बनाने के लिए नहीं; किसी पंथ, किसी संप्रदाय के निर्माण के लिए नहीं। अगर वह बोलता है तो सिर्फ इसलिए कि तुम्हारे दिल के दर्द को पहचानता है, तुम्हारी पीड़ा को पहचानता है। और उसके पास तुम्हारी पीड़ा के लिए, तुम्हारी प्यास के लिए कुछ है। उसकी उपलब्धि है कि तुम्हारी

पीड़ा मिटा दे, कि तुम्हारी प्यास बुझा दे। उसने जो पाया है, उसे बांटने के लिए बोलता है।
ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है, ...
जहां ध्यान है, वहां ज्ञान है। ध्यान है दीये की ज्योति और ज्ञान है दीये का प्रकाश। और जहां ध्यान है, जहां ज्ञान है, वहां स्वभावतः तुम्हारे बाहर भी प्रकाश विकीर्णित होने लगेगा। जिस घर में दीया जलेगा, उसकी खिड़की से, द्वार-दरवाजों से भी रोशनी बाहर पहुंचने लगेगी। वही आचरण है।
ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है, ...
और एक बात ख्याल रखनाः जिस व्यक्ति के भीतर भी ध्यान से अनुभव पैदा होता है, उसके विपरीत जीवन नहीं जीया जा सकता। फिर चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। गर्दन कटे तो कट जाए। मंसूर की कट गई, लेकिन "अनलहक" का उदघोष बंद न हुआ। मंसूर के गुरु जुन्नैद ने कहा भीः मंसूर, इसको अपने भीतर ही रख। यह घोषणा कि मैं ईश्वर हूं, कि मैं सत्य हूं। तुझे मुश्किल में डालेगी। मुझे भी मुश्किल में डालेगी। इसको अपने भीतर ही रख। इसको बोल मत।
मंसूर कहता कि जरूर, आप जैसी आज्ञा देते हैं वैसा ही करूंगा। और फिर मस्ती आ जाती, फिर खुमारी लग जाती और फिर चिल्ला बैठता--अनलहक! जुन्नैद ने बहुत बार कहा कि देख तू आश्वासन देता है और तोड़ देता है। मंसूर ने कहा कि आश्वासन जो देता है वह नहीं तोड़ता--आश्वासन मैं देता हूं, लेकिन मैं ही नहीं रह जाता। जब वह परमात्मा मुझ पर सवार हो जाता है--तो फिर मैं नहीं रह जाता। फिर वही बोलता है। इसलिए फिर जो होगा होगा।
मंसूर को सूली लगी, लेकिन आखिरी दम तक जब तक श्वास रही, अनलहक का उदघोष होता रहा; मैं ईश्वर हूं, इसकी घोषणा मंसूर करता रहा। असत्य बोला नहीं जा सकता। सत्य जान लिया जाए तो सत्य ही बोला जा सकता है।
तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि कहां दरवाजा है और कहां दीवाल, तो तुम दरवाजे
से ही निकलोगे, दीवाल से कैसे निकलोगे? हां, अंधा आदमी बेचारा कभी-कभी दीवाल से टकरा सकता है। मगर आंख वाला! वह दरवाजे से निकलता है।
ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है, ...
क्यों रहनी के लिए "सूर" कहा कबीर ने? क्योंकि ज्ञान तो तुम्हारे भीतर होता है, किसी को उसका पता भी नहीं चलता; लेकिन जब तुम अपने ज्ञान को जीवंत करते हो, जब तुम अपने ज्ञान को जीने लगते हो, तो औरों को पता लगेगा और अड़चन शुरू होगी। इसलिए ज्ञान से जो पूर होता है, उसको एक न एक दिन रहनी में "सूर" भी होना पड़ता है। उसको बड़ा साहस चाहिए, अदम्य साहस चाहिए; क्योंकि अंधों की दुनिया में आंख वाला आदमी होना, इससे बड़ा और कोई उपद्रव नहीं है। पागलों के बीच पागल न होना, इससे बड़ा और कोई खतरा नहीं है।
और यहां चारों तरफ अंधों की भीड़ है, पागलों की जमातें हैं। इसलिए तुमने बुद्धों के साथ हमेशा दुर्व्यवहार किया। फिर पीछे तुम पूजा करते हो सदियों तक; वह पूजा केवल तुम्हारे अपराध-भाव के कारण है। क्योंकि बुद्धों से तुमने जो दुर्व्यवहार किया है, उससे तुम्हारे मन में ग्लानि होती है। जब वे विदा हो जाते हैं तो ग्लानि जोर से तुम्हें पकड़ लेती है। फिर तुम पूजा करते हो।
बुद्ध ने कहा था मेरी मूर्ति मत बनाना। आज दुनिया में जितनी बुद्ध की मूर्तियां हैं, उतनी किसी और की नहीं। क्या हुआ? क्यों लोगों ने मूर्तियां बनाईं? बुद्ध के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उस पाप का प्रक्षालन कर रहे हैं। उस अपराध-भाव से पूजा उठ रही है। यह पूजा भी झूठी है। यह सिर्फ अपने अपराध-भाव को पूरा करने के लिए है। यह अपने ही सामने अपने आप की प्रतिमा को सुंदर कर लेने का उपाय है--कि देखो हम कितने भक्त, कितने प्रार्थना से भरे हुए, कितने पूजा से भरे हुए! यह भुलाने की कोशिश है।
अगर जीसस को आज दुनिया में मानने वालों की सर्वाधिक भीड़ है, तो उसका कारण जीसस को लगी सूली है। सूली से बड़ा अपराध-भाव पैदा हो गया। हमने मारा जीसस को तो अब कैसे पश्चात्ताप करें, कैसे प्रायश्चित्त करें? ... पूजा करो, अर्चना करो, फूल चढ़ाओ! तुम्हारी सारी पूजा झूठी है, क्योंकि अपराध से उठी है, आनंद से नहीं। आनंद तो तुम्हारे पास है ही नहीं।
ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है, दया की भक्ति दिल माहिं ठानी।

जिसके भीतर ज्ञान भरता है, उसके आचरण में साहस आ जाता है। आना ही पड़ेगा, क्योंकि अब उसे सत्य को जीना पड़ता है; अब कोई उपाय नहीं, कोई विकल्प नहीं। भीतर सत्य है, सत्य बाहर आकर रहेगा।
दया की भक्ति दिल मांहि ठानी...
और अब उसकी एक ही भक्ति है, वह है करुणा। वह भगवान के मंदिर में पूजा करने नहीं जाता। वह तो अपनी करुणा लुटाता है, अपना प्रेम लुटाता है। उसकी करुणा के कारण जहां-जहां पीड़ा है, जहां-जहां लोग भटके हैं, जहां-जहां लोग अटके हैं, उन्हें सुलझाता है।
ओर ते छोर लौं एक रस रहत है, ऐस जन जगत में बिरलै प्रानी।
ऐसा व्यक्ति ओर से छोर तक एक होता है, अखंड; यह उसकी पहचान है। उसमें टुकड़े नहीं होते, खंड-खंड नहीं होता। तुम खंड-खंड हो। तुम एक भीड़ हो। तुम्हारे भीतर बहुत लोग छिपे हैं। सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ; तुम्हारा कुछ भरोसा नहीं है। अभी कुछ कहोगे, कल बदल जाओगे। तुम्हारे आश्वासन सब झूठे हैं। तुम किसी स्त्री से कहोगे कि मैं तुझे जीवन भर प्रेम करूंगा और तुम इसका भी पक्का नहीं कर सकते कि कल भी उसे प्रेम करोगे; जीवन भर की तो बात और।
मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री से कह रहा था कि तुझसे सुंदर कोई स्त्री
इस दुनिया में नहीं है। मैं तुझे जीवन भर प्रेम करूंगा। जीवन भर ही क्या, अगर कोई और भी आगे जीवन हुआ तो भी तुझे ही प्रेम करूंगा।
स्वभावतः स्त्रियां ऐसी बातों से प्रसन्न हो जाती हैं। वह स्त्री बहुत प्रसन्न हो गई। मुल्ला ने कहाः ठहर, बहुत प्रसन्न मत हो जा, क्योंकि यह मेरी आदत है। ऐसा मैं कई स्त्रियों से कह चुका और आगे भी कहूंगा।"
एक और घटना मैंने सुनी है कि मुल्ला एक स्त्री से प्रार्थना किया कि मुझसे विवाह कर ले। उस स्त्री ने साफ इनकार कर दिया। मुल्ला ने कहा कि देख, अगर मुझे इनकार किया, अभी मर जाऊंगा। आत्महत्या कर लूंगा।
स्त्री थोड़ी डरी। उसने कहाः क्या यह बात सच है?
मुल्ला ने कहाः सच है! यह मेरी पुरानी आदत है। यह कोई आज की बात नहीं है। जब भी कोई स्त्री मुझे इनकार करती है, मैं तत्क्षण आत्महत्या करने की बात करता हूं।
तुम्हारे भीतर तुम जरा गौर करना। तुम्हारे आश्वासन, तुम्हारे भरोसे, तुम्हारे वचन, क्या मूल्य रखते हैं? एक क्षण के बाद के लिए भी तुम क्या वचन दे सकते हो? तुम्हारे भीतर एक स्वर ही अभी नहीं है; अभी एक व्यक्ति का जन्म ही नहीं हुआ है। अभी तुम विभक्त हो, खंड-खंड हो। एक बाजार हो, एक भीड़ हो।
ओर ते छोर लौं एक रस रहत है, ...
जिसके भीतर ध्यान का दीया जलता है, उस रोशनी में एकता पैदा होती है।
... ऐस जन जगत मैं बिरलै प्रानी।
बहुत मुश्किल से ऐसा व्यक्ति जगत में मिलेगा, जो ओर-छोर एक है।
लट खुलती जाती निशि की शशि ने आनन दिखलाया,
तारों की आंखें चमकीं रजनी ने जाल बिछाया।

निद्रा की साड़ी ओढ़े दुनिया ने दुख भुलाया।
बेहोशी ने स्वप्नों का है सुंदर कुंज खिलाया।

निशि की अलसित पलकों में क्या नये स्वप्न हैं जागे
बजते हैं तार हृदय के, क्या होने वाला आगे?

इन किरणों की डोरी से ऊपर को कौन चढ़ाता?
सौरभ-सा आज हृदय उड़ अनजान दिशा को जाता।

सागर की लहरें, मानो, सोने की तरणी लातीं।
किस छवि की शुभ्र पताका मुझको उस पार बुलाती।

कुछ ऐसा अनुभव होता--हूं विकल जिसे पाने को,

वह स्वयं आ रहा मुझको अपने घर ले जाने को।

तुम तैयार भर हो जाओ; तुम एक भर हो जाओ, अखंड--और यह घटना घटेगी।

कुछ ऐसा अनुभव होता--हूं विकल जिसे पाने को,
वह स्वयं आ रहा मुझको अपने घर ले जाने को।

फिर परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता, वह स्वयं ही तुम्हें लेने आ जाता है अपने स्वर्ण-रथ पर। वह तुम्हें खोजता आता है। उसे आना ही पड़ेगा।
ठग्ग बटमार संसार में भरि रहे, हंस की चाल कहं काग जानी।
और इस जगत में इस तरह के विरले लोग पहचाने नहीं जा सकते, क्योंकि यहां
की मुसीबत एक है कि यहां ठगों से दुनिया भरी है। यहां कौओं की बहुत भीड़ है। यहां कोई हंस आ जाए तो कौए पहले तो उसे मान ही नहीं सकते। पहले तो कौए कोशिश करेंगे कि कुछ गड़बड़ हो गई, कुछ प्रकृति की भूल हो गई। रंग दो इसको भी कोलतार से। और कौओं की ही अदालतें हैं और कौओं के ही जज हैं और कौओं की ही पुलिस और कौओं के ही न्याय, और कौओं के ही नेता, और कौओं की सारी दुनिया है! हंस अकेला पड़ जाता है, उसकी सुने कौन! यहां राजनीति है, कूटनीति है; धर्म कहां? यहां चालबाजी है, बेईमानी है, पाखंड है; सत्य कहां?
मालिक को विश्वास नहीं है
तो मैं दोनों गाएं घर पर ला कर ही
दुह दिया करूंगा;
साहब, दोनों बड़ी मरकही,
जरा, पास कोई मत आए,
मुंह अंधियारे लाना होगा,
अपना नौकर खड़ा करा दें,
दूध नपा लें।

बड़े सवेरे ग्वाला लेकर गाएं आता,
टुन-टुन टुन-टुन घंटी बजती,
पड़े रजाई में
जाड़े की सुखद सुबह में अच्छा लगता,
फिर मटकी में धारों के फिर-फिर गिरने का शब्द मधुर कानों को लगता।
अपने संस्कारों में हम अब भी किसान हैं, उससे जो संबद्ध हमें प्यारा लगता है,
फिर होता संतोष दूध अब शुद्ध
मुझे औ" मेरे लड़कों को मिलता है।

एक रात कुछ तुकें तोड़ते
और जोड़ते सुबह हो गई;
सोचा, खुद ही बाहर जाकर दूध दुहा लूं। जो देखा हैरत अंगेज था।

ग्वाला, गाएं नहीं, बैल की जोड़ी लाता,
कुछ लंबे कंबल उनकी पीठों पर डाले,
दूध मिला पानी भी अपने घर से लाता,
औ" घुटनों में दाब दोहनी
हाथ चलाने का केवल अभिनय भर करता,
मुंह से "षिर-षिर" स्वर निकालता,
औ" पी-पी कर शुद्ध दूध हम सपरिवार दिन-प्रतिदिन अंदर ज्यादा ताकत अनुभव करते।
राजनीति के कैसे-कैसे रूप विचरते!

यहां सब तरफ पाखंड है। इसलिए सत्य सूली पर चढ़ाया जाता रहा। सत्य को बरदाश्त करना मुश्किल है, क्योंकि बहुतों के न्यस्त स्वार्थों को चोट पहुंचती है।
चपल और चतुर हैं बनै बहु चकिने, बात मैं ठीक पै कपट ठानी।
बड़े चतुर हो गए हैं लोग, बड़े कुशल हो गए हैं लोग। बात में बड़े होशियार
हो गए हैं लोग और भीतर सिर्फ कपट है, धोखा है।
बहुत दिनों से जमे हुए थे एक मेहमान
अंततः
तंग आकर एक दिन यूं बोले यजमान--
"महोदय जी, आपकी याद करते होंगे
आपके परिवार जन
बच्चे बेचैन होंगे,
बीबी तड़फती होगी मन ही मन
बेचारी
विरह में जलती होगी आप बिन
घर छोड़े आपके हो चुके हैं--
एक महीना और सात दिन!"

पलंग पर पैर पसारते हुए मेहमान ने कहा--
"अरे वाह! आपने अच्छी याद दिलाई,
मैं तो भूल ही गया था भाई!
कल ही मैं घर एक तार कर दूंगा
बीबी को, बच्चों को
--सबको बुला लूंगा।"

कहा तिन सौं कहों दया जिनके नहीं, घात बहुतें करैं बकुल ध्यानी।
क्या कहा जाए उनके संबंध में--कबीर कहते हैं--जिनके जीवन में प्रेम नहीं, करुणा नहीं। और इस तरह के लोग बहुत हानि कर रहे हैं। "बकुल ध्यानी" उनको कबीर कह रहे हैं। देखा है बगुले को ध्यान करते? बगुला कैसा खड़ा होता है! हिलता नहीं, डुलता नहीं। योगियों ने तो उसका एक आसन ही बना लिया-- बगुलासन। है भी; योगी की तरह खड़ा हो जाता है बगुला, एक टांग पर खड़ा रहता है! हिले-डुले, खतरा है। हिले-डुले, पानी हिल-डुल जाए। पानी हिल-डुल जाए, मछलियां चौंक जाएं। तो उसे खड़े रहना पड़ता है बिल्कुल योग साधे। जब कुछ भी नहीं हिलता, कुछ भी नहीं डुलता, मछलियां आश्वस्त होकर आस-पास घूमने लगती हैं। बगुला उसी की प्रतीक्षा करता है, फिर झपट्टा मार देता है।
कबीर ने कहा है: इस तरह के बकुल ध्यानी बहुत घात कर रहे हैं, जिन्हें ध्यान का कुछ भी पता नहीं। ऐसे मैं न मालूम कितने महात्माओं को जानता हूं, जिन्होंने न कभी ध्यान किया न कभी करने की सोची, मगर ध्यान दूसरों को करवा रहे, ध्यान दूसरों को समझा रहे हैं। इस तरह के लोग जितना नुकसान पहुंचाते हैं उतना नुकसान राजनैतिक भी नहीं पहुंचा सकते।
बकुल ध्यानियों से सावधान रहना। ये शास्त्रों को पढ़ लेते हैं और शास्त्रों की व्याख्या करते रहते हैं। ये शब्दों की खाल निकालने में बड़े कुशल हो जाते हैं।
दुर्मती जीव की दुबिध छूटे नहीं, जन्म जन्मांत पड़ नरक खानी।
ध्यान रहे, इस तरह की दुर्मति से अगर जिए तो दुविधा छूटेगी नहीं और जन्मों-जन्मों तक दुख पाओगे, नरकों में पड़ोगे।
काग कूबुद्धि सूबुद्धि पावै कहां, कठिन कठोर बिकराल बानी।
कौआ सुबुद्धि पाए कहां! वह बैठता नहीं हंसों के पास। हंसों की बात ही उसे बड़ी कठिन-कठोर लगती है। कौआ चाहता है यह सुनना कि कोई कहे कि "अहा, कैसे सुंदर तुम्हारे बोल हैं! कैसा संगीतपूर्ण तुम्हारा जीवन है!" कौआ चाहता है कोई कहे कि तुमने कोयल को मात दे दी। लेकिन कोई प्रबुद्ध पुरुष ऐसा तो नहीं कह सकता। वह तो सत्य को कहेगा, चाहे सत्य कितना ही कड़वा हो। वह तो सत्य के अतिरिक्त असत्य नहीं कह सकता है, चाहे असत्य कितना ही तुम्हें

मधुर क्यों न लगे, असत्य की तुम्हारी आकांक्षा कितनी ही क्यों न हो। तुम खुशामद सुनना चाहते हो और कबीर जैसे लोग तुम्हारे सिर पर लट्ठ मार देते हैं। इसलिए कौए पहुंच ही नहीं पाते सुनने हंसों के पास। कौए अपनी कांव-कांव में ही लगे रहते हैं।
अगिन के पुंज हैं सितलता तन नहीं, अमृत और विष दोऊ एक सानी।
समझो। तुम्हें परमात्मा ने सब कुछ दिया है। देह भी दी है, आत्मा भी दी है। अमृत भी दिया है, विष भी दिया है। दोनों को सानो मत, दोनों को अलग-अलग करो। अमृत को पीओ। जहर में मिला कर मत अमृत पीओ, क्योंकि एक जीवन का महानियम है कि अश्रेष्ठ की एक बूंद भी श्रेष्ठ के पूरे सागर को नष्ट कर देती है। श्रेष्ठ कोमल होता है। एक पत्थर मार दो गुलाब के फूल पर, पत्थर का कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, गुलाब का फूल नष्ट हो जाएगा, क्योंकि गुलाब का फूल एक श्रेष्ठता के जगत में जीता है। पत्थर एक निम्न अस्तित्व है, कठोर है। गुलाब कोमल है।
ऐसे ही संतों के वचन हैं। उनकी आलोचना बड़ी आसानी से की जा सकती है। उन
पर पत्थर फेंके जा सकते हैं; वे गुलाब के फूल हैं। और गुलाब के फूल जल्दी ही नष्ट भी हो जाते हैं। पत्थर पड़े रहेंगे और तुम यह मत सोचना कि पत्थर जीत गए। पत्थर क्या जीतेंगे! गुलाब के फूल मिट सकते हैं, मगर हारते नहीं; फिर फिर लौट आते हैं; आते ही चले जाएंगे। जब तक हर पत्थर गुलाब न हो जाएगा, गुलाब के फूल आते ही रहेंगे।
कहा साखी कहे सुमति जागा नहीं, सांच की चाल बिन धूर धानी।
और ऐसे लोग भी तुकबंदियां करते हैं और सोचते हैं "साखी" कह रहे हैं। "साखी" कबीर का अपना शब्द है। साखी शब्द को समझना; वह साक्षी का रूप है। जिसको साक्षी का अनुभव हुआ हो, उसके वचन का नाम--"साखी।" जिसने अपने भीतर साक्षी को जान लिया हो--ध्यान की वह अंतिम शुद्धता, कि मैं केवल साक्षीमात्र हूं--ऐसा जिसने जान लिया हो उसके बोल का नाम साखी। तुकबंदियों से साखियां नहीं बनतीं।
ये कबीर के जो वचन हैं, ये साखियां हैं। हालांकि तुम्हें कवि मिल जाएंगे, जो इनसे अच्छे वचन लिख देंगे। इन वचनों में कुछ बड़ी कविता नहीं है। ये वचन तो साधारण हैं--कविता की दृष्टि से। मगर साक्षी हैं ये, क्योंकि कबीर के अनुभव की गवाही देते हैं।
और लोग हैं कि तुकबंदियां बना रहे हैं। तुकबंद कवि हो जाते हैं। दुनिया से ऋषि खो गए, तुकबंद बचे हैं। ऋषि और कवि में यही भेद है। कवि वही कहता है जो कहने में मधुर लगता है और ऋषि वही कहता है जो सत्य है। मधुर लगे, कठोर लगे, यह बात अप्रासंगिक है।
सुकृति और सत्त की चाल सांची सही, काग बक अधम की कौन खानी।
मत फिकर करना कौओं की और मत फिकर करना बगुलों की; इन दो से बचना। कौए कहते हैं कबीर पंडितों को, क्योंकि वे कांव-कांव लगाए रखते हैं; और बगुले कहते हैं कबीर झूठे महात्माओं को, क्योंकि वे एक टांग पर खड़े हैं। नजर मछलियों पर लगी है, लेकिन योग-साधन कर लिया है, योगासन साधे खड़े हैं। माला जप रहे हैं।
कबीर की भाषा में कौए हैं--पंडित, और बगुले हैं--तथाकथित महात्मा; इन दोनों से बचना। अगर इन दोनों से बच सको तो सत्य तक पहुंच सकते हो। और फिर सत्य की चाल सीधी है, साफ है। ये दो भटकाते हैं। इन दो से सावधान हो जाना। कहै कबीर कोऊ सुघर जन जौहरी, सदा सावधान पियो नीर छानी।
हां, मिल जाए अगर कभी कोई जौहरी--जिसने जाना हो, पहचाना हो, देखा हो, जीआ हो परमात्मा को, जो सदा सावधानी से उसके अमृत को पी रहा हो--तो फिर बैठना उसके सत्संग में, फिर डूब जाना उसके साथ, तल्लीन हो जाना। फिर उसके संगीत में अपने को मिटा देना, गला देना। फिर उसके सत्संग में अपने को बचाना मत। फिर रत्ती भर कंजूसी न करना। फिर दूर दर्शक की तरह नहीं; साधक की तरह उसके पास बैठना। तो एक दिन तुम्हारे जीवन में भी यह घटना घट सकेगी-- छारि पर्यौ आतम मतवारा।
पीवत रामरस करत बिचारा।।
बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा।

लै कसाब रस राम चुवावा।।
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा।
मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।।
कहैं कबीर फाबी मतवारी।
पीवत रामरस लगी खुमारी।।

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
छठवां प्रवचन

सत्संग

पहला प्रश्नः ओशो, आज बड़ी मुद्दत के बाद आपके सन्मुख होने का अवसर मिला। एक अजब अनुभव से गुजरा। ऐसा लगता था जैसे आंखों के सामने प्रकाश ही प्रकाश है। और बड़ी अजीब सी सुगंध से नासापुट भर गए थे। रीढ़ में अंदर पसीना सा जा रहा था। मैं कहां था, खबर नहीं है। शब्दों का बस संगीत था--पहली बार, अर्थ न था।... आनंद, प्रभु आनंद!

स्वभाव! सन्मुख होना ही सत्संग है। लेकिन सन्मुख होना सिर्फ भौतिक अर्थों में कोई सार्थकता नहीं रखता। ऐसे तो कोई सामने बैठ सकता है और फिर भी उसकी पीठ हो। अगर मन में विचारों का ऊहापोह चल रहा है, तो सन्मुख होकर भी तुम विमुख ही रहोगे। मन में ऊहापोह समाप्त हो गए हों, विचारों की तरंगें न हों, मन एक शांत झील हो गया हो--तो फिर तुम कहीं भी हो, सन्मुख हो। सन्मुखता एक आंतरिक अवस्था है। बैठते-बैठते सत्संग में कभी घटती है। तुम्हारे घटाए तो घट नहीं सकती, कि तुम चाहो तो घट जाए। क्योंकि तुम्हारी चाह भी बाधा है। तुम्हारी चाह भी एक विचार है, एक चेष्टा है। और जहां विचार है, चेष्टा है, वहीं विमुखता है। इसलिए अनायास ही घटती है। धैर्य चाहिए। बैठते रहे सत्संग में, उठते रहे सत्संग में कोई जल्दी न की, कोई अपेक्षा न की--तो किसी न किसी दिन तुम अचानक अपने को सन्मुखता में पाओगे। और तब यह घड़ी घेर लेगी तुम्हें। यह अपूर्व अनुभव होगा। क्योंकि जब तुम सदगुरु के सन्मुख होते हो तो तुम भी मिट जाते हो, सदगुरु भी मिट जाता है।
इस आधारभूत बात को ठीक से समझ लेना। जब तक मैं का भाव है, तभी तक तू भी है। मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक शिष्य हैं तभी तक गुरु भी हैं। गुरु की तरफ से तो न गुरु है न शिष्य है। शिष्य की तरफ से शिष्य भी है और गुरु भी है। जैसे ही शिष्य-भाव मिटा, जैसे ही तुम शांत हो गए, इतनी भी अस्मिता न रही, इतना भी अहंकार न रहा कि मैं हूं, कि मैं शिष्य हूं, कि मैं धार्मिक हूं, कि संन्यासी हूं, कि सत्य का खोजी हूं, अन्वेषी हूं--ऐसा कोई भाव ही न रहा; एक निर्भावदशा हो गई--उसी क्षण गुरु भी मिट गया। न तुम रहे न गुरु रहा। तब अपूर्व प्रकाश का अनुभव होगा। वह प्रकाश मेरा नहीं है, वह प्रकाश तुम्हारा नहीं है; वह प्रकाश परमात्मा का है। जहां मैं नहीं, जहां तू नहीं वहां जो शेष रह जाता है उसी का नाम परमात्मा है--उस शून्य का, उस सन्नाटे का!
वही हुआ। तुम कहते होः "आज बड़ी मुद्दत के बाद आपके सन्मुख होने का अवसर मिला।"
मुद्दत के बाद भी मिल जाए तो जल्दी है। मुद्दत के बाद भी मिल जाए तो सौभाग्य है। क्योंकि लोग इतने अंधे हैं, आते भी हैं मगर आते कहां हैं! बहरे हैं, सुनते हैं मगर सुनते कहां! न सुनते हैं, न देखते हैं; क्योंकि भीतर इतना उपद्रव चल रहा है, भीतर इतना शोरगुल मचा है। इस शोरगुल के कारण ही हम चूक रहे हैं। नहीं तो वृक्षों के पास बैठ जाओगे, वहां भी यही प्रकाश प्रकट होगा। जहां बैठ जाओगे शांत होकर, मौन होकर, जहां मैं मिटा वहीं प्रकाश प्रकट हुआ। यह मैं की मृत्यु पर अनुभव होता है।
सन्मुख होने का इतना ही अर्थ है कि शिष्य का मैं मिट जाए। विमुख होने
का अर्थ है--मैं सघन। फिर पीठ हो गुरु की तरफ या मुंह हो गुरु की तरफ कुछ भेद नहीं पड़ता। पास रहो कि हजार मील दूर रहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम कहते होः एक अजब अनुभव गुजरा।
अजब लगेगा, क्योंकि कभी पहले हुआ नहीं। अन्यथा बिल्कुल स्वाभाविक है, नैसर्गिक है। मगर जैसे अंधे आदमी को अचानक आंख मिले तो प्रकाश का अनुभव बड़ा अजब अनुभव होगा; हालांकि जिनके पास आंखें हैं वे कहेंगे, इसमें अजब क्या, इसमें गजब क्या? अंधे को आंख मिलें और फूलों के रंग दिखें और इंद्रधनुष सतरंगा और तितलियों के पंख! अजब अनुभव होगा। आंख वालों से कहेगा कि बड़ा अजब अनुभव हुआ; वे कहेंगे, इसमें अजब क्या! फूलों में रंग

होते हैं, इंद्रधनुष सतरंगा होता है, तितलियों के पर परमात्मा अपनी तूलिका से खूब रंगता है! इसमें अजब कुछ भी नहीं। मगर अंधा भी ठीक कह रहा है, गलत नहीं कह रहा है। ऐसा पहले नहीं हुआ था। उसके पास ऐसी कोई स्मृति नहीं है जिसके आधार पर इसे समझ सके।
अजब का इतना ही अर्थ होता है कि हमारा अतीत कोई कुंजी नहीं देता, हमारा अतीत पृष्ठभूमि नहीं देता; हमारे अतीत से कोई संदर्भ नहीं उठता; हमारा अतीत एकदम अवाक रह जाता है, मौन रह जाता है, बोल भी नहीं पाता। एक क्षण को आश्चर्यचकित, विमुग्ध, ठगे-ठगे हम रह जाते हैं। अवाक। वाणी खो जाती है। शब्द खो जाते हैं, ज्ञान खो जाता है, सूझ-बूझ खो जाती है। एक रहस्य किसी अज्ञात लोक से उतर कर हमें घेर लेता है। हम रहस्य में नहा जाते हैं। यही परमात्मा के अनुभव की शुरुआत है स्वभाव! परमात्मा ने पहली बार दस्तक दी तुम्हारे द्वार पर।
निश्चित ही परमात्मा को हमने पहले जाना नहीं। उसकी दस्तक भी अपरिचित है। अगर सामने भी परमात्मा खड़ा हो जाए तो हम एकदम से पहचान न सकेंगे। इसीलिए तो सदगुरु की जरूरत है, कि जब परमात्मा तुम्हारे सामने खड़ा हो तो तुम्हें झकझोरे और कहे कि भर आंख देख लो, जी भर पी लो! इसी की तलाश थी जन्मों-जन्मों से। जिसको खोजते थे, आज द्वार पर खड़ा है। कहीं ऐसा न हो कि आई शुभ घड़ी चूक जाए। भर लो झोली, भर लो प्राण! यह जो सुगंध बरस रही है, यह सदा के लिए तुम्हारी हो सकती है।
लेकिन प्रत्यभिज्ञा दो तरह से हो सकती हैः या तो तुम्हारी स्मृति में कोई अनुभव हो तो तुम पहचान कर लो; या किसी और, पहचान जिसको हो, उसके कहे पर भरोसा कर लो, श्रद्धा कर लो। इसीलिए धर्म श्रद्धा के बिना नहीं जी सकता।
विज्ञान बिना संदेह के नहीं जी सकता, धर्म बिना श्रद्धा के नहीं जी सकता।
उनकी विधियां विपरीत हैं। विज्ञान को जीना हो तो संदेह करना ही होगा। विज्ञान की पूरी कला संदेह की कला है। संदेह को निखारो, उसको धार दो। जितना संदेह कर सकते हो उतनी ही तुम्हारे भीतर वैज्ञानिक प्रतिभा विकसित होगी। कुछ भी मान न लो, परीक्षण करो, प्रयोग करो हजार-हजार तरह से जांचो, परखो। जब कोई उपाय ही न रह जाए इनकार करने का तब मानना। और तब भी मत कहना कि सत्य है यह; इतना ही कहना परिकल्पना है, हाइपोथिसिस है। इतना ही कहना कि अब तक जो मैंने जांचा-परखा है, उसमें ठीक लग रहा है; लेकिन कल हो सकता है और नये तथ्यों का पता चले और गलत हो जाए। इसलिए कामचलाऊ है। विज्ञान के सभी सिद्धांत कामचलाऊ हैं। अभी तक के लिए सच हैं, कल का कुछ भरोसा नहीं। विज्ञान कहता है कि सब तरफ से जांचना; फिकर इसकी ही करना कि किसी तरह गलत हो जाए। जब गलत हो ही न सके तो मान लेना। मजबूरी में मानना।
और धर्म कहता है बिल्कुल उलटी बात। धर्म कहता हैः श्रद्धा के बिना एक कदम आगे न बढ़ा जा सकेगा। तुम्हारे अनुभव में तो परमात्मा की कोई पहचान नहीं है। अगर तुम इनकार करते गए तो यह पहचान कभी होगी भी नहीं। किसी पहचान करने वाले से दोस्ती बना लो। किसी पहचान करने वाले का हाथ पकड़ लो। किसी की पहचान हो गई हो, उसके साथ अपना तारतम्य जोड़ लो। यही शिष्यत्व है। उसके साथ संदेह करोगे, विचार करोगे, तर्क करोगे, विवाद करोगे--दूर-दूर रहोगे फिर, फासला बना रहेगा। उसके साथ तो प्रेम ही हो सकता है।
श्रद्धा प्रेम की ही सघनता है--इतनी सघनता कि सदगुरु अगर दिन को रात कहे तो भी शिष्य मानने को राजी हो जाता है। ऐसा नहीं कि मानने के लिए चेष्टा करता है। चेष्टा की, तो उसका अर्थ है कि भीतर अभी संदेह था। चेष्टा करता ही नहीं।
तिब्बत में एक बहुत महत्वपूर्ण कथा है। मारपा अपने गुरु के पास गया। मारपा एक बहुत अदभुत संत हुआ। मारपा नया-नया था, लेकिन श्रद्धा उसकी प्रगाढ़ थी। ऐसी प्रगाढ़ कि एक दिन गुरु ने कहा कि श्रद्धा अगर पूरी हो तो आदमी जल पर भी चल सकता है। गुरु तो समझा ही रहा था। लेकिन मारपा गया और नदी पर चल गया। और शिष्यों ने देखा मारपा को नदी पर चलते देख कर ईर्ष्या जगी। उन्होंने भी कोशिश की, किनारे पर डुबकी खा गए। मारपा नया-नया था, और शिष्य पुराने थे। और उन्होंने गुरु को आकर कहा कि मारपा नदी पर चल रहा है। गुरु भी थोड़ा हैरान हुआ। उसने सोचा भी नहीं था कि कोई चलेगा; वह खुद भी कभी चला

नहीं था। यह तो शास्त्र को समझा रहा था। फिर एक दिन यह हुआ कि गुरु समझा रहा था कि श्रद्धा अगर पूर्ण हो और कोई पर्वत से भी कूद पड़े तो खरोंच नहीं लगती। मारपा गया और कूद गया। और खरोंच न लगी। और शिष्यों ने भी सोचा, हिम्मत की, लेकिन देखी गहराई; पानी पर तो चलने की कोशिश भी की थी कि किनारे डूब गए, वापस लौट आए थे; यहां से तो लौटने का भी उपाय नहीं था, यहां से गिरे तो गए। छोटे-मोठे पत्थरों पर से कूद कर देखा, उसी में हाथ-पैर टूट गए। लौट कर गुरु को कहा। गुरु को अहंकार जगा। गुरु कोई गुरु न रहा होगा। थोथे गुरु! सौ में निन्यानबे थोथे ही होते हैं। जहां असली सिक्के होते हैं वहां नकली सिक्के भी चलेंगे ही। असली होते हैं, इसलिए तो नकली चलते हैं। असली न हों तो नकली चल भी नहीं सकते।
और नकली सिक्कों की एक खूबी होती है--अर्थशास्त्र का नियम है--कि नकली सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। तुम्हारी जेब में अगर दस रुपये का एक नकली नोट है और दस रुपये का एक असली नोट है तो पहले तुम नकली को चलाओगे। स्वभावतः इससे जितनी जल्दी झंझट मिटे उतना बेहतर। पान वाले को पकड़ाओगे, सब्जी वाले को पकड़ाओगे, जहां भी चल जाए चला दोगे। असली को बचाओगे, नकली को चलाओगे। और अगर सभी के पास नकली रुपये हैं तो बाजार में नकली रुपये ही चलेंगे, असली तिजोड़ियों में बंद हो जाएंगे।
और यही अकसर सदगुरुओं के संबंध में होता है। असली सदगुरु चल नहीं पाते।
नकली सदगुरु खूब चलते हैं। नकली सदगुरु इसलिए चल जाता है कि वह तुम्हारी आकांक्षाओं की तृप्ति का भरोसा दिलाता है, आश्वासन दिलाता है। वह तुम्हें सांत्वना देता है, संक्रांति नहीं; वह तुम्हें संतोष देता है, रूपांतरण नहीं; वह तुम्हारी मलहम-पट्टी करता है; तुम्हारे जीवन को नये आयाम नहीं देता।
ऐसा ही यह मारपा का गुरु रहा होगा। उसे अहंकार जगा कि जब मेरा शिष्य नदी पर चल गया, पहाड़ से कूद गया, तो मैं तो चल ही सकता हूं। पूछा उन्होंने मारपा को कि तू कैसे चला। उसने कहा कि कुछ नहीं, बस आपका नाम लिया और चल गया। गुरु के अहंकार की तो कोई सीमा न रही कि मेरा नाम जब इतना काम कर सकता है तो मैं क्या नहीं कर सकता! गुरु ने शिष्यों को इकट्ठा किया और कहाः आओ नदी पर! और गुरु चला कि पहले ही कदम पर डुबकी खा गया। पहाड़ से कूदने की तो फिर उसने कोशिश ही नहीं की।
गुरु को डुबकी खाते देख कर मारपा बड़ा हैरान हुआ। पूछा गुरु से, इसका राज क्या है? गुरु मारपा के चरणों पर गिर पड़ा और उसने कहाः "मुझे माफ करो।" मेरा अपना कोई अनुभव नहीं है। मैं तो शास्त्र समझा रहा था। लेकिन तुम्हारी श्रद्धा अपूर्व है, कि तुमने झूठे पर भी श्रद्धा की तो भी काम कर गई।"
श्रद्धा का रसायन बड़ा गहरा है। झूठे पर भी श्रद्धा काम कर सकती है, क्योंकि सवाल झूठ और सच का नहीं है सवाल श्रद्धा का है। श्रद्धा तुम्हारे भीतर एक आत्मबल जगाती है, एक ऊर्जा का स्फुरण होता है तो कभी-कभी झूठे गुरुओं के पास भी सच्ची श्रद्धा ने भवसागर पार कर लिया है। और अकसर सच्चे गुरुओं के पास भी श्रद्धा न हो तो लोग पत्थरों की तरह बैठे रहे हैं; उनके प्राणों में कोई वीणा नहीं बजी, कोई गीत नहीं जगा।
स्वभाव, तुम्हारे भीतर धीरे-धीरे श्रद्धा का जन्म हो रहा है। मैं रोज श्रद्धा में नये-नये पत्ते लगते देख रहा हूं। तुम धीरे-धीरे मिटे जा रहे हो। जितना मिटोगे उतना ही प्रकाश अनुभव होगा। जहां मिटे, कि प्रकाश ही प्रकाश है। अहंकार अंधेरा है और निरहंकारिता प्रकाश है। अहंकार दुर्गंध है और निर-अहंकारिता सुगंध है।
तो इस भ्रांति में मत पड़ना कि मेरा प्रकाश था, जो तुमने जाना। इस भ्रांति में मत पड़ना कि वह मेरी सुगंध थी, जो तुमने जानी। वहां कहां मेरा, कहां तेरा! वहां सुगंध है; न मैं है न तू है। वहां प्रकाश है, न मैं है न तू है।
तुम कहते होः "ऐसा लगता था जैसे आंखों के सामने प्रकाश ही प्रकाश है।"

अब तुम किसी झूठे गुरु से जाकर कहोगे तो वह कहेगाः "हां, वह मेरा प्रकाश था--वह मेरी समाधि का, मेरे योग-बल का!" अगर कोई कहे वह मेरा प्रकाश था, तो समझ लेना कि यह जगह रुकने की नहीं है; यहां से हट जाना। क्योंकि जहां मेरा और मैं है वहां तुम मिट न सकोगे। वहां तुम्हारा तू भी जिंदा रहेगा, सूक्ष्म भाव से जिंदा रहेगा।
तुम कहते होः "और एक बड़ी अजीब सी सुगंध से नासापुट भर गए।"
पहली बार जब अनुभव होता है तो आश्चर्य-विमुग्ध कर जाता है, चकित कर जाता है, चौंका जाता है।
"रीढ़ में अंदर पसीना सा आ रहा था।"
जब तुम्हारे भीतर प्रकाश भरेगा, ऊर्जा उठेगी तो रीढ़ पर यह अनुभव हो सकता है। क्योंकि रीढ़ तुम्हारे मस्तिष्क से जुड़ी है। रीढ़ और मस्तिष्क अलग-अलग नहीं हैं। वैज्ञानिक तो कहते हैंः मस्तिष्क रीढ़ का ही फूल है। जैसे वृक्ष में फूल लगता है, ऐसे रीढ़ के ही ऊपर जाकर मस्तिष्क लगा है। मस्तिष्क रीढ़ का ही एक विकसित रूप है। रीढ़ और मस्तिष्क एक हीशृंखला में बंधे हैं।
इसलिए जैसे ही तुम्हारे भीतर मस्तिष्क में अहंकार-शून्यता पैदा होगी, मैं-भाव मिटेगा, विचार क्षण भर को भी ठहर जाएंगे--वैसे ही रीढ़ में कोई सोई ऊर्जा जगने लगेगी। उसको ही हमने कुंडलिनी कहा है। वह बड़ी उत्तप्त ऊर्जा है। लगेगा पसीना-पसीना हो गए। लेकिन बड़ा प्रीतिकर लगेगा वह अनुभव भी। और वह पसीना भी बहुत शीतल कर जाएगा। वह कोई साधारण पसीना नहीं है। पहले तो साधारण ही लगेगा, क्योंकि हम साधारण पसीने से ही परिचित हैं, और किसी तरह का पसीना तो हमने जाना नहीं।
जब मोहम्मद को पहली बार परमात्मा का अनुभव हुआ, तो वे भागे हुए घर आए
और कंबल ओढ़ कर सो गए। उन्होंने पत्नी से कहाः और कंबल जितने घर में हों, मेरे ऊपर डाल दे। मुझे लगता है बुखार है। पसीना-पसीना हुआ जा रहा हूं। पत्नी ने उनके ऊपर कंबल पर कंबल डाल दिए। वे कंप रहे हैं और पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं। पत्नी ने पूछा कि आप भले-चंगे घर से गए थे, अभी थोड़ी देर पहले ही घर से गए थे। अचानक ऐसा बड़ा बुखार कैसे आ गया?
मोहम्मद ने कहाः तू पूछती है तो मैं तुझे कहता हूं। मगर किसी और को मत बताना। मैं पहाड़ी पर जाकर बैठा था ध्यान करने, कि आवाज आई--बोल! गुनगुना! पढ़!, मैं बहुत घबड़ाया। आवाज बाहर से भी आती लगती थी और भीतर से भी आती लगती थी। जैसे बाहर और भीतर एक हो गए थे! कोई मेरे अंतस्तल से बोल रहा था और वही आकाश से भी बोल रहा था। और मैं तो बेपढ़ा-लिखा हूं, तो मैंने कहा, मैं पढ़ूं क्या खाक! मैं तो बेपढ़ा-लिखा हूं! लेकिन फिर आवाज आई कि तू फिकर मत कर, जब मैं साथ हूं तो लंगड़े पर्वत चढ़ जाते हैं, अंधे रोशनी देख लेते हैं। नहीं जो पढ़े हैं वे पढ़ने लगते हैं। नहीं जिनके कंठ हैं उनसे गीत फूट पड़ते हैं। तू गा, गुनगुना, पढ़! और कुछ हुआ कि मैं गुनगुनाने लगा। और ऐसी अदभुत ऋचाएं उतरने लगीं, जो मेरे बस के बाहर हैं, जो मेरी नहीं हैं।
ऐसे कुरान का जन्म हुआ। कुरान का इतना ही अर्थ होता है--कुरान शब्द का अर्थ होता है--पढ़।
मोहम्मद ने अपनी पत्नी से कहाः किसी और को मत कहना। या तो मैं पागल हो गया हूं या कवि हो गया हूं; दो में से कुछ एक हो गया है। और एक बात पक्की है कि जो हुआ है वह मेरे वश के बाहर है, मेरी सामर्थ्य के बाहर है।
मोहम्मद की पत्नी ही मोहम्मद की पहली शिष्या थी। उसने कहा कि नहीं; घबड़ाने की कोई बात नहीं, यह बुखार नहीं है। उम्र में भी बड़ी थी। मोहम्मद से अनुभवी भी थी। मोहम्मद छब्बीस वर्ष के थे, पत्नी चालीस वर्ष की थी। उसने कहा कि कुछ अनूठा हुआ है, कुछ ईश्वरीय हुआ है। यह अवस्था दिव्य भाव की है, यह समाधि की है। तुम्हारे भीतर से परमात्मा गुनगुनाया है। तुम उसकी बांसुरी बन गए हो। घबड़ाओ मत। उठो! और जो आज्ञा हो उसका पालन करो।
ऐसा ही पसीना तुम्हें स्वभाव, आ गया होगा। घबड़ाना मत। कभी और भी ज्यादा आ सकता है। कभी तो बिल्कुल ऐसा लग सकता है कि जैसे एक सौ दस डिग्री बुखार है। ऐसी प्रज्वलित अग्नि भीतर उठती है, तुम्हारे ही प्राणों में सोए हुए अंगारे सारी राख झाड़ देते हैं। ऐसे उत्तप्त हो उठते हो तुम! धीरे-

धीरे फिर इस उत्ताप को भी सहने की क्षमता आ जाती है। इसको भी आत्मसात कर लेने का गुण आ जाता है। फिर इसका उठना बंद हो जाता है।
कहते होः "मैं कहां था, खबर नहीं है।"
तुम थे ही नहीं। होते तो खबर होती। कहते हो कि शब्दों का बस संगीत था-- पहली बार अर्थ न था। वही मुझे सुनने का ठीक-ठीक ढंग है। जब तुम मुझे ऐसे सुन सको, जैसे कोई पहाड़ी झरने का कल कल नाद सुनता है या हवाओं के झोंकों का गुजरना वृक्षों से, या पक्षियों का गीत, या दूर से आती कोयल की आवाज--ऐसे जब तुम मुझे सुन सकोगे... । क्योंकि जब तक अर्थ खोजने की इच्छा बनी रहती है तब तक तुम दूर बने रहते हो; सुन रहे हो, लेकिन भीतर तुम सोच रहे हो कि ठीक है या गलत है; मेरे विचार से मेल खाता कि नहीं खाता; मैं जो अब तक मानता रहा हूं उसके साथ बैठता कि नहीं बैठता। जब तक तुम इस हिसाब में पड़े हो... अर्थ का और क्या अर्थ होता है? अर्थ का यही अर्थ होता है कि तुम अपने साथ तारतम्य बिठाने की कोशिश कर रहे हो; अपने अतीत, अपने मन के साथ जोड़-तोड़ बिठा रहे हो। ... तब तक तुम सुनोगे तो जरूर, लेकिन चूक जाओगे।
सत्संग का वह ढंग नहीं। सत्संग तो पागलों की जमात है। यह तो मतवालों
की बात है। सुना नहीं कबीर ने कल कहा; कि कबीर तो कलाल है, शराब बेचने वाला है! और यह कबीर का सत्संग तो शराबखाना है।
सभी सत्संग मधुशालाएं हैं। मंदिर-मस्जिदों से उनका क्या लेना-देना! मंदिर-मस्जिद तो होशियार लोग चलाते हैं, चालाक लोग चलाते हैं। संतों के पास मधुशालाएं निर्मित होती हैं। वहां पियक्कड़ इकट्ठे होते हैं। वहां लोग सुनते हैं। अर्थ की चिंता किसको। वहां पीते हैं। आम खाते हैं, गुठलियां नहीं गिनते।

गायक मेरी उलझी वीणा,
कैसे अरे बजा जाते हो?

मैंने चुप-चुप सपने पाले,
चुप-चुप उर अरमान सम्हाले,
पर जीवन-रहस्य को तुम ही,
आकर सदा बजा जाते हो।

दृग में घिर-घिर बादल आते, दृश्य सामने के छिप जाते, नीर भरी पुतली में छलिया,
रह-रह तुम्हीं लजा जाते हो।

मधु-पीड़ा यह उर का स्पंदन,
यह अतीत की सुख कर उलझन,
अंतर्यामी अंतर में तुम,
धड़कन बन कर छा जाते हो।

परमात्मा अर्थ नहीं है, अनुभव है; शब्द नहीं है, शून्य है।

गायक मेरी उलझी वीणा,
कैसे अरे बजा जाते हो?

तुम हो एक उलझी वीणा। जन्मों-जन्मों से तुमने अपने तार उलझा रखे हैं। तुम सुलझाओगे तो और उलझ जाओगे। तुम ही तो उलझाने वाले हो, सुलझाओगे तुम कैसे? तुम तो रख दो अपनी वीणा उसके सामने।
गुरु तो बहाना है, निमित्त है। उसके बहाने तुम परमात्मा के सामने अपनी वीणा रख देते हो। कहते हो कि मैं तो बजाने की बहुत कोशिश कर चुका, सिवाय विसंगीत के कुछ भी पैदा नहीं होता। तार टूट जाते हैं, सब तार उलझ गए

हैं; कुछ ठीक-ठिकाना नहीं है। इस वीणा से संगीत पैदा भी हो सकता है, इसकी संभावना भी छोड़ चुका हूं। अब तुम ही बजाओ।

गायक मेरी उलझी वीणा,
कैसे अरे बजा जाते हो?

और तब वे अपूर्व क्षण आने लगते हैं। जब उसकी अंगुलियां, अदृश्य अंगुलियां तुम्हारी वीणा से अपूर्व संगीत को पैदा कर जाती हैं। वह अर्थ नहीं है, संगीत है।
संगीत में कोई अर्थ होता है? संगीत में जो अर्थ खोजने गया, वह भूल में
पड़ जाएगा। संगीत तो पीओ, जीओ, नाचो, गुनगुनाओ। संगीत से भरपूरित हो जाओ। मैं जो तुम्हें दे रहा हूं, वह संगीत है, सिद्धांत नहीं।

मैंने चुप-चुप सपने पाले,
चुप-चुप उर अरमान सम्हाले,
पर जीवन-रहस्य को तुम ही,
आ कर सदा बजा जाते हो।

कितना ही तुम उपाय करो, तुम्हारी बुद्धि से जीवन के रहस्य को जानने की कोई विधि नहीं है, कोई द्वार नहीं है। जितना तुम उपाय करोगे, उतनी ही मुश्किल हो जाएगी।
ईसप की कहानी है सेंटीपीट के संबंध में। एक शतपदी, सौ पैर वाला जानवर चला जा रहा है। सदा से चलता रहा है। एक खरगोश ने उसे देखा! और उसने कहाः चाचा! एक बात मुझे हमेशा बड़ी जिज्ञासा और कुतूहल से भर देती है कि सौ पैर हैं, कौन सा पहले उठाना, कौन सा पीछे उठाना, कैसे सम्हाल लेते हो? न लड़खड़ाते, न उलझ जाते। और सौ पैर! मैं तो कल्पना ही करता हूं तो घबड़ा जाता हूं, कि नंबर एक उठाऊं कि नंबर दो कि नंबर तीन, फिर कौन सा किसके बाद! सौ का हिसाब!
शतपदी ने कहाः मैंने कभी सोचा नहीं! सोचता हूं, उत्तर देता हूं। और सम्हल कर शतपदी चला और लड़खड़ा कर गिर पड़ा। उठना चाहा तो फिर गिर पड़ा। खरगोश को उसने बड़े तर्रा कर देखा और कहाः इस तरह से गलत जिज्ञासा कभी किसी और से मत करना। अब तक मैं चलता रहा जन्म से, कभी यह झंझट उठी ही न थी। अब मैं भी मुश्किल में पड़ गया हूं कि कौन पहले कौन पीछे! सौ की संख्या मुझे भी कहां आती हैं, वैसे भी मैं कभी स्कूल में भरती हुआ नहीं।
कहा कि भैया, तूने जो मेरे साथ किया सो ठीक, मैं किसी तरह अपना गुजार बसर कर लूंगा, मगर अब किसी और शतपदी से इस तरह की जिज्ञासा मत करना। नहीं तो हमारा वंश ही नष्ट हो जाएगा।
तुमसे कोई पूछ ले, कैसे श्वास लेते हो? तुम भी ऐसी ही मुश्किल में पड़ जाओगे। हालांकि अब तक लेते रहे हो। और तुमसे कोई पूछ ले, कैसे खून को भीतर चलाते हो? खून दौड़ रहा है, तीव्र गति से दौड़ रहा है। और कैसे भोजन को पचा लेते हो! और कैसे रोटी की, सब्जी की... किस कीमिया से रक्त बन जाता है, हड्डी-मांस-मज्जा बन जाती है? तुमसे कोई पूछे तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, कभी सोचा नहीं; यह सब हो रहा है।
जीवन का जो भी गहन है, सब हो रहा है। जीवन की गहनता के लिए कोई उत्तर नहीं है। और जिस दिन तुम समग्र जीवन को इसी तरह स्वीकार कर लेते हो तो तुम फिर कबीर का वचन कह सकते हो--होनी होय सो होय।

मैंने चुप-चुप सपने पाले,
चुप-चुप कर अरमान सम्हाले,
पर जीवन-रहस्य को तुम ही,
आकर सदा बजा जाते हो।

जीवन-रहस्य तो एक संगीत की तरह है, जो परमात्मा बजाता है; एक सिद्धांत
की तरह नहीं है जो गणित की तरह ब्लैक-बोर्ड पर समझाया जाता है। एक संगीत की तरह है जो वीणा पर बजाया जाता है, कि बांसुरी पर बजाया जाता है।
ऐसी ही एक प्रीतिपूर्ण घड़ी से स्वभाव तुम गुजरे। यह घड़ी बार-बार आएगी, मगर कुछ बातें ख्याल रखना। इसे लाना मत चाहना, नहीं तो रुक जाएगी। अब इसकी प्रतीक्षा मत करना। यह प्रीतिकर थी, मधुर थी। यह तुम्हें मस्त कर गई। स्वभावतः मन कहेगाः और-और, फिर-फिर हो। बस तुमने चाहा कि फिर-फिर हो, कि अड़चन हो जाएगी। तुम्हारे किए हुई भी नहीं थी, तुम्हारे चाहे होगी भी नहीं। हो गई, धन्यवाद दो परमात्मा को और भूल जाओ।
कहते हैं न, नेकी कर और कुएं में डाल! नेकी कर के कुएं में डालो या न डालो, मगर जब भी ऐसे अनुभव हो, अनुभव करो और कुएं में डाल। पीछे लौट कर देखना ही मत। और कभी भी यह इच्छा, आकांक्षा, अभीप्सा मत जगाना कि अब फिर ऐसा हो; जो कि स्वाभाविक है। अगर हो ऐसा तो मैं तुम्हें कुछ दोष न दे सकूंगा। यह निरंतर का अनुभव है, रोज का अनुभव है। पहली बार जब किसी को ध्यान होता है या ऐसे अपूर्व अनुभव होते हैं, तो स्वभावतः उसके मन में यह वासना जगती है कि अब रोज-रोज ऐसा हो, अब फिर-फिर ऐसा हो। बस वही वासना बाधा बन जाती है। क्योंकि पहली बार जब हुआ था ऐसा, तब कोई वासना नहीं थी; तब तो अकस्मात; आई थी कोई हवा और उड़ा ले गई थी तुम्हें! आई थी कोई गंध और डुबा गई थी तुम्हें। वर्षा हो गई थी। लेकिन अब तो तुम एक नई शर्त लगा कर बैठे हो-- होनी चाहिए! जहां इस तरह का दावा है, आग्रह है--होनी चाहिए--वहीं बाधा पड़ जाती है।
इसलिए पहली बात ख्याल रखना, दुबारा ऐसा हो, इसकी आकांक्षा मत रखना। होगा बहुत बार होगा, और-और गहरा होगा। अभी तो कुछ भी नहीं हुआ। यह तो पहली बूंदा-बांदी है। अभी तो मूसलाधार वर्षा होगी। लेकिन अगर इसी की तुमने आकांक्षा की तो बूंदा-बांदी भी बंद हो जाएगी।
और इसको बौद्धिक विश्लेषण का विषय भी मत बनाना। इस पर बैठ कर मत सोचना
कि क्या हुआ, क्यों हुआ, कैसे हुआ, नहीं तो शतपदी की हालत में पड़ जाओगे। और उलझ जाओगे। जो एक घटना हुई थी, जिससे कि बहुत कुछ सुलझ सकता था, उस घटना को भी अगर बौद्धिक विचारणा बना लिया तो वह घटना भी उलझा जाएगी सुलझाने की बजाय। योग प्रीतम का यह गीत तुम्हारे लिए हैः

आंखों के अंसुवन में
ओंठों की पुलकन में
ढुलक-ढुलक जाए मेरा प्यार रे!
प्राणों का पंछी तो
उड़ा-उड़ा जाए रे!
सांसों का सरगम तो
छिड़ा-छिड़ा जाए रे!
खुशियां हैं मन में अपार रे! प्रीतम की बगियन में
प्यार भरी बतियन में
झरती है रस की फुहार रे!
बांहों में सारा
आकाश समा जाए रे!
सांसों में सारा
वातास समा जाए रे!
तन मन हो जाए बेसम्भार रे!
जयरा की गुनगुन में
हियरा की धड़कन में
उसका ही बज रहा सितार रे!

बजने दो। उसका सितार है! तुम विश्लेषण में मत पड़ना। बरसने दो, उसका अमृत है। तुम किसी केमिस्ट से जाकर इसका विश्लेषण मत करवाना। चुपचाप पीए

जाओ। और-और की मांग मत उठाना, नहीं तो मन वापिस आ जाता है पीछे के दरवाजे से। और जहां मन आया वहीं हमारा संबंध परमात्मा से टूट जाता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मुझ पर ऐसे जैन संस्कार पड़े हैं कि मन की सूक्ष्म वैचारिक अवस्था यानी आत्मा। और आप उसी मन को मारने के लिए, छोड़ने के लिए कहते हैं। मैं समझ नहीं पाता, दुविधा में पड़ जाता हूं। कृपया प्रकाश डालें।

मदन लाल दुधेड़िया! संस्कार धूल है। बाहर से पड़ता है। संस्कार से कोई संक्रांति नहीं होती। जैन घर में पैदा हुए तो जैन संस्कार पड़ जाएगा और मुसलमान घर में पैदा होते तो मुसलमान संस्कार पड़ जाता, और ईसाई घर में बड़े होते तो ईसाई संस्कार पड़ जाता और अगर कम्युनिस्ट रूस में पैदा होते तो कम्युनिजम का संस्कार पड़ जाता। अभी महावीर का गुणगान गाते हो; मुसलमान घर में होते, मोहम्मद का गुणगान गाते। और कम्युनिस्ट घर में होते तो मार्क्स का गुणगान गाते।
संस्कार बाहर से पड़ते हैं। संस्कारों से मुक्त होना है। संस्कारों से
जब तक जकड़े हो, चाहे वे कितने ही शुभ क्यों न मालूम होते हों, तब तक तुम बंधन से पार न हो सकोगे।
संस्कार न शुभ हैं, न अशुभ। संस्कार मात्र जंजीरे हैं।
तो जब मैं तुमसे कहता हूं मन से मुक्त हो जाओ, तो मैं यही कह रहा हूं कि संस्कारों से मुक्त हो जाओ। मन और है क्या? संस्कारों का जोड़ है। हिंदू मन, जैन मन, बौद्ध मन। ये मन के भेद हैं। लेकिन क्या तुम्हें मन के पार कोई चीज समझ में नहीं आती? तुम्हारे भीतर कोई नहीं है क्या, जो मन को भी देख सकता हो? एक विचार उठा, क्या तुम उसे देख नहीं सकते?
मन के पर्दे पर विचार उठता है। मगर देखने वाला दर्शक तो भिन्न है, द्रष्टा तो भिन्न है। तुम फिल्म देखने जाते हो; पर्दे पर बहुत सी तस्वीरें आती हैं और जाती हैं और कई बार तुम भूल ही जाते हो, तल्लीन हो जाते हो, ऐसे तल्लीन हो जाते हो, कि लगता है जैसे तुम नाटक के हिस्से हो। लोग नाटक का भाग ही बन जाते हैं। तस्वीरें कुछ भी नहीं हैं; तुम्हें भलीभांति मालूम है कि वहां पर्दे पर कुछ भी नहीं है, कोरा पर्दा है, धूप-छांव का खेल है। मगर उसमें भी खो जाते हो। अगर कोई करुण दृश्य आ जाए तो लोगों की आंखों से आंसू टपक जाते हैं। चुपचाप अपना रूमाल निकाल कर आंखें पोंछ लेते हैं कि कोई और पड़ोसी न देख ले। वह तो भला हो फिल्म वालों का कि कमरे में अंधेरा रखते हैं। जरा कोई सनसनीखेज दृश्य आ गया किसी हत्यारे का पीछा पुलिस की कार कर रही है हत्यारा भी भागा जा रहा है पहाड़ों के गोल रास्तों पर और आवाजों की आवाजें, कारों की आवाजें और कारों के पीछे कारें! तुम जो टिके बैठे थे कुर्सी से एकदम रीढ़ सीधी कर के बैठ जाते हो। तुम्हारी कुंडलिनी अगर कभी सीधी होती है तो बस ऐसे समय में सीधी होती है, अन्यथा कभी सीधी नहीं होती। श्वास रुक जाती है, आंखों का झपकना रुक जाता है।
फिल्म देखने से आंखें खराब नहीं होतीं; आंखें खराब होती हैं झपकना बंद होने से। नवीनतम संशोधन यही कहते हैं। फिल्म तो तुम जितनी चाहो देख सकते हो, अगर आंखें झपकते रहो तो कोई तुम्हारी आंखों को नुकसान नहीं होगा। लेकिन आंखें झपकने की फुर्सत किसको है! आंखें झपकने का ख्याल कौन रखे! और फिर ऐसे चमत्कारी दृश्य सामने घट रहे हों!
एक देहाती पहली दफा फिल्म देखने गया था। पहला शो खत्म हो गया, वह टिकट लेकर फिर आकर बैठ गया। दूसरा शो भी खत्म हो गया, वह टिकट लेकर फिर तीसरे शो के लिए आ गया। मैनेजर ने पूछा कि दादा! आज क्या जाने का इरादा नहीं है? बात क्या है? मैटिनी भी देखा, पहला शो भी देखा, अब दूसरे शो में भी आ गए।
उस देहाती ने कहा कि मैं जाऊंगा नहीं जब तक कि असली चीज न देख लूं। असली चीज क्या है?
फिल्म में एक दृश्य आता है कि हेमामालिनी एक झील में स्नान करने को उतर रही है। उसने करीब-करीब सब कपड़े उतार दिए, बस आखिरी कपड़ा उतारने को है कि तभी एक रेलगाड़ी छक-छक-छक करती गुजर जाती है। जब तक रेलगाड़ी गुजरती है तब

तक हेमामालिनी झील में उतर जाती है। रेलगाड़ी गुजर जाने के बाद वह झील में तैर रही है। वह जो आखिरी कपड़े का उतारना है, वह रेलगाड़ी की वजह से... ।
तो उस देहाती ने कहा कि कभी तो लेट होगी! हम बिना देखे असली दृश्य जाएंगे नहीं।
अब ऐसी अवस्था में कौन आंखें झपके! इधर तुम आंख झपको उधर कुछ से कुछ हो जाए। लोग आंखें फाड़ कर बैठे रहते हैं। अमरीका जैसे देशों में जहां टेलीविजन बहुत जोर से फैल गया, रोग की तरह फैल गया; क्योंकि अमरीकी औसतन पांच घंटे टेलीविजन देख रहा है। खास कर छोटे बच्चे। आंखों का कैंसर टेलीविजन से शुरू हो रहा है। और कारण है--आंख का नहीं झपकना। आंख झपकती है अकारण नहीं, उसकी जरूरत है। हर बार आंख झपकती है, धूल पोंछ जाती है; आंख को ताजा कर जाती है। हर बार आंख झपकती है, आंख को गीला कर जाती है। उतना ही गीलापन आंख की ताजगी के लिए जरूरी है; नहीं तो आंख सूखने लगती है। आंख सूखी रहे पांच घंटे तक तो खतरा है। आंख के तंतु बड़े सूक्ष्म हैं। वे सूखने लगेंगे; उनके सूखने से कैंसर भी हो सकता है।
लेकिन पर्दे पर दृश्यों को देख कर हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि भूल
ही जाते हैं कि दृश्य हैं; मान ही लेते हैं कि हम इसी के हिस्से हैं।
बस वैसी ही मदनलाल, हमारे चित्त की अवस्था है। चित्त भी एक पर्दा है।
उस पर विचार चल रहे, वासनाएं चल रहीं, कल्पनाएं चल रही हैं, स्मृतियां चल रहीं--फिल्में चल रही हैं। तुम कौन हो? तुम द्रष्टा हो! तुम मन नहीं हो। इसलिए जिसने तुम से कहा हो कि मन की सूक्ष्म वैचारिक अवस्था यानी आत्मा, उसने बिल्कुल ही गलत कहा है। आत्मा मन की सूक्ष्म वैचारिक अवस्था नहीं है। आत्मा है चैतन्य! आत्मा है साक्षीभाव। आत्मा है केवल साक्षीभाव। और मन है सारी स्मृतियों का, कल्पनाओं का वासनाओं का मेला। तुम द्रष्टा हो! तुम्हारे द्रष्टा का तुम्हें स्मरण आ जाए, बस क्रांति होनी शुरू हो गई। मगर भूल जाते हैं लोग।
ईश्वर चंद्र विद्यासागर बहुत बड़े पंडित हुए। एक नाटक देखने गए थे। और नाटक में एक लफंगा है, वह बड़ी छेड़-छाड़ कर रहा है, एक स्त्री को बहुत परेशान कर रहा है। ईश्वर चंद्र-भले आदमी, नैतिक आदमी, साधु आदमी; उनकी बर्दाश्त के बाहर हुआ जा रहा है। वह यह भूल ही गए... । पंडित बड़े हैं, मगर यह भूल ही गए कि नाटक ही है। एक रात जंगल में वह स्त्री अपने भटक गए बेटे को खोजने निकली, तो वह लफंगा उसका पीछा कर लेता है। आकाश में बादल घिरे हैं, और बिजलियां चमक रही हैं। रात का अंधेरा और जंगल का एकांत। और वह दुष्ट उस स्त्री को पकड़ लेता है उसकी साड़ी खींचने लगता है।
बस फिर उनके बरदाश्त के बाहर हो गया। सामने की पंक्ति में बैठे थे; मारी छलांग, निकाल लिया जूता, लगे पीटने उस लफंगे को! उनसे ज्यादा समझदारी तो उस अभिनेता ने की। उसने जूता उनका अपने सिर पर रख लिया और कहा जनता से कि मेरे जीवन में मुझे बहुत पुरस्कार मिले हैं, मगर इससे बड़ा पुरस्कार नहीं मिला। मैंने भी नहीं सोचा था कि मेरा अभिनय इतना कुशल हो सकता है कि ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसा महापंडित अभिनय को सत्य समझ लेगा।
तुम ईश्वर चंद्र की हालत सोचो। बेचारे बड़े झेंपे हुए नीचे उतरे। बात
तो सच थी। अभिनेता ने जूता वापिस नहीं लौटाया। उसने कहाः इसको तो मैं सम्हाल कर रखूंगा, यह तो इनाम है। कहते हैं उसके बच्चों के पास वह जूता अब भी उसके घर में सुरक्षित है। है भी बड़ा इनाम!
पंडित होने से कोई ज्ञानी नहीं होता। ईश्वर चंद्र बड़े पंडित थे, मगर ज्ञानी नहीं कहे जा सकते। भूल ही गए। अभिनय को सत्य मान लिया।
बस यही हमारी भी भूल है। मन के पर्दे पर चलते विचारों को इतना सत्य मान लेते हैं; और उनके साथ अपने को जोड़ लेते हैं--फिर तुम जैन हो गए, अगर जैन विचारों के संस्कार दौड़ रहे हैं मन पर! जैन फिल्म देख रहे तो जैन हो गए। हिंदू फिल्म देख रहे, हिंदू हो गए। और मुसलमान फिल्म देखी तो मुसलमान हो गए। हालांकि न तुम हिंदू हो, न जैन हो, न मुसलमान हो। तुम जागरूकता हो। तुम होश हो। तुम ध्यान हो; मन नहीं।
इसलिए मेरी बातें सुन कर तुम्हें थोड़ी दुविधा तो हुई होगी; क्योंकि तुम्हारा संस्कार... और मेरी बातें विपरीत पड़ रही हैं। मैं कह रहा हूं कि

मन से मुक्त हो जाओ। फिर न केवल तुम्हारा मन ही अभिनय हो जाता है; यह सारा जगत अभिनय हो जाता है, लीला हो जाता है। फिर तुम इस सारे जगत को एक द्रष्टा की तरह देखते हो। फिर तुम जगत में भी हो सकते हो और जगत से मुक्त भी।
यही मेरे संन्यास की धारणा हैः जगत में और जगत के नहीं; कमलवत। नहीं
तो बस भूल जाते हो। चार पैसे मिल गए कि एकदम अकड़ आ जाती है। चार पैसे, उनसे तुम्हारा ऐसा जोड़ हो जाता है कि पैर जमीन पर नहीं पड़ते। कहीं रखते हो पैर, कहीं पड़ते हैं पैर। फिर ये चार पैसे कल चले जाएंगे, फिर बहुत पछताओगे, फिर अकड़ टूट जाएगी। किसी पद पर पहुंच गए, किसी कुर्सी पर पहुंच गए; बैठे हो कुर्सी पर, लेकिन भूल ही जाते हो कि यह कुर्सी की ऊंचाई तुम्हारी ऊंचाई नहीं है। कल कोई और कुर्सी पर चढ़ बैठेगा। और जब तुम बैठे हो तभी कोई तुम्हारी टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है। जिसके हाथ में जो आ गया... । क्योंकि कुर्सी पर कोई शांति से तो किसी को बैठने नहीं देता, औरों को भी तो बैठना है! कोई तुम्हीं एक अकेले थोड़े ही माई के लाल हो!

एक बांस लंबा
आंगन में गड़ा हुआ है,
दो दर्जन बंदर प्रतियोगी

उस पर चढ़ने,
चोटी तक जाने को
अपने हाथ-पांव मारते,
कशमकश करते कब से।

एक नहीं चोटी पर अब तक पहुंच सका है--
एक जरा-सा उठा,
दूसरे ने आ उसकी टांगें खींचीं;
और तीसरा पूंछ दूसरे की, पंजों से पकड़ लटकता; उसकी टांग, हाथ में इसके,
इसकी टांग, हाथ में उसके,
उसकी दुम, इसके पंजे में,
इसके पंजे में, उसकी दुम--
गुत्थिम-गुत्था,
लपटा-झपटी,
हाथा-पाई,
गर्द-उड़ाई!
कोई हर्ज नहीं
कोई जो पहुंच नहीं चोटी तक पाता,
मांसपेशियां एक-दूसरे की तो है मजबूत बनाता।

व्यायाम चल रहा है। हर कुर्सी के आस-पास तुम देखोगे, कुश्तम-कुश्ती हो रही है, गुत्थम-गुत्थी हो रही है। मगर जो बैठा है कुर्सी पर, वह सोचता है वह ऊंचा हो गया, बड़ा हो गया। कुर्सी से एक तादात्म्य हो गया। मान लिया कि मैं कुर्सी हूं! मैं धन हूं! मैं पद हूं!
थोड़ा तो होश रखो!
न तो तुम देह हो, न तुम मन हो, न तुम पद, न तुम प्रतिष्ठा। तुम केवल साक्षीमात्र हो। हां, खेल हैं बहुत; खेलो, जी भर कर खेलो। स्मरण बनाए रखो, ताकि कोई भी खेल तुम्हारी छाती पर बैठ न जाए। कोई भी खेल भारी न होने लगे। हलके रहो, निर्भार रहो।
मगर लोग भूल ही जाते हैं; खेल को भी असली मान लेते हैं। शतरंज खेलते हैं; लकड़ी के हाथी-घोड़े; लकड़ी के राजा-वजीर--और ऐसे तल्लीन हो जाते हैं! तलवारें खिंच गई हैं शतरंज के खेल पर। गर्दनें कट गई हैं। ताश खेलते हैं।
ताश के राजा-रानी। मगर उनमें भी कैसा लगाव बन जाता है! असली राजा-रानी मिट

गए, मगर ताश के राजा-रानी मिटने वाले नहीं हैं। और जब तुम खेलते हो तो कितना तादात्म्य बना लेते हो! भूल ही जाते हो।
विस्मरण तुम्हारा रोग है। मुझसे पूछो तो कहूंगाः विस्मरण संसार है। स्मरण-सुरति कबीर की भाषा में--मोक्ष है, मुक्ति है, समाधि है। खेलो जरूर अभिनय--और कुशलता से खेलो! जीवन है तो कुछ तो करना होगा। मैं नहीं कहता कि सब भाग कर और बैठ जाओ गुफाओं में। कुछ लोग गुफाओं में बैठ सकते हैं इसीलिए कि बाकी लोग काम में लगे हैं। अगर सभी लोग गुफाओं में बैठ जाएं, तो एक भी नहीं बैठ सकता फिर गुफाओं में, फिर सभी को वापिस आना पड़े। यह ख्याल रखना। इसलिए मैं पुराने संन्यास के खिलाफ हूं, क्योंकि उसकी आधारशिला गलत है। इमेनुअल कांट ने नैतिकता के नियमों में एक नियम निर्धारित किया है,
जो बहुत महत्वपूर्ण है। उसका नियम है कि इस आधार से तौल लेना कि कौन सी चीज नैतिक है और कौन सी अनैतिक! यह कसौटी है। जैसे सुनार के पास सोने को कसने के लिए पत्थर होता है, ऐसा इमैनुअल कांट ने इसको पत्थर कहा है। जिस नियम को सारे लोग मान लें और उस नियम की ही मौत हो जाए, समझ लेना कि वह नियम अनैतिक है।
इस आधार से तो पुराना संन्यास अनैतिक है; क्योंकि अगर सारे लोग संन्यासी हो जाएं, पुराने ढब के, तो संन्यास टिक ही नहीं सकता। महावीर को भी भोजन देने के लिए कोई गृहस्थ चाहिए, श्रावक चाहिए। और शंकराचार्य को भी भोजन देने के लिए कोई श्रावक चाहिए, कोई गृहस्थ चाहिए। और बुद्ध को भी भिक्षा देने के लिए कोई श्रावक चाहिए, कोई गृहस्थ चाहिए। अगर सारे ही लोग भिक्षु हो जाएं तो भिक्षा किससे मांगो? असंभव हो जाएगा संन्यास!
इमेनुअल कांट का सिद्धांत उपयोगी है। ऐसा संन्यास अनैतिक है।
इसलिए मैं संन्यास की एक नई परिभाषा दे रहा हूं। खेलो! संसार के खेलों
से कुछ भागने की जरूरत नहीं है। बस इतना ही स्मरण रखो कि मैं द्रष्टा हूं। मैं तुम्हें रोकता भी नहीं कि फिल्म देखने मत जाना। जाना हो तो बराबर चले जाना, मगर ख्याल रखनाः फिल्म मत बन जाना, तादात्म्य मत कर लेना। लोग तादात्म्य कर लेते हैं, वहीं अड़चन खड़ी हो जाती है। और जब एक दफा तादात्म्य कर लिया तो तादात्म्य करने के लिए सब तरह के तर्क भी खोज लेते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन को एक रात सपना आया कि वह मर गया। सपना ऐसा भयानक था
कि जाग गया तो भी टूटा नहीं। अपनी पत्नी को हिलाया और कहाः सुनती हो, मैं मर गया! पत्नी ने कहा कि नसरुद्दीन, होश में हो? अगर मर जाते तो कौन मुझे जगाता, कौन मुझसे कहता?
नसरुद्दीन ने कहाः अब तू कुछ भी कह, मगर जो मुझे घट चुका है सो घट चुका। अपनी आंखों देखा है। अब मैं किसी की मानने वाला नहीं हूं।"
पहले तो पत्नी ने समझा कि मजाक कर रहा है मगर बात मोहल्ले में फैल गई। दूसरे दिन वह लोगों से भी कहने लगा। दुकान पर ग्राहकों से भी कहता कि भई कुछ पता है, मैं मर गया! मजाक धीरे-धीरे गंभीर हो गया, बात बिगड़ने की हो गई। पहले तो लोगों ने समझाया-बुझाया लेकिन वह समझने-बूझने के बाहर, वह हजार तर्क दे। वह कहे प्रमाण क्या है कि मैं जिंदा हूं? कोई प्रत्यक्ष प्रमाण लाओ!
आखिर उन्होंने कहा कि अपने बस के बाहर है। एक मनोवैज्ञानिक के पास ले गए। मनोवैज्ञानिक ने बहुत खोज-बीन की। उसने कहाः ठीक है तुम एक बात तो मानते हो नसरुद्दीन कि अगर मुर्दा आदमी के हाथ में सुई चुभाएं या चाकू से काटें तो खून नहीं निकल सकता?
नसरुद्दीन ने कहाः कभी नहीं निकल सकता। जब मर ही गया आदमी तो उसमें खून क्या निकलेगा! मरते ही से खून पानी हो जाता है।"
मनोवैज्ञानिक को ढाढस बंधा। उसने कहा अब रास्ता निकाल लेंगे। पकड़ा नसरुद्दीन को, ले गया आईने के पास। कहा कि अंगुली करो आगे आईने के। उठाया चाकू और थोड़ी सी अंगुली काटी। खून गिरने लगा। कहा, देखो अंगुली में, देखो आईने में, खून निकल रहा है कि नहीं?
नसरुद्दीन ने कहाः निकल रहा है।
तो मनोवैज्ञानिक ने कहाः अब क्या कहते हो?

नसरुद्दीन ने कहाः अब मैं यही कहना चाहता हूं कि अब तक का सिद्धांत कि मुर्दा आदमी से खून नहीं निकलता, गलत था। खून निकलता है। अपनी आंख से देख रहा हूं। और तुम भी गवाह हो।
आदमी जो मान ले, उसे उससे हटाना बहुत मुश्किल है। वह अपनी मान्यता के लिए तर्क इकट्ठे कर लेता है। तर्कजाल, वितर्क, वितंडा। और इसलिए सारे धर्मो ने, सारे दर्शनशास्त्रों ने अपने-अपने तर्क इकट्ठे कर लिए। तर्कों की कोई कमी है। तुम जिस चीज के लिए चाहो तर्क उसके लिए इकट्ठा कर सकते हो। तर्क तो बिल्कुल बच्चों का खेल है।
और लोग तर्क पर बड़ा भरोसा किए हुए हैं। सिर्फ बचकाने लोग ही तर्कों पर भरोसा करते हैं। तर्कों का मूल्य नहीं। जिनको तर्क का थोड़ा अनुभव है, जो तर्क में थोड़े गए हैं... ।
मैं तर्कशास्त्र का विद्यार्थी था। नौ महीने तक मैंने अपने प्रोफेसर
को इंच भर आगे नहीं बढ़ने दिया। आखिर उन्होंने सिर पीट लिया, उन्होंने कहा कि भाई परीक्षा करीब आ रही है; तुम इंच भर आगे बढ़ने नहीं देते। परीक्षा होनी है कि नहीं होनी है? बाकी का क्या होगा? और मैं भी थक गया।
तो मैंने कहा कि फिर तर्कशास्त्र क्या खाक पढ़ाते हैं। तर्कशास्त्र पढ़ाने का तो अर्थ ही यह है कि होने दो तर्क।
उन्होंने इस्तीफा लिख कर दे दिया, कि या तो यह विद्यार्थी रहे और या मैं। अब हम दोनों; ये दो तलवारें एक ही म्यान में नहीं रह सकतीं। प्रिंसीपल ने मुझे बुलाया और कहा कि वे हमारे पुराने अध्यापक हैं, आदृत अध्यापक हैं; उनको हम ऐसे नहीं छोड़ सकते। बीस साल की उनकी सेवाएं हैं। तुम तो आज यहां हो, कल चले ही जाओगे। तो मैं तुमसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूं कि तुम चले ही जाओ। और प्रार्थना इसलिए करनी पड़ती है, क्योंकि मैं समझ रहा हूं कि तुमने गलती कुछ भी नहीं की है। तुम्हारी बात भी ठीक है कि जब तर्कशास्त्र ही पढ़ाते हो तो कम से कम तर्क तो यहां तो होने दो, और कहीं नहीं तो ठीक है। गणित की कक्षा में अगर गणित न हो... । तो तुम्हारी बात मैं भी मानता हूं, मगर मैं हाथ जोड़ता हूं। वे बूढ़े आदमी हैं, उनको क्षमा करो। तुम किसी और कालेज में भर्ती हो जाओ। मैंने कहाः मेरी बदनामी इतनी हो गई है कि कौन कालेज मुझे लेगा?
उन्होंने कहाः यह बात सच है। मैं कोशिश करता हूं। उन्होंने ही कोशिश की, दूसरे कालेज के प्रिंसीपल को समझाया-बुझाया। मैं गया। उन्होंने कहाः भई हम लेने को तो राजी हैं, लेकिन लिखित तुम्हें देना होगा कि चुपचाप बैठोगे। इस शर्त पर हम तुम्हें लेने को राजी हैं। क्योंकि वहां तो जो तर्कशास्त्र का प्रोफेसर है, जिस कालेज में तुम हो, वह तो अखिल भारतीय ख्याति का व्यक्ति है। हमारा तर्कशास्त्र का प्रोफेसर तो बिल्कुल नया है, उसकी तो तुम जान ले लोगे। लिखित दे दो।
तो मैंने कहा कि मैं लिखित भी दे दूं; मगर जब वे तर्क की बात करेंगे तो मुझे अपने पर ही भरोसा नहीं कि मैं चुप रह सकूंगा। गलत-सही कुछ भी कहा... । तो आप ऐसा करें कि मैं आऊंगा ही नहीं कक्षा में, उपस्थिति मुझे मिलनी चाहिए। क्योंकि मेरे चुपचाप बैठे रहने से भी क्या फायदा है!
वे इसके लिए राजी हो गए। मैं कक्षा में गया नहीं कभी, उपस्थिति मुझे पूरी मिली, परीक्षा भी मैंने दी।
तर्क का कोई अंत नहीं है। और तर्क से कभी कोई निष्पत्ति नहीं होती। इतना ही मैं उन प्रोफेसर से कहता थाः एक बार तुम यह कह दो कि तर्क से कोई निष्पत्ति नहीं होती, फिर मैं चुप हो जाऊं। इसको वे कहने को राजी नहीं थे। वे मानते थे कि तर्क से निष्पत्ति होती है, तो मैंने कहाः निकालना निष्पत्ति! नौ महीने में एक नहीं निकली। और आप अगर कहें तो कभी भी नहीं छोडूंगा इस क्लास को, परीक्षा ही नहीं दूंगा। निष्पत्ति जिस दिन निकल जाएगी उस दिन मैं चला जाऊंगा।
निष्पत्ति निकलती ही नहीं तर्क से। जितने पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं, उतने ही विपक्ष में दिए जा सकते हैं। ईश्वर के पक्ष में जो तर्क हैं वही विपक्ष में हो जाते हैं। ईश्वर के पक्ष में तर्क है कि दुनिया को कोई तो बनाने वाला चाहिए। हर चीज को बनाने वाला होता है। जैसे कुम्हार घड़े को

बनाता है, ऐसे ईश्वर ने जगत को बनाया। लेकिन नास्तिक पूछता है, ईश्वर को किसने बनाया? अगर हर चीज को बनाने वाला चाहिए तो ईश्वर को बनाने वाला भी कोई होगा! अब झंझट खड़ी होगी। अब तुम कहोगेः ईश्वर को और किसी महा ईश्वर ने बनाया--महा ब्रह्मा ने। तो वह पूछेगाः उसको किसने बनाया, फिर उसको किसने? फिर उसको किसने?
पुरानी कहानी है, एक सम्राट ने घोषणा की कि मैं एक ऐसी कहानी सुनना चाहता हूं जिसका अंत न आता हो। बहुत लोग आए, कहानियां सुनाईं। आखिर कहानी का अंत तो आएगा ही। लेकिन एक आदमी आया और उसकी कहानी का अंत नहीं आया। उसकी कहानी बड़ी भी नहीं थी। फिर भी अंत नहीं आया। उसकी कहानी बड़ी छोटी थी। उसने कहाः एक शिकारी शिकार खेलने गया। एक झील के तट पर हजारों वृक्ष, हजारों वृक्षों पर लाखों पक्षी बैठे हैं। उसने गोली मारी, चिड़िया उड़ गई--फुर्र। सम्राट ने फूछाः फिर क्या हुआ?
उसने कहाः फिर उसने गोली मारी। चिड़िया उड़ गई फुर्र।
सम्राट ने कहाः निकल बाहर हो। इस कहानी का तो अंत आएगा ही नहीं।
उसने कहाः इसीलिए तो आपसे मैं... । आप ही चाहते हैं कि कहानी का अंत न आए। अब कोई ला दे इस कहानी का अंत! जब भी तुम पूछोगे--फिर? ... फिर उसने गोली मारी, चिड़िया फुर्र!
तर्क का कोई अंत नहीं। मारो गोलीः चिड़िया फुर्र। कोई तर्क किसी निष्पत्ति पर नहीं ले जाता है। लेकिन तर्क को लोग मान लेते हैं, क्योंकि बचपन से तर्क दोहराए जाते हैं।
क्या है जैन होना, क्या है हिंदू होना, क्या है बौद्ध होना? सिर्फ तर्कों के विभिन्न जाल हैं। मैं तुम्हें न तो हिंदू बनाना चाहता, न बौद्ध, न ईसाई। मैं तुम्हें तर्कों के जाल से मुक्त करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम इस बात को समझ सको कि सभी संस्कार, चाहे कितने ही तर्कनिष्ठ मालूम होते हों, मूलतः तर्कनिष्ठ नहीं है। नहीं तो अभी तक आस्तिक-नास्तिक कोई निर्णय ले लेते न। कोई दस हजार साल से लड़ रहे हैं, कोई निर्णय है? आस्तिक-आस्तिक, नास्तिक-नास्तिक। जैनों और हिंदुओं ने निर्णय लिया कोई? पांच हजार साल से साथ-साथ रह रहे हैं। वही विवाद, वैसा का वैसा, वहीं का वहीं।
दुनिया के कोई धर्म एक दूसरे से निर्णय क्यों नहीं ले पाते? तीन सौ धर्म हैं पृथ्वी पर। तीन सौ में से एक तो कम कर दो तुम, दो सौ निन्यानबे तो कर दो! सब अपना तर्क देते हैं। और तुम किसी के तर्क को भी कितना ही गलत करो, वह और-और तर्क खोज लेता है, जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं वैसे ही मन में तर्क लगते हैं। और तुम्हारा तर्क हो तो प्रीतिकर लगता है, क्योंकि तुम्हारे अहंकार को आच्छादित करता है, तुम्हारे अहंकार को पोषित करता है, तुम्हारे अहंकार को मजबूत करता है।
मैं नहीं चाहता कि तुम मन को छोड़ कर जंगल में भाग जाओ, कि संसार को छोड़
कर जंगल में भाग जाओ। मैं चाहता हूं कि तुम यहीं रहो, जहां हो; इतना बोध भर रखो कि मैं मन नहीं हूं, मैं देह नहीं हूं, मैं संसार नहीं हूं। फिर यह अभिनय चलने दो पर अभिनय ही हो। अगर यह संसार अभिनय ही रह जाए तो तुम मुक्त हो गए। यही संन्यास है।
एक गांव में रामलीला हुई। हनुमान जी गए हैं, लक्ष्मण जी बेहोश पड़े हैं, उनके लिए दवा-दारू लेने, संजीवनी-वटी लेने, संजीवनी-वटी उनको मिली नहीं। जो लक्षण बताए थे उस पहाड़ पर वैसे लक्षण की बहुत सी औषधियां थीं। वह पूरा पहाड़ ही ले आए।
अब गांव की रामलीला--और भारतीय गांव। एक रस्सी पर चढ़ कर आते हैं एक पुट्ठे की पहाड़ी लिए हुए हैं। मगर रस्सी की घिर्री उलझ जाती है। न उलझे तो ही चमत्कार। सो वे बीच में अटके हैं। नीचे लक्ष्मण जी पड़े हैं, वे भी बीच-बीच में थोड़ी आंख खोल कर देख लेते हैं कि बहुत देर हुई जा रही है। रामचंद्र जी ऊपर देख रहे हैं कि अभी तक आए नहीं! और जनता देख रही है कि आ तो गए, बीच में अटके हैं; उतरते क्यों नहीं? बड़ी झंझट मची है। मैनेजर घबड़ा गया कि अब करना क्या! वह ऊपर चढ़ा, उसने चाकू से रस्सी काट दी। सो हनुमान जी धड़ाम से मय

पहाड़ के नीचे गिरे! रामचंद्र जी को जो कहना चाहिए था वही उन्होंने कहा, कि ले आए पवनसुत! जड़ी-बूटी ले आए?
हनुमान जी ने कहाः ऐसी की तैसी पवनसुत की! पहले यह बताओ, रस्सी किसने काटी?
अब यह सारा खेल ही बिगड़ गया। रामचंद्र जी ने फिर भी समझाने की कोशिश
की कि लक्ष्मण जी बेहोश पड़े हैं। उन्होंने कहाः पड़े रहने दो, मरते हों तो मर जाएं! इधर मेरे घुटने में चोट लग गई। और कौन कहता है बेहोश पड़े हैं; जब मैं ऊपर अटका था तो खोल-खोल कर आंख देख रहे थे।

अब यह अभिनय न रहा; अब भूल से अभिनय सच्चा हो गया। अब ये भूल ही गए कि अभी खेल को कायम रखना था; इन्होंने खेल से संन्यास ही ले लिया। ये पुराने ढंग का संन्यास। इतनी जल्दी भी क्या थी, थोड़ी देर में फर्दा गिरता, फिर मालिश वगैरह करवा लेते, फिर पता लगा लेते कि कहां है वह मैनेजर का बच्चा! फिर निपट सुलझ लेते, मगर जरा पर्दा तो गिर जाने देते।
संसार एक अभिनय है और मौत पर्दे गिराती है। जल्दी क्या है भागने की? मौत तो खुद ही हटा लेगी। पर्दा तो अपने आप गिर जाएगा। लेकिन एक तरफ लोग हैं जो इस अभिनय को इतना सत्य समझ लेते हैं कि इसी में उलझ जाते हैं और दूसरी तरफ लोग हैं, वे भी इस अभिनय को इतना सत्य समझ लेते हैं कि इससे भाग खड़े होते हैं। ये दोनों गलत हैं। तुम्हारा भोगी भी गलत है, तुम्हारा त्यागी भी गलत है। दोनों ने एक बात पर तो सहमति जाहिर कर दी है कि यह अभिनय बहुत सच्चा है। एक पकड़ रहा है, एक छोड़ रहा है। एक छाती से लगाए है, एक घबड़ा कर भाग रहा है। मगर दोनों मानते हैं कि यह संसार बहुत सत्य है।
संन्यास की वास्तविक धारणा केवल इतनी है कि तुम जानो कि मन तुम नहीं हो, और संसार तुम्हारे मन का ही फैलाव है। तुम द्रष्टा हो। देखो मौज से अपने भीतर बैठ कर। देखो सब राग-रंग। देखो पतझड़-वसंत।
जब मैं कहता हूं मन से मुक्त हो जाने के लिए तो मेरा कुल अर्थ इतना ही
है कि तुम्हारी ऊर्जा मन से अपना तादात्म्य तोड़ दे और चैतन्य में विराजमान हो जाए।
मदन लाल दूधेड़िया, दुविधा में पड़ोगे अगर संस्कार को जोर से पकड़ा।
लेकिन संस्कार को इतने दिन तो पकड़े रहे, तो पहुंचना क्या हुआ? कहां पहुंच पाए? अब मैं कह रहा हूं संस्कार को छोड़ कर देखो। थोड़ा यह प्रयोग भी कर लो। थोड़ी इस मदिरा को भी पीओ, थोड़ी इसकी भी चुस्की लो। उस संस्कार ने तो कहीं नहीं पहुंचाया है; शायद संस्कार-मुक्त होने से कहीं पहुंच जाओ।
और कहां पहुंचना है? अपने भीतर पहुंचना है। अपने अंतरतम में पहुंचना है! वहां तुम परम शुद्ध हो, वहां तुम परमात्मा हो। मगर वह परमात्म-रूप केवल चैतन्य-रूप है, सच्चिदानंद है, सत है, चित है, आनंद है। थोड़े ध्यान में उतरो, ताकि इन संस्कारों से छुटकारा हो सके।
संस्कार का अर्थ ही होता है धूल-दर्पण पर जम गई धूल। हटाओ, पोंछो दर्पण को, ताकि दर्पण उसका प्रतिफलन दे सके जो है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आप कहते हैंः "होनी होय सो होय।" तो क्या कुछ न करें? सब उसी पर छोड़ दें?

रामदास! कुछ न करें, यह भी करना होगा। यह भी एक ढंग का करना है--कुछ न करें, कि हम कुछ न करेंगे। यह नकारात्मक कृत्य है, लेकिन है कृत्य ही। सब उसी पर छोड़ दें--यह छोड़ना भी कृत्य है। कौन छोड़ रहा है? और छोड़ना क्या है? क्या छोड़ना क्रिया नहीं है?
अगर तुम बात को ठीक से समझे--"होनी होय सो होय"--तो फिर न तो कुछ करने
को बचता है, न न करने को बचता है; न तो कुछ पकड़ने को बचता है, न कुछ छोड़ने को बचता है। जो हो रहा है, ठीक हो रहा है; हम केवल दर्शक रह जाते हैं। न पकड़ना है, न छोड़ना है; न करना है, न न करना है। जो हो रहा है, हो ही रहा है। हम सिर्फ दर्शक रह गए, द्रष्टा रह गए--देखेंगे और देखने से इंच भर इधर-उधर नहीं जाएंगे, कर्ता नहीं बनेंगे।

नहीं तो तुम भूल में पड़ोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसके तीन साथियों ने बार-बार मुझे सुन कर--कि मौन
से रहो, शून्य में जीयो-निर्णय कर लिया कि जाते हैं, एक महीने का मौन लेते हैं। बैठ गए गुफा में जाकर। एक महीने का मौन ले लिया। कोई पांच-सात मिनट ही बैठे होंगे कि पहले ने कहाः अरे, पता नहीं मैं घर का ताला लगा पाया कि नहीं लगा पाया! दूसरे ने कहाः अरे मूरख! मौन लिया महीने भर का, पांच मिनट टिका नहीं, सब बर्बाद कर दिया!
तीसरे ने कहाः तू महामूरख है! वह तो बोला सो बोला, तू क्यों बोला?
मुल्ला नसरुद्दीन ने हाथ जोड़े आकाश की तरफ और कहाः हे प्रभु! मुझे छोड़
कर ये सब मूरख बोल गए! मैं ही भला, अब तक बोला ही नहीं।
बस पांच-सात मिनट में सब खत्म हो गया।
मौन बैठना है, यह आग्रह भी कृत्य है। मौन बैठा नहीं जाता; समझ से मौन फलित होता है। अपने को जबरदस्ती मौन बिठा लोगे, तो ये सब बातें उठेंगी। हो सकता था पहला आदमी न भी कहता कि पता नहीं घर में ताला लगा पाया या नहीं, लेकिन भीतर तो कहता ही; मौन तो खंडित तभी हो जाता, चाहे ऊपर न भी बोलता। दूसरा चाहे दूसरे की बारी आने फर कुछ भी न कहता, लेकिन भीतर तो कहता कि इस मूरख ने अपना मौन तोड़ लिया; बाहर न भी कहता तो भी चल जाता, लेकिन मौन तो टूट ही जाता। कुछ मौन के बाहर और भीतर बोलने का सवाल नहीं है। यह मौन जबरदस्ती आरोपित है। यह टूट ही जाएगा। यह टिक नहीं सकता। समझ इस बात की कि मैं सिर्फ द्रष्टामात्र हूं; फिर कोई मौन सम्हालना नहीं पड़ता, सम्हल जाता है। बीच बाजार में रहोगे और भीतर मौन की सतत धारा बहती रहेगी।
अब तुमने सुना कि कबीर कहते हैं "होनी होय सो होय" और मैं कबीर के समर्थन में हूं कि जो होना है सो होगा। तुम क्यों फिकर लेते हो? तुम क्यों चिंता में पड़ते हो? तुम तो द्रष्टामात्र हो। तुम्हें चिंता लेने का, संताप करने का कोई भी कारण नहीं। तुम तो देखो। दुखांत होगा नाटक तो ठीक और सुखांत होगा तो ठीक। तुम्हें क्या पड़ी है? लेकिन तब तुम्हारे सामने सवाल उठा--"तो क्या कुछ न करें?" करने से तुम न छूटोगे। अब तुमने दूसरा निर्णय लिया--"तो अच्छी बात है। होनी होय सो होय! तब हम बैठेंगे, कुछ न करेंगे।" मगर वह बैठना भी कृत्य हो गया। जबरदस्ती बैठ जाओगे गुफा में जाकर, बार-बार देखोगे बाहर गुफा के कि अभी तक कुछ हो नहीं रहा है! होनी होय सो होय, मगर हो कुछ भी नहीं रहा है और हम बैठे हैं इतनी देर से! तुम्हारे बैठने में तुम्हारा अहंकार ही रहेगा। यह कुछ बोध नहीं है। यह कोई समझ नहीं है। यह कोई प्रज्ञा से उठी क्रांति नहीं है।
अब तुम कहते होः "सब क्या उसी पर छोड़ दें?"
तो क्या कुछ बचा लेने का इरादा है कि थोड़ा-बहुत तो बचा लें! मीठा-मीठा गप, कड़वा-कड़वा थू! कि बाकी तू सम्हाल। कि जब बुरा हो जाए तो कहेंगे "होनी होय सो होय"; और जब भला हो जाए तो झंडा लेकर निकल पड़ेंगे कि झंडा ऊंचा रहे हमारा! देखो यह हमने ही किया!
अब तुम पूछ रहे होः "तो क्या सब उसी पर छोड़ दें?"
मगर छोड़ोगे तुम! तो छोड़ना कृत्य हो गया। छोड़ने वाला है कौन? सब उस पर छूटा ही हुआ है। पागल हो तुम, जो सोचते हो कि हम पकड़े हैं। सब उसी का है, सब उस पर ही छूटा हुआ है। और तुम कुछ कर रहे हो, इस भ्रांति में हो। जो हो रहा है वही हो रहा है; तुम्हारे किए से कुछ भी नहीं हो रहा है। तुम नाहक ही हाथ-पैर न मारो।
भोगी भी हाथ-पैर मारते हैं, त्यागी भी हाथ-पैर मारते हैं। संन्यासी मैं उसको कहता हूं जो यह समझ लेता हैः अपने हाथ-पैर मारने की बात ही नहीं। हम हैं ही नहीं, वही है! हम उसके अंग-मात्र हैं।
जैसे पानी की लहर--सागर की लहर--अलग तो हो नहीं सकती सागर से। सागर ही उसमें नाचता है तो नाचती है। सागर ही सो जाता है तो सो जाती है।
यह बोध की बात है। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, यह करने की कम, समझने की बात है।
बस समझ लिया कि सब हो गया। तुम और परमात्मा में भेद नहीं है। तुमने मान लिया है कि मैं अलग हूं तो झंझटें आ रही हैं। अब अलग मान लिया है तो कुछ

करूंगा। और फिर अगर किसी ने कहा कि तुम्हारे करने से असफलता हाथ लगती है, दुख हाथ लगता है, तो तुम कहते होः अच्छी बात है, तो नहीं करेंगे! मगर करने की भाषा नहीं बदलती, वही की वही भाषा जारी रहती है।
तुम अपनी भाषा में जरा झांक कर देखो।
एक जैन मुनि प्रवचन दे रहे थे। अहिंसा पर उन्होंने बड़ी तात्विक चर्चा
की और कहा कि पशु-पक्षियों को मारना महापाप है। मुल्ला नसरुद्दीन खड़ा हो गया। उसने कहाः आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। एक बार एक मछली ने मेरे प्राण बचाए। जैन मुनि ने देखा कि एक तो मुसलमान... अच्छा है। नसरुद्दीन को कहा कि तू हमारे साथ रह। जहां भी हम प्रवचन देंगे, हम कहेंगे--पूछो इससे! तो तू खड़े होकर कहना कि एक मछली ने हमारे प्राण बचाए। सो यह नियम हो गया; वे बोलते और मुल्ला नसरुद्दीन खड़े होकर कहता कि एक मछली ने हमारे प्राण बचाए। फिर धीरे-धीरे दोनों में काफी निकटता बढ़ गई, एक दिन मुनि ने पूछा एकांत में कि तू पूरी बात तो बता कि घटना क्या हुई?
नसरुद्दीन ने कहाः आप यह न पूछें तो अच्छा है! क्योंकि मुझे भूख लगी
थी और मछली को मैंने खा लिया। सो इस तरह उसने मेरे प्राण बचाए। यह आप पूछें ही मत! बस उतना ही काफी है कि एक मछली ने मेरे प्राण बचाए, क्योंकि इससे आगे मैंने कहा तो झंझट हो जाएगी।
जरा बात की गहराई में उतरो तो तुम और बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। ऊपर
से तो लगता है, कहते होः तो क्या हम कुछ न करें, सब कुछ उसी पर छोड़ दें? जरा भीतर उतरो। सब कुछ उसी पर छोड़ने का मतलब यह है कि तुम चाहो, तो कुछ बिना छोड़े भी रह सकते हो। जैसे तुम्हारे हाथ में है छोड़ना! जैसे यह तुम्हारा निर्णय है छोड़ो या न छोड़ो!
नहीं, ऐसा नहीं है। सब उसके हाथ में ही है।
यह ऐसा ही है जैसा कि हवा का एक झोंका आए और एक सूखी पत्ती हवा में ऊपर
उठ जाए और सोचने लगे कि क्या सब हवा पर छोड़ दूं, कि जहां ले जाए जाऊं; पूरब तो पूरब, पश्चिम तो पश्चिम? सब हवा पर छोड़ दूं?
हवा पर छूटा ही हुआ है। मगर पत्ती यह अकड़ ले सकती है कि अच्छा, चल तुझ
पर छोड़ते हैं सब; पूरब चल तो पूरब, पश्चिम चल तो पश्चिम। तुझ पर ही श्रद्धा करते हैं। ले समर्पण करते हैं।
मगर क्या इसमें कुछ समर्पण हो रहा है? पत्ती तो जाती ही वहां जहां हवा
को जाना था। मगर पत्ती के पास सोच-विचार नहीं है। इतना ही फर्क है तुम में और पत्ती में।
एक ढेर लगा था पत्थरों का, एक बच्चा आया और उसने एक पत्थर उठा कर महल
की खिड़की की तरफ फेंक दिया। अब पत्थर ऊपर उठा तो उसने नीचे पड़े पत्थरों से कहा कि मित्रो, मैं जरा आकाश की सैर को जा रहा हूं। किसके मन में नहीं होती आकाश की सैर की इच्छा! पत्थरों के मनों में भी होती है। तड़फते हैं; नहीं जा सकते, यह बात और है।
बाकी पत्थर तो कसमसा कर रह गए, ईर्ष्या से जले-भुने हो गए। देखा अपनी आंखों से, इनकार भी नहीं कर सकते। पत्थर जा ही रहा था आकाश की तरफ। क्या हुआ! किसी ने कहाः अवतारी पत्थर है। ईश्वर की बड़ी इस पर कृपा है। यह कोई साधारण पत्थर नहीं है। हम तो पहचान ही न पाए इसको अब तक। हमारे ही बीच रहा और हमने इसको न पहचाना। हम जैसा अंधा कौन होगा? अरे हम पूजा करें इसकी! इसका स्मरण करें, इसकी मूर्तियां बनाएं।
और पत्थर गया और जाकर टकराया महल की खिड़की से। कांच की खिड़की चकनाचूर
हो गई। स्वभावतः पत्थर कांच से टकराएगा तो पत्थर और कांच का स्वभाव ऐसा है कि पत्थर नहीं टूटेगा और कांच टूटेगा। इसमें कुछ पत्थर की खूबी नहीं है। लेकिन पत्थर ने कहाः मैंने हजार बार कहा है, कोई सुनता नहीं, मेरे बीच में कोई न आए! जो मेरे बीच में आएगा, चकनाचूर हो जाएगा। अब देखा! अब देखा फल! और गिरा अंदर जाकर कालीन पर महल की। कहा कि थक गया हूं बहुत; थोड़ा विश्राम कर लूं। सजा हुआ कमरा महल का और उसने कहा कि लगता है मेरे आने की खबर पहले ही पहुंच गई है। सब इंतजाम कर रखा है, कालीन बिछा रखे हैं, झाड़-फानूस लगा रखे हैं, तस्वीरे टांग रखी हैं, दीये जला रखे हैं। हो भी क्यों न

मैं कोई साधारण पत्थर तो हूं नहीं! आकाश में उड़ सकता है जो पत्थर, जिसके पंख हैं--ऐसा पत्थर हूं। अवतारी पत्थर हूं!
और तभी महल के नौकर ने आवाज सुनी पत्थर की, टकराने की, कांच के टूटने की। भागा हुआ अंदर आया, पत्थर को उठाया। पत्थर ने कहा कि मेरा स्वागत किया जा रहा है; हाथ में लेकर मेरा सम्मान किया जा रहा है; खुद सम्राट मालूम होता है, मेरे सम्मान-स्वागत में आया है!
और नौकर ने पत्थर वापस फेंक दिया खिड़की से। पत्थर नीचे गिरने लगा, तो उसने कहा कि बहुत समय हो गया अपने मित्रों को छोड़े, घर-द्वार छोड़े! और मातृ-भूमि से श्रेष्ठ तो इस जगत में कुछ भी नहीं वापिस जाऊं और अपनी अनंत-अनंत यात्राओं की कथा भी अपने मित्रों को सुनाऊं कि कैसे-कैसे महलों में वास हुआ, कैसे-कैसे सम्राटों के हाथों में स्वागत मिला, कहां-कहां फूलमालाएं चढ़ीं!
गिरा वापस पत्थरों की भीड़ में। पत्थर इकट्ठे हो गए। और उसने कहा कि जानते हो, क्या-क्या हुआ? खूब बढ़ा-चढ़ा कर उसने कहानी कही। पत्थरों ने कहाः आप एक काम करें, अपनी आत्म-कथा लिखें। बच्चों के काम आएगी। सदियों-सदियों तक लोग स्मरण रखेंगे। कहते हैं वह पत्थर अपनी आत्म-कथा लिख रहा है।
तुम छोड़ोगे क्या? तुम पकड़ोगे क्या? तुम हो कहां? न पकड़ना है, न छोड़ना है--सिर्फ जागना है। और मजा यह हैः पकड़ो तो तुम बने रहोगे, छोड़ो तो तुम बने रहोगे; जागे कि तुम मिटे। या तुम मिट जाओ तो जाग जाओ। मिटना और जागना एक ही घटना के दो पहलू हैं। जागने में अहंकार नहीं बचता। अहंकार अंधकार है, कैसे बचेगा? जागना प्रकाश है।
इसलिए रामदास, कबीर जो कहते हैं या मैं जो कहता हूं--"होनी होय सो होय"--उसका अर्थ समझो। उसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें कुछ नहीं करना है, सब उसी पर छोड़ देना है। उसका यह अर्थ नहीं है कि आलस्य में पड़ जाओ, कि अकर्मण्य होकर बैठ जाओ। यह पूरा देश ऐसे ही आलसी हुआ, ऐसे ही अकर्मण्य हुआ।
नहीं; जो कर रहे हो करो, लेकिन जानो भलीभांति; कर रहा है वही हमारे द्वारा! उसके हाथ हजार हैं। हम सब उसके हाथ। जो हो रहा है उसके द्वारा हो रहा है। इसलिए तुम्हें चिंता नहीं पकड़ेगी। हारोगे तो उसकी हार, जीते तो उसकी जीत है। कैसी चिंता? कैसी अस्मिता? न अकड़ आएगी, न विषाद आएगा। तुम जीवन से ऐसे गुजर जाओगे--अछूते!
कबीर ने कहा हैः ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया, ऐसे जतन से ओढ़ी कबीरा।
काश, तुम भी ऐसा ही एक दिन कह सको अपने अंतिम क्षणों में कि जीवन की चादर को जैसा का तैसा रख दिया--इतने जतन से ओढ़ कर, इतने होश से ओढ़ कर! जरा भी दाग न पड़ा! तो बस, तुम्हारे जीवन की पूर्णता आ गई, तुम्हारे जीवन में फूल लगे, तुम्हारे जीवन में सुगंध उड़ी, तुम सार्थक हुए! अन्यथा लोग ऐसे ही धक्के खाते हैं और मर जाते हैं। बहुत कम लोग हैं जिनके जीवन में फूल लगते हैं, कमल खिलते हैं।
और सब के जीवन में फूल लग सकते हैं! और सबके जीवन में कमल खिल सकते हैं। सब का जन्मसिद्ध अधिकार है।

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
सातवां प्रवचन

पी ले प्याला हो मतवाला

सूत्र

इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजन कंपै मेरी छाती।
दसवैं दारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी।
चहुं दिसी बैठे चारि पहरिया, जागत मूसि गए मोरी नगरिया।
कहै कबीर सुनहु रे लोई, भानंड़ घड़ण संवारण सोई।
पी ले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम अमीरस का रे।

बालपना सब खेलि गंवाया, तरुन भया नारी बस का रे।
विरध भया कबाय ने घेरा, खाट पड़ा न जाय खस का रे।
नाभि कंवल बिच है कस्तूरी, जैसे मिरग फिरे बन का रे।
बिन सतगुरु इतना दुख पाया, बैद मिला नहिं इस तनका रे।
माता पिता बंधु सुत तिरिया, संग नहीं कोइ जाय सका रे।
जब लग जीवै गुरु गुत लेगा, धन जोबन है दिन दस का रे।
चौरासी जो उबरा चाहे, छोड़ कामिन का चसका रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, नख-सिख पूर रहा बिस का रे।

मुरसिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सफेद तिलों बिच तारा, अवगति अलख रबी है।
आंखी मद्धे पांखी चमके, पांखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुर्बीन लगावै, उतरै भवजल पारा।
सुन्न सहर में बास हमारी, तहं सरबंगी जावै।
साहिब कबीर सदा के संगी, सब्द महल ले आवै।

जिंदगी सुबह से अब शाम हुई जाती है
देर कुछ पल की बस यह श्वास रुकी जाती है।

उससे मिलना न हुआ जिससे मुझे मिलना था
यूं तो मिले खूब मगर यह भी कोई मिलना था।

गांठ जब लगती हो तो डोर टूट जाती है।
जिंदगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।

कोई मेरा न हुआ न मैं किसी का हो सका चक्र मेरे भाग्य का इस जगह आकर रुका।

जहां फूल तो खिलते नहीं कली बिखर जाती है देर कुछ पल की बस यह श्वास रुकी जाती है।

किसी का दोष नहीं मैंने ही गल्ती की है सत्य को छोड़ जो सपनों से मोहब्बत की है।

जो कभी थी ही नहीं वह दुनिया मिटी जाती है जिंदगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।

असंभव आस थी भरने की खुद को भर न सका नियति शून्य है मेरी मैं यह देख न सका।

आंख में आंसू हैं मगर ओंठों पे हंसी आती है
देर कुछ पल की बस यह श्वास रुकी जाती है।
जिंदगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।।

सुबह हुई तो शाम हो ही गई, क्योंकि प्रारंभ में ही अंत छिपा है। जन्म में ही मृत्यु छिपी है। जिस दिन से पैदा हुए हो, मर रहे हो। सत्तर वर्ष लगें, अस्सी वर्ष लगें इस प्रक्रिया को पूरे होने में, वह बात अलग। लेकिन मृत्यु अचानक नहीं आती। जन्म के साथ, पहली श्वास के साथ ही उसकी पगध्वनि सुनी जाती है। आते-आते समय लग जाता है। जिसे यह बात ख्याल में आ गई कि मैं मर रहा हूं; जिसे हम जिंदगी कहते हैं वह मृत्यु की ही लंबी प्रक्रिया है--उसके जीवन में क्रांति हो जानी अवश्यंभावी है। यह भ्रांति की यह जीवन है, हमें उलझाए रखती है। जीवन समझते हैं तो लिपटते हैं। जीवन समझते हैं तो जोर से पकड़ते हैं कि हाथ से छूट न जाए। मौत दिखाई पड़ जाए, फिर कौन पागल पकड़े! मौत दिखाई पड़ जाए तो हमारी आंखें उसकी तलाश करने लगें, जो असली जीवन है।

यह जीवन जीवन नहीं है, ऐसी प्रतीति प्रगाढ़ हो तो कैसे रोक सकोगे अपने को अनंत जीवन को खोजने से? तब अमृत की तलाश शुरू होती है। पहला कदम यही है कि यह जीवन सिर्फ धोखा है, माया है। प्रतीत होता है जीवन जैसा, है क्या? हड्डी-मांस-मज्जा का ढेर है। श्वास आती है, जाती है। छाती फूलती है, सिकुड़ती है। इसे तुम जीवन कहते हो? बाहर गई श्वास भीतर न आएगी और बस जीवन समाप्त! इतना सस्ता, इतना दो कौड़ी का, इतना परवश, इतना असहाय--इसे तुम जीवन कहते हो! अगर इसे जीवन कहते हो तो फिर मृत्यु क्या है? यह देह अभी है और अभी न हो जाए। जरा सी बात इसे मिटा दे, पानी का बबूला है। सूरज की रोशनी में चमकता है। यूं लगता है जैसे इंद्रधनुष बना हो उसके चारों तरफ रंग-बिरंगा मालूम पड़ता है और जरा सी अलपिन चुभा दो और ऐसे मिट गया जैसे कभी न था! इससे भिन्न है हमारी जिंदगी कुछ? बस अलपिन चुभा दो और गई! पानी की लहर है, हवा का झोंका है।

महावीर ने ठीक कहा हैः जीवन ऐसे है जैसे घास की पत्ती पर सुबह की ओस; सूरज निकलेगा, वाष्पीभूत हो जाएगी। और न भी निकले सूरज, जरा सा हवा का झोंका आ जाएगा कि पत्ती से झर जाएगी, मिट्टी में खो जाएगी।

ओस की बूंद है हमारा जीवन। मगर इसको हमने इतना मूल्य दे रखा है, इतना सजाने-संवारने में, इतनेश्रृंगार में लगे हैं, सब कुछ इसी पर लगा रखा है। फिर रोओगे, फिर पछताओगे।

कबीर कहते हैंः इब न रहूं माटी के घर में।

अब इस मिट्टी के घर में न रहूंगा। रह चुके बहुत। जन्मों-जन्मों से रह रहे हो। कबीर तो घोषणा कर रहे हैं परमात्मा के सामने--इब न रहूं माटी के घर में--अब हो गया बहुत। आखिर नासमझी की भी एक सीमा होती है। अब नहीं रहूंगा इस मिट्टी के घर में। मिट्टी ही तो है। इधर श्वास गई, उधर लोगों ने अरथी उठाई। इधर श्वास गई, उधर लोग गड्ढा खोदने लगे। मिट्टी मिट्टी में मिल ही जाएगी। और मिट्टी के लिए कितना शोरगुल था! कितने उपद्रव थे! कितने राग-रंग थे! मिट्टी के लिए कितनों को सताया, कितनों को मिटाया! मिट्टी ने न मालूम कैसे-कैसे सपने देखे! सारे संसार की विजय-यात्रा करनी चाही। सारे संसार की संपदा इकट्ठी करनी चाही। पद और प्रतिष्ठा के तमगे लगाना चाहे। और भूल ही गई मिट्टी कि बस मिट्टी है! देर नहीं लगेगी गिरने में। सब धन-संपत्ति पड़ी रह जाएगी। सब विजय-यात्रा विषाद में बदल जाएगी।

कबीर को दिख गई यह बात! तुम्हें भी दिखनी चाहिए। बहुत हो गया समय! संकोच करो अब, थोड़ी लाज भी करो, थोड़े शर्माओ भी।

इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिलि हरि में।

कबीर कहते हैंः अब तो इस मिट्टी के घर में नहीं रहना। अब तो हरि में मिलूंगा, अब तो चैतन्य में निवास करूंगा, अब तो सच्चिदानंद में डूबूंगा। बहुत हो गए खिलौनों से खेल। अब तो सत्य को पकड़ूंगा। अब नहीं और सपने; नहीं अब बनानी हैं और कामनाएं और तृष्णाएं और वासनाएं। अब सब मिटा दूंगा ये मिट्टी के घर-घूले। ये रेत में बनाए महल सब गिरा दूंगा। ये कागज की नावें सब डुबा दूंगा। अब तो जो है और सदा है, और सदा रहता है, उससे ही नाता

जोड़ूंगा, उससे ही सेतु बनाऊंगा। उसका ही नाम हरि है। हरि कोई व्यक्ति नहीं है। इस भ्रांति में मत रहना कि राम कहीं कोई व्यक्ति है कि जो तुम्हें मिलेगा और कहेगा कि "आइए, विराजिए, पधारिए, कि भले आए, बहुत दिन से प्रतीक्षा करता था, कि बड़े सौभाग्य हमारे, कि पलक-पांवड़े बिछाए बैठा था। हरि कोई व्यक्ति नहीं है। ईश्वर के संबंध में व्यक्ति की धारणा बिल्कुल छोड़ दो। भगवान व्यक्ति नहीं है, भगवत्ता है; चैतन्य, सत्य, आनंद-- ऐसे गुणों का स्मरण करो। यह सारा जगत उसमें व्याप्त है। फूल-फूल पर उसकी छाप है। पत्ते-पत्ते पर उसके हस्ताक्षर हैं। मगर व्यक्ति की तलाश बंद कर दो, नहीं तो वह तुम्हें कभी मिलेगा नहीं। अब कोई चला धनुर्धारी राम को खोजने। अब कहां मिलेंगे धनुर्धारी राम? कोई चला बांसुरी बजाने वाले कृष्ण को खोजने। कहां मिलेंगे बांसुरी बजाने वाले कृष्ण? तुम्हारे मन की कल्पना है। तुम चाहो तो कल्पना को इतना साकार कर ले सकते हो कि खुली आंखों सपना दिखाई पड़ने लगे। मगर सपना चाहे बंद आंख देखो, चाहे खुली आंख; चाहे रात का हो सपना, चाहे दिवस का--सपना सपना है। और सपना चाहे संसार का हो और चाहे स्वर्ग का--सपना सपना है। परमात्मा को व्यक्ति की तरह देखने के कारण ही करोड़ों-करोड़ों लोग उससे वंचित हैं, क्योंकि मौलिक रूप से ही उनकी खोज गलत शुरू हो जाती है।
परमात्मा व्यक्ति नहीं है, एक भाव है--अहोभाव है।
परमात्मा व्यक्ति नहीं है--प्रार्थना की परम स्थिति है।
परमात्मा व्यक्ति नहीं है--ध्यान में उतरी हुई धन्यता है।
परमात्मा व्यक्ति नहीं है--शून्य है। निर्विचार, निर्विकल्प समाधि है।
कबीर कहते हैंः इब न रहुं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में। अब तो मिलना है मुझे भगवत्ता में। अब इस छोटे से घर से काम न चलेगा। अब तो सारे विश्व को, विराट को अपना घर बनाऊंगा। अब बंधा न रहूंगा सीमा में। अब तो असीम के साथ भांवरें डालनी हैं। अब तो विवाह रचाना है।
कबीर और जगह कहते हैंः मैं तो राम की दुल्हनियां। ये प्रतीक हैं। अगर भांवरें ही डालनी हों तो शाश्वत के साथ डालो। क्षणभंगुर के साथ भांवरें डालोगे, पछताओगे। अगर आश्वासन ही लेना है, देना है, तो शाश्वत को दो, लो।
क्षणभंगुर को आश्वासन दोगे-लोगे, टूटेंगे आश्वासन। खुद का ही भरोसा नहीं है कि कल हम होंगे या नहीं और कल के हम आश्वासन देते हैं।
सुनी है मैंने यह कथा; महाभारत की है। युधिष्ठिर सुबह-सुबह बैठे हैं। अज्ञातवास के दिनों की बात है। एक भिखमंगा द्वार पर दस्तक दिया है। युधिष्ठिर कुछ काम में लगे हैं। कहा कि कल आ जाना। भीम ने सुना, उठाया नगाड़ा, बजाता नगाड़ा बाहर की तरफ भागा। युधिष्ठिर ने पूछाः कहां जाते हो? उसने कहाः गांव में खबर कर दूं कि मेरे भाई ने समय पर विजय पा ली है। एक भिखमंगे को कहा है कि कल भिक्षा दूंगा। समय पर विजय पा ले, वही कह सकता है कल भिक्षा दूंगा। कल का क्या भरोसा, कल हो या न हो! एक पल का तो भरोसा नहीं है। अभी हो, अभी मिट जाओ। और तुम कल तक का आश्वासन दे रहे हो।
युधिष्ठिर को बात समझ में आई। दौड़े, भिखमंगे को पकड़ा और कहाः भैया, तू भिक्षा ले जा। अभी ले जा, क्योंकि जो करना है वह अभी। कल पर टालना तो तभी हो सकता है जब हमें भरोसा हो कि कल हम भी होंगे।
चीन की एक पुरानी कथा है। एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया। उसने उसे मृत्यु का दंड दे दिया। लेकिन नियम था उस साम्राज्य का कि जब किसी का मृत्यु दंड हो तो एक दिन पहले सम्राट स्वयं मिलने आता था। फिर यह तो उसका खुद वजीर था और इस वजीर ने बड़ी सेवाएं की थीं। लेकिन कोई बात पर नाराज हो गया था। और क्रोध में दंड दे दिया था। ऐसे मन ही मन पछताया भी था पीछे, लेकिन अब लौटना तो हो ही नहीं सकता। थूका चाटा नहीं जा सकता। तो आया वजीर को मिलने, अपना घोड़ा बांधा कारागृह के बाहर, सींखचों के भीतर वजीर बंद है। ताला खुला, सम्राट भीतर आया। वजीर से कहाः कुछ भी मांगना हो तो मांग लो। तुमने मेरी बहुत सेवाएं कीं। यद्यपि तुम्हारी भूल के कारण मुझे दंड देना पड़ा, लेकिन मेरे मन में पछतावा है। पर अब कुछ भी हो नहीं सकता।

सम्राट यह कह ही रहा था कि वजीर दहाड़ मार कर रोने लगा। सम्राट ने कहाः तुम और रोते हो! तुम जैसा शूरवीर मैंने नहीं देखा। मैंने तुम्हें युद्ध के मैदानों पर नंगी तलवारों में घिरे देखा है। तुम्हारी आंख में मैंने कभी आंसू नहीं देखे। तुम और मौत से डरो, यह तो मैं सोच भी नहीं सकता था!
वजीर ने कहाः मौत से कौन डर रहा है मालिक, मैं किसी और बात के लिए रो रहा हूं।
सम्राट ने पूछाः वह कौन सी बात है, मैं पूरी करूंगा।
वजीर ने कहा कि नहीं आप पूरी न कर सकेंगे। कोई भी पूरी न कर सकेगा वह बात ही कुछ ऐसी है।
जिद्द की सम्राट ने तो उसने कहाः आप कहते हैं तो कह देता हूं आप जिस घोड़े को लेकर आए हैं उसके कारण रो रहा हूं।
सम्राट ने कहाः पागल हो गए हो! घोड़े के लिए क्यों रोओगे?
वजीर ने कहा कि जीवन भर इस जाति के घोड़े की मैं तलाश करता रहा, क्योंकि मैंने बारह वर्ष अपने जीवन के इसी साधना में लगाए थे। एक सदगुरु के पास बैठ कर मैंने घोड़ों को आकाश में उड़ाने की कला सीखी थी, मगर एक खास जाति का घोड़ा ही उड़ने में समर्थ हो सकता है, और आज जब मरने की घड़ी है और केवल चौबीस घंटे मेरे हाथ में बचे हैं, तब यह घोड़ा मुझे दिखाई पड़ा। जिंदगी भर इसकी तलाश करता था। इसलिए रो रहा हूं कि यह भी खूब मजाक रही, खूब विडंबना हुई! बारह साल मैंने खर्च किए थे--बड़ी आशा में कि घोड़ों को उड़ा कर दुनिया में एक चमत्कार पैदा कर दूंगा। और अब आप आए हैं इस घोड़े पर बैठ कर। मरते वक्त मुझे और पीड़ा देने आए हैं। मृत्यु से नहीं रो रहा हूं मालिक, इस घोड़े को देख कर रो रहा हूं।
सम्राट के मन में वासना जगी कि काश मेरे पास उड़ने वाला घोड़ा हो, जो दुनिया में किसी सम्राट के पास नहीं है। उसने कहाः कितना समय लगेगा घोड़े को उड़ना सीखने? वजीर ने कहाः एक वर्ष। सम्राट ने कहाः तो एक वर्ष के लिए तुम बाहर आ जाओ। अगर घोड़ा उड़ना सीख गया तो न केवल तुम्हारा मृत्यु दंड रद्द, मैं अपनी बेटी से तुम्हारा विवाह करूंगा, आधा साम्राज्य भी तुम्हें दूंगा। और अगर घोड़ा उड़ना नहीं सीखा तो कोई हर्ज नहीं है। साल भर के बाद मौत हो जाएगी। मैं इसमें कुछ गंवा नहीं रहा हूं।
वजीर घोड़े पर बैठ कर अपने घर लौटा। पत्नी, बच्चे रो रहे थे। क्योंकि
आज आखिरी दिन था। पति को घर आए देख कर, पत्नी ने पूछाः आप और कैसे लौट आए, क्या चमत्कार घटा? पति हंसने लगा, उसने कहा कि ऐसी-ऐसी घटना घटी। सम्राट को मैंने कहा कि एक साल में घोड़े को उड़ना सिखा दूंगा। इसलिए एक साल तो बचा। पत्नी ने कहा कि यह तुमने क्या किया, और मुश्किल डाल दी। मुझे भलीभांति पता है, तुमने ऐसी कोई कला कभी सीखी नहीं। तुम झूठ बोले हो। और झूठ ही बोलना था तो कम से कम दस-पांच साल तो मांगते। एक साल तो यूं गूजर जाएगा... और यह एक साल हमारी छाती पर पत्थर की चट्टान की तरह रहेगा, गर्दन पर तलवार लटकी रहेगी। अब गया एक दिन, और एक दिन गया और मौत फिर खड़ी है सामने। इससे तो मर जाना ही बेहतर था। यह एक साल तो हमारे लिए, सबके लिए मृत्यु सिर पर खड़ी रहेगी। यह तो और भारी पड़ जाएगा। यह तुमने क्या किया? उस वजीर ने कहाः नासमझ, तुझे जिंदगी का कुछ हिसाब पता है? अरे साल भर में क्या नहीं हो सकता। घोड़ा तो नहीं उड़ेगा, यह पक्का है। मगर और बहुत कुछ हो सकता है। राजा मर सकता है, मैं मर सकता हूं। कम से कम घोड़ा तो मर ही सकता है।
और जो घटना घटी वह बहुत हैरानी की है। राजा ही नहीं मरा, घोड़ा ही नहीं मरा, वजीर भी मर गया। तीनों मर गए, साल भर में तीनों समाप्त हो गए।
जिंदगी बिल्कुल पानी की धार है। और हम पानी की धार में पैर को अड़ा कर सारी ताकत लगा कर खड़े हैं। जो कोई नहीं कर सका वह हम करने की कोशिश कर रहे हैं। जीत लेंगे जैसे। जैसे अपने को अपवाद सिद्ध कर देंगे।
कबीर कहते हैंः इब न रहूं माटी के घर में।
अब नहीं। बहुत हो चुका। सीमा होती है। अब सीमा के बाहर की बात हो गई।
इस "इब" शब्द पर ध्यान देना। इब न रहूं... क्योंकि जब भी क्रांति घटित होती है तो अब में ही घटित होती है। कबीर यह नहीं कह रहे हैं कि कल बदलूंगा,

परसों बदलूंगा, अगले वर्ष, कि जब बुढ़ापा आएगा तब संन्यास ले लूंगा। कबीर टाल नहीं रहे हैं। कबीर का वचन बहुत अदभुत हैः इब न रहूं! बस अभी, इसी क्षण! इस देह में अब नहीं रहना है।
देह में नहीं रहने का क्या अर्थ है? क्या आत्महत्या कर लेनी है? क्या गर्दन काट लेनी है? क्या पहाड़ से कूद जाना है? क्या फांसी लगा लेनी है? नहीं; इब न रहूं माटी के घर में, इसका अर्थ है अब और अपने को इस माटी के घर के साथ तादात्म्य नहीं कर सकता। अब नहीं कह सकता हूं कि मैं देह हूं। अब कहना चाहता हूं कि मैं सच्चिदानंद हूं, अनलहक हूं, अहं ब्रह्मास्मि! अब यह उदघोष करना चाहता हूं। बहुत दिन माटी से जुड़ा रहा। अब वह जोड़ तोड़ देना चाहता हूं।
इधर माटी से जोड़ तोड़ो, उधर अमृत से जोड़ बन जाता है। दोनों जोड़ साथ नहीं
रह सकते। हाथ से मिट्टी गिर जाए, अमृत से हाथ भर जाते हैं। जब तक हाथ मिट्टी से भरे हैं, अमृत के लिए अवकाश नहीं, स्थान नहीं।
इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।
अब इसी क्षण हरि में मिलूंगा! ... इस वचन के बाद भी कबीरदास बहुत वर्षों
तक जिंदा रहे। इसलिए हरि में मिलने का अर्थ ऐसा नहीं है कि कोई मरने के बाद ही हरि में मिलता है। हरि का और मरने से क्या लेना-देना! अभी घटना घट सकती है--और अभी ही घटना घट सकती है! कल पर टाला तो सदा को टाला। जिसने कहा कल, उसने असल में यह कहाः "कभी नहीं!"
कल कभी आता है? कल कभी आया है! जो आता है वह तो आज है। सदा आज है। परमात्मा तो सिर्फ एक ही समय जानता है। न बीता कल जानता है, न आने वाल कल जानता है। परमात्मा तो सिर्फ आज को ही पहचानता है। "आज" भी कहना ठीक नहीं, आज भी बड़ी बात हो गई। परमात्मा भी बस, "अब" को ही पहचानता है। यह क्षण, यह क्षण की प्रगाढ़ता, यह क्षण जो तुम्हें घेरे हुए है। यह धड़कती हुई छाती, यह श्वास का आना-जाना। यह दूर ट्रेन की आवाज, यह पक्षियों की चहचहाहट। यह क्षण--अपनी समग्रता में। बस इस क्षण के बाहर और कोई समय नहीं। बीता कल तुम्हारी स्मृति में है। आने वाला कल तुम्हारी कल्पना में है। न बीते कल का कोई अस्तित्व है, न आने वाले कल का कोई अस्तित्व है। अस्तित्व है तो बस, अब का। और अब से भी छोटा लगता है कबीर का शब्द--"इब।" इब और भी प्यारा है। इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।

ओ! मेरी श्वासों में उलझे
मेरी उलझन सुलझा दे रे!

यह उर में कैसी, उथल-पुथल
तन आज शिथिल, मन आज विकल,
निर्जीव उंगलियां तारों पर,
स्वर-लहरी में भारी हलचल।

भूले अतीत रागों को गायक फिर वीणा पर गा दे रे!

मैंने फूलों का उर झांका,
कांटों-कांटों में भरमाई,
मैं जलधि-उर्मियों पर नाची,
मैं चट्टानों से टकराई।

तू पार, न तुझको छू पाई
मुझको ही पार लगा ले रे!

यह घोषणा परमात्मा से क्यों कर रहे हैं वे? इसलिए कि हमारी सामर्थ्य
के बाहर है, कि हम परमात्मा के साथ एक हो जाएं। हम तो केवल प्रार्थना कर सकते हैं। हम तो पुकार दे सकते हैं।

तू पार, न तुझको छू पाई
मुझको ही पार लगा ले रे!

तू है बहुत दूर; हाथ हमारे बहुत छोटे, बहुत बौने। तू है आकाश में चमकते तारे जैसा; हम हाथ भी बढ़ाते हैं तो तुझ तक कहां पहुंच पाते हैं! हां, तू चाहे तो तेरे हाथ तो कहीं भी पहुंच सकते हैं। तेरी किरणें तो किसी भी हृदय के अंधकार को तोड़ सकती हैं।

ओ! मेरी श्वासों में उलझे
मेरी उलझन सुलझा दे रे!

हमारे लिए तो तू दूर है, लेकिन तू तो... तेरे लिए हम दूर नहीं हैं, क्योंकि तू हमारी श्वासों में उलझा है। हमें पता नहीं इसलिए दूर है। हमें पहचान नहीं, इसलिए दूर है। तुझे तो पहचान है, तुझे तो पता है!

ओ! मेरी श्वासों में उलझे
मेरी उलझन सुलझा दे रे!

तू चाहे तो अभी सुलझ जाए बात। तू चाहे और बात न हो, तो हम क्या करें? हम सिर्फ पुकार दे सकते हैं। हम अपने समग्र प्राणों से तुझे पुकार सकते हैं। हम रोएं-रोएं से पुकार सकते हैं। हमारा कण-कण आवाहन दे सकता है, रो सकता है।
वही कबीर कह रहे हैंः इब न रहूं माटी के घर में। मेरी तरफ से तुझसे कहे देता हूं, मेरी तरफ से कोई बाधा नहीं डालूंगा। तू कुछ कर, तोड़ दे मेरा तादात्म्य। मिटा दे मेरी भ्रांतियां। हिला और जगा दे मुझे। यह नींद और ये नींद के दुःस्वप्न बहुत झेल लिए।
इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।
अब तो बस तुझमें मिलने की आकांक्षा है, मगर मेरे बस के बाहर की आकांक्षा कर रहा हूं। तू है विराट, हम हैं क्षुद्र। तू है सागर, हम हैं बूंद। बूंद सागर को तलाश करने भी जाएगी, बहुत संभावना है रास्तों में कहीं भटक जाए, खो जाए, मरुस्थलों में डूब जाए। लेकिन अगर सागर बूंद को खोजने आए तो जरूर खोज लेगा। फिर बूंद को सागर का कुछ पता भी तो नहीं, जाए तो किस दिशा में जाए? सागर का कोई नाम-धाम भी तो हो, सागर की कोई पहली पहचान भी तो हो। सागर सामने भी आ जाएगा तो बूंद कैसे पहचानेगी कि यही सागर है? पहचान के लिए भी तो कोई पुराना परिचय चाहिए। हां, सागर पहचान लेगा, क्योंकि बूंद सागर की है।

ओ! मेरी श्वासों में उलझे
मेरी उलझन सुलझा दे रे!

यह उर में कैसी, उथल-पुथल
तन आज शिथिल, मन आज विकल,
निर्जीव उंगलियां तारों पर,
स्वर-लहरी में भारी हलचल।

मैं तो इतना ही निवेदन कर सकता हूं कि मेरे हृदय में एक उथल-पुथल मची है, एक क्रांति उठी है, एक ज्वाला जगी है।

यह उर में कैसी, उथल-पुथल
तन आज शिथिल, मन आज विकल,

और यह जो भी हो रहा है, आज हो रहा है, अभी हो रहा है।

मन आज विकल, तन आज शिथिल,
निर्जीव अंगुलियां तारों पर,
स्वरलहरी में भारी हलचल।

और मेरी अंगुलियां तो निर्जीव हैं, मैं तो मिट्टी ही हूं। तू छू दे तो जीवन मिले। तेरा स्पर्श आए तो मिट्टी सोना हो जाए। मैं तो जो छूता हूं वही मिट्टी सिद्ध होता है। सोना छूता हूं तो मिट्टी हो जाती है। तेरा दिव्य स्पर्श चाहिए, तेरा संस्पर्श चाहिए--तो क्रांति घट सकती है।
कबीर सिर्फ उदघोषणा कर रहे हैं।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, ...
अपना निवेदन किए देते हैं। कहते हैं कि मैं अपनी पहचान तुझे बता दूं, ताकि तू मुझे खोजे तो कुछ अड़चन न हो। तू तो कुछ कहता नहीं, कहां है! तू तो बुलाता नहीं। तू तो द्वार पर दस्तक देता नहीं। मैं ही तुझे अपना पता- ठिकाना बताए देता हूं।
छिनहर घर--टूटा-फूटा घर है यह। जहां टूटे-फूटे घर को देख लेना, समझना
कि मैं ही हूं।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, ...
टूटा-फूटा घर है, जर्जर टाटी है। बस माटी ही माटी है।
... घन गरजन कंपै मेरी छाती।
और मौत चारों तरफ घनघोर गरज रही है और मेरी छाती कंप रही है।
कबीर का वचन बड़ा प्यारा है। कबीर यह ही नहीं कह रहे हैं कि यह मेरे साथ
ही हो रहा है। जहां भी ऐसा हो रहा हो वहीं तू समझना कि यही अड़चन है, यही रोग है, यही बीमारी है। और तू ही निदान है और तू ही उपचार है!
कबीर अपने परिचय में हम सबका परिचय दे रहे हैं। कबीर अपने संबंध में
कह कर हम सबके संबंध में कह रहे हैं।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजन कंपै मेरी छाती।

मुस्कान के इरादे अश्कों में ढल गए
आए बहार बनके खिजां बनके ढल गए।

सारे जहां को रोशन कर सकते जिस शमां से
झुलसा दिया गुलशन को और खुद भी जल गए।

हकीकत न जान पाए गम और खुशी की हम
थे गुल गले लगाए कांटों में छल गए।
डूबे कभी यादों में खोए कभी ख्वाबों में दो कलों में आज के बरबाद पल गए।
नजरें तो टिकी हुई थीं चांद और सितारों पर खुद अपने ही आंगन की जमीं पर फिसल गए।
दूर-दूर खोजा करतीं जिन्हें निगाहें अफसोस बहुत पास से मेरे निकल गए।
मालूम ये न चल सका कब मौत आ गई
यूं हौले-हौले हाथों से बरसों निकल गए।
किस्मत को दोष दें या गफलत को अपनी यारो
कई मंसूर और रूमी इसी जहां में सम्हल गए।
हम आए बहार बनके खिजां बनके ढल गए।।

यह हम सबकी कहानी है। हम आते तो हैं बहार बन कर और पतझड़ बनकर विदा हो जाते हैं। आते हैं तो हम बड़ी रौनक से, बड़ी शान से। हर बच्चा वसंत की तरह आता है और हर बूढ़ा पतझड़ की तरह जाता है। आते तो हैं बड़े ख्यालों से, बड़ी अभिलाषाओं से। आते तो हैं बड़े अकड़े हुए, बड़े अरमानों से भरे हुए। आते तो

हैं न मालूम कितनी-कितनी इच्छाएं पूरी करने--और जाते हैं हाथ में केवल जीवन का विषाद, विफलता, रिक्तता लिए।
एक स्कूल में एक अध्यापक जीवन के सत्य को ही समझा रहा था। समझाने के बाद उसने बच्चों से पूछा, कि वह कौन है कि जो आता है तो सिंह की तरह गरजता हुआ आता है और जाता है तो कुत्ते की तरह दुम दबा कर जाता है।
एक छोटे बच्चे ने कहाः मेरे पिता जी! उसने देखा होगा बेचारे ने। बच्चे देखते रहते हैं। बच्चे काफी सावधान होते हैं। चित्त ताजा होता है अभी; दर्पण पर प्रतिबिंब ठीक-ठीक बनते हैं। सोच-विचार भला ज्यादा न हो, लेकिन दृष्टि अभी निर्मल होती है। देखता होगा रोज पिताजी आते तो हैं बड़े अकड़े हुए और जब घर से जाते हैं कुट-पिट कर, तो बिल्कुल पूंछ दबाए हुए चले जाते हैं।
लेकिन जीवन की भी ऐसी ही दशा है। आते हैं सभी सिंह की तरह गरजते हुए। तुमने भी कितने सपने पाले थे! अब कहां हैं वे सपने? उनकी धूल भी न बची। तुमने भी कितने अरमान नहीं संजोए थे, अब कहां हैं वे सारे अरमान? एक-एक गिरते गए। राह क्या चलते गए, अरमान उजड़ते गए। धीरे-धीरे विषाद का तिक्त स्वाद ही मुंह में रह जाता है। मरते समय हाथ बिल्कुल खाली होते हैं और मरते वक्त एक गहन उदासी होती है। वह मृत्यु की नहीं होती। मरते वक्त जब तुम किसी को देखते हो तो यह कभी मत सोचना कि वह मरने से डरने के कारण इतना परेशान हो रहा है। नहीं; वह परेशान इसलिए हो रहा है कि जीवन यूं ही चला गया। मौत तो सिर्फ अब इतना कह रही है कि अब और जीवन नहीं है और तुमने जो गंवा दिया अब उसको लौटा लेने का कोई उपाय नहीं। गए दिन, गए; अब आ नहीं सकते। जो अतीत हुआ, व्यतीत हुआ, अब उसे फिर नहीं पाया जा सकता।
और कैसी-कैसी बातों में गंवा दिए दिन, कैसे-कैसे खेल थे, कैसी-कैसी बचकानी बातें थीं! लड़ाई थे, झगड़े थे, द्वंद्व थे। ईर्ष्या थी, वैमनस्य था, लोभ था, मोह था। किन-किन चीजों पर बर्बाद कर दिया जीवन के अमूल्य अवसर को! इस सारे अवसर को तुम सेतु बना सकते थे परमात्मा से मिलने का।
कबीर कहते हैंः अब मैं सजग हो गया। अब और धोखा नहीं खाऊंगा। अब तो तय
कर लिया है।
इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाई रहूं मिली हरि में।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजन कंपै मेरी छाती।
दसवैं दारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी।
और कबीर कहते हैंः जब से यह निर्णय हुआ, जैसे ही यह निर्णय हुआ, कि दसवें द्वार पर ध्यान चढ़ गया। कबीर ने दस सीढ़ियां मानी हैं--परमात्म-विकास की, आत्म-यात्रा की, अंतर्यात्रा की। दसवीं आखिरी सीढ़ी है, जिसके पार फिर महाशून्य है, जहां से छलांग लगती है। वह सीमा-रेखा है--सीमांत, सरहद--जहां से मनुष्य सीमा तोड़ देता है और असीम के साथ एक होता है। वह दसवां द्वार। जिसको योगियों ने "सहस्रार" कहा है, कवियों ने और-और नाम दिए हैं, ऋषियों ने सप्तम द्वार कहा है--उसको ही कबीर दसवां द्वार कहते हैं।
भीतर के जगत को अनेक तरह से बांटा जा सकता है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। इसमें विवाद भी मत समझना, इसमें कुछ विरोध भी नहीं है। इस च्वांगत्सु- भवन को तुम कितने ही हिस्सों में बांट सकते हो, कई तरह से बांट सकते हो। खंबों के हिसाब से बांट सकते हो तो एक तरह के खंड होंगे। खंबों की बिल्कुल फिकर ही मत करो, भूमि के हिसाब से बांट सकते हो। तब और तरह के खंड हो जाएंगे। रहेगा यही भवन।
सब खंड कृत्रिम हैं; उनका उपयोग है, उपादेयता है उनकी, लेकिन उनका कोई सत्य नहीं है। लेकिन कुछ मूढ़ इन्हीं बातों में बहुत उलझे रहते हैं कि कबीर कहते हैं दस द्वार; योगी कहते हैं सात--सत्य कौन? सिर्फ मूढ़ ही इस तरह की चर्चाओं में पड़ते हैं। मेरे पास एक सज्जन आए। मैं आगरा में मेहमान था। उस इलाके में एक खास संप्रदाय का काफी प्रचार हैः राधास्वामी संप्रदाय। तो उन्होंने मुझसे कहा कि चौदह खंड होते हैं। राधास्वामी संप्रदाय के हिसाब से चौदह खंड होते हैं। कोई अड़चन नहीं, चौदह खंडों में बांट सकते हो। मगर जिस अकड़ से उन्होंने कहा, जिस मूढ़ता से उन्होंने कहा, वे यह कह रहे थे कि

कबीर के दस द्वार ठीक नहीं--चौदह। योगियों के सात तो बिल्कुल गलत हैं-- चौदह!
वे नक्शा भी लाए थे अपने साथ जिसमें चौदह खंड बताए गए हैं। आखिरी खंड-सच्च खंड! और उस नक्शे पर उन्होंने यह भी दिखाया हुआ था, ठीक-ठीक तो मुझे याद नहीं, लेकिन नक्शे पर यह भी दिखाया हुआ था कि महावीर पांचवें खंड तक पहुंचे, क्योंकि उन्होंने पांच की ही बात की। पतंजलि सातवें तक पहुंचे, क्योंकि उन्होंने सात की ही बात की। कबीर दस तक पहुंचे, क्योंकि उन्होंने दस की बात की। और मोहम्मद, जीसस कोई तीसरे पर अटका है, कोई चौथे पर अटका है। ऐसा पूरा सब नक्शा था, कौन कहां अटका है। सिर्फ उनके गुरु--राधास्वामी संप्रदाय के चलाने वाले--वे चौदहवें तक पहुंचे--सच्च खंड तक! उन्होंने चौदह की बात की।
मैंने उनसे कहा कि तुम बिल्कुल ठीक कहते हो; मैं तुम्हारे गुरु को जानता हूं, वे चौदहवें पर अटके हैं। असली में होते अट्ठाइस हैं। उन्होंने कहाः क्या कहते हैं? मैंने कहाः मैं अट्ठाइस तक पहुंचा, इसलिए अट्ठाइस होते हैं। तुम्हारे गुरु को मैं देख रहा हूं, चौदहवें पर अटके हैं। चिल्ला रहे हैं--उबारो! अब मेरा अट्ठाइस से चौदहवां इतना दूर है कि उबारूं भी कैसे! मैं उनसे कहता हूंः थोड़े और चढ़ो।
उन्होंने तो बड़ी गंभीरता से लिया। वे दूसरे दिन और पांच-सात लोगों को लेकर आ गए कि आपने तो हमें बहुत दुविधा में डाल दिया है--अट्ठाइस! मैंने कहाः तुम पागल हो, मैं मजाक कर रहा था! मजाक इसलिए कर रहा था कि तुम्हारी मूढ़ता भरा नक्शा देख कर मैं हैरान हुआ। कहीं बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद, कबीर, इनको तुम ऊपर-नीचे रख सकते हो! सीमा के जो बाहर गया, फिर उसको ऊपर-नीचे रखने का कोई उपाय नहीं। गंगा गिर गई सागर में और एक गंदा नाला भी गिर गया सागर में; अब भी तुम यही चिल्लाए चले जाओगे कि गंगा का जल पवित्र और गंदे नाले का जल पवित्र नहीं? अब कहां गंगा और कहां गंदा नाला! जब सागर में दोनों मिल गए, दोनों ने अपने तट छोड़ दिए, दोनों अपनी सीमा के पार हो गए... । गंदा नाला और गंगा भी एक हो जाते हैं सागर में। और तुम्हारे सागर में अभी कबीर और महावीर और बुद्ध जैसी गंगाएं भी एक नहीं हो पाए, क्या खाक सागर है! वहां भी कंपार्टमेंट, दीवालें उठा रखी हैं, खंड बांट रखे हैं! यह कोई सागर न हुआ।
और परमात्मा सागर से भी विराट है, क्योंकि सागर की भी सीमा होती है। उसकी तो कोई सीमा नहीं। सब विभाजन मनुष्यों तक हैं। जैसे ही हम मनुष्यता के पार उठे... मन के पार गए कि मनुष्य के पार गए। "मनुष्य" शब्द ख्याल रखना, मन से बना है।
दुनिया में दो ही तरह के शब्द हैं मनुष्य के लिए, दोनों बड़े अर्थपूर्ण हैं। एक तो है आदमी, जो "आदम" से बना है। आदम का अर्थ होता हैः मिट्टी। वह आदमी का एक पहलू है। अगर बाहर से देखो तो आदमी मिट्टी। इसलिए वह शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। उर्दू, अरबी, परसियन उन सब में जो शब्द हैं वे "आदम" से बने हैं। वे आदमी के एक पहलू की खबर देते हैं--उसके बाहर के रूप की, मिट्टी के। इब न रहूं माटी के घर में! वे माटी के घर की खबर देते हैं, "आदमी"--वह शब्द महत्वपूर्ण है। और दूसरा शब्द है "मन" उससे बना "मनुष्य"; उससे ही अंग्रेजी का बना--"मैन।" वह मन को ही अंग्रेजी में लिखने का ढंग है।
बस दुनिया की भाषाओं में दो ही तरह के शब्द हैं--एक अदम से बना है और एक
मन से। मन का अर्थ है--मनुष्य के भीतर की जो सोच-विचार की क्षमता है, वह जो ऊहापोह है, उससे मनुष्य बना। ये दो मनुष्य के पहलू हैंः बाहर मिट्टी; भीतर विचार। और एक मनुष्य का अतिक्रमण है, जहां न मिट्टी है, न विचार है, जहां दोनों के पार है। उसको ही हम आत्मा कहते हैं, परमात्मा कहते हैं। जहां मिट्टी भी छूट गई और विचार भी छूट गए। जहां न बाहर का घर रहा न भीतर का घर रहा। मन भीतर का घर है; तन बाहर का घर है। न जहां मन है न तन, वहां फिर कोई सीमा नहीं, वहां तुम पूरे आकाश हो! उस आकाश में कौन पीछे कौन आगे!
कबीर का यह दसवां द्वार एक और अर्थ में भी महत्वपूर्ण है। जैसे मैंने आदमी और मनुष्य के संबंध में कहा, ऐसे ही यह दस शब्द का आंकड़ा भी कबीर का बहुत महत्वपूर्ण है। अगर बाहर से परमात्मा के संबंध में सोचो तो वह एक है;

जैसा कि अद्वैतवादी कहते हैं, कि वह दो नहीं, एक। शंकराचार्य कहते हैंः वह एक है। एक को कहने का उनका ढंग है कि वह दो नहीं, अद्वय है, अद्वैत है। यह दार्शनिक प्रक्रिया है परमात्मा के संबंध में--विचार की। लेकिन बुद्ध इससे राजी नहीं। बुद्ध कहते हैंः वह शून्य है। यह परमात्मा को भीतर से देखने और भीतर से कहने का ढंग है।
पहला ढंग है दार्शनिक का; दूसरा ढंग है रहस्यवादी का। पहला ढंग है विचारक का; दूसरा ढंग है द्रष्टा का। दर्शनशास्त्र कहेगाः एक है परमात्मा। रहस्यवादी दीवाने, मस्त फकीर कहेंगेः शून्य है। एक और शून्य से मिल कर बनता है दस। कबीर ने दोनों चुन लिए। कबीर ने कहा कि कोई झगड़ा नहीं। विचार की तरफ से कहो तो एक है; बाहर से देखो तो एक है; भीतर से देखो तो शून्य है। हम दोनों को चुन लेते हैं। हम कहते हैंः दस है। और दसवां द्वार समाधि की अवस्था है। समाधि की अवस्था का अर्थ होता है, जहां सारी समस्याओं का समाधान हो गया। जहां कोई व्याकुलता न रही, कोई संताप न रहा, कोई चिंता न रही; कोई भय न रहा, कोई लोभ न रहा, कोई अहंकार न रहा। जब ऐसी परम अवस्था में तुम्हारी डुबकी लगती है, उसका नाम है तारी।
कभी-कभी संगीत को सुनते समय तुम जागे भी होते हो और जागे नहीं भी होते, ऐसी हालत बन जाती है। अगर तुमने मधुर संगीत सुना है, संगीत में तुम्हें रस है, अगर कभी किसी वीणावादक के साथ तुम डूब गए हो तो तुम्हें अनुभव होगा तारी का, तारी एक बड़ी अनूठी अवस्था है। तारी का अर्थ होता है--न सोए, न जागे; मध्य में खड़े। एक अर्थ में जागे, एक अर्थ में सोए। इस अर्थ में सोए कि जितना आदमी सोई अवस्था में विश्राम में होता है उतने ही तुम विश्राम में हो। इसलिए गहन संगीत को सुन कर वैसी ही ताजगी आ जाएगी जैसी गहरी निद्रा के बाद आती है। जैसे डुबकी लग गई। एक रसमय-विभोर हो गए। ताजे निकलोगे, पुनरुज्जीवित, नये-नये! जैसे गहरी नींद के बाद सुबह उठते हो। तुम्हारी पलकें उतनी ही ताजी होती हैं जितने गुलाब के फूल की कलियां, पंखुड़ियां। तुम्हारी आंखें उतनी ही ताजी होती हैं जैसे आकाश के तारे। तुम्हारे चेहरे पर वही ताजगी होती है जो ओस की होती है। ऐसा ही गहरे संगीत को सुन कर भी घट जाएगा। लेकिन तुम सो नहीं गए थे; तुम जागे भी थे। सच तो यह है कि तुम इतने जागे थे जितने तुम साधारणतः कभी जागे नहीं होते, क्योंकि साधारणतः तुम्हारे मन में हजार विचार चलते हैं, भागे-भागे होते हो--यह आया, वह गया... । कोई अंत ही नहीं आता; सिलसिला जारी ही रहता है। मन के रास्ते पर विचारों का आंदोलन चलता ही रहता है। तुम विचारों से घिरे ही रहते हो। जैसे राजनेताओं का घेराव हो जाता है न, ऐसा तुम्हारा घेराव चौबीस घंटे रहता है। तुम्हारे भीतर नारेबाजी चलती ही रहती है--झंडा ऊंचा रहे हमारा! तुम्हारे भीतर चिल्ल-पों मची ही रहती है। तुम्हारे भीतर खींचा-तानी होती ही रहती है। अगर तुम अपने भीतर गौर से देख लो तो तुम्हें पार्लियामेंट का पूरा दृश्य दिखाई पड़ जाए।
पार्लियामेंट को हमने हिंदी में अनुवाद किया है--"संसद।" बड़ी भूल हो गई। कभी न कभी इस शब्द को बदलना पड़ेगा। संसद शब्द का अर्थ होता हैः साथ बैठना जिन्हें आता हो। हद हो गई! कम से कम हमारी संसद तो संसद है ही नहीं। साथ बैठना, अरे साथ खड़े होना भी नहीं आता। लत्तम-लत्ता, जूता-जूती--इसका नाम संसद। कम से कम इस शब्द को तो भ्रष्ट न करते। इन शब्दों के कुछ अर्थ थे। ऐसा ही अर्थ होता है सभ्य का। सभ्य का अर्थ होता हैः जिसे सभा में बैठने का ढंग आता हो। संसद का अर्थ होता हैः जो साथ बैठ सके। संसद का ठीक वही अर्थ होता है, जो सदगुरु की मौजूदगी में सत्संग का होता है। और सांसद का अर्थ होता हैः जो जानता है कला साथ होने की, संवाद की। मगर कहां संवाद, गाली-गलौज होती है! सामान फेंका जाता है, कुर्सियां उठ जाती हैं। हर रोज रिकॉर्ड पर से चीजें कटवानी पड़ती हैं, क्योंकि ऐसे शब्द बोल जाते हैं सांसद, जो रिकॉर्ड में नहीं लिखे जा सकते। मैं-मैं, तू-तू ही नहीं होती; मां-बहनों की गाली भी हो जाती है। रिकार्ड पर कहां रखो उनको! आने वाली सदियां क्या कहेंगी कि यह क्या मामला था! रोज रिकॉर्ड से कटवाना पड़ता है, कि इतना हिस्सा छोड़ दो। आदमी रखने पड़ते हैं वहां, क्योंकि कुछ सांसद तो

ऐसे बिफर जाते हैं, ऐसी उछल-कूद मचा देते हैं, उनको पकड़ कर बाहर निकालना पड़ता है। यह संसद न हुई, कोई पागलखाना हुआ। साथ बैठने का ढंग... !
तुम अपने मन को गौर से देखो, तो तुम वहां खींचा-तानी देखोगे। दो विचारों को साथ बैठने का ढंग नहीं आता। विचार बड़े राजनीतिज्ञ होते हैं। कोई किसी की टांग खींच रहा है, कोई किसी की पूंछ खींच रहा है। कोई किसी की शेरवानी ले भागा।
तुम अगर थोड़ी देर के लिए शांत बैठ कर अपने विचारों को देखो, तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि इन विचारों के कारण ही बाहर के जगत में इतना उपद्रव है, क्योंकि यही विचार तुम्हारा निर्माण करते हैं, यही विचार औरों का निर्माण करते हैं। इनकी ही कलह बाहर के युद्ध बन जाती है। इनकी ही कलह बाहर फैल जाती है। अगर किसी तरह तुम्हारी खोपड़ी में खिड़कियां बनाई जा सकें और उन खिड़कियों में से झांका जाए तो जो दर्शन होगा, जो दिखाई पड़ेगा-- जो देख लेगा वही चौंकेगा। अभी तो कोई नहीं देख सकता, यही भला है। लेकिन तुम तो देख ही सकते हो। मगर तुम भी कभी शांत बैठ कर देखते नहीं कि क्या तुम्हारे भीतर चल रहा है। शायद इसी डर से नहीं देखते कि कौन देख कर और झंझट मोल ले, और चिंता बढ़ाए।
कभी बैठ कर दस मिनट एक कागज पर जो भी तुम्हारे मन में चलता हो लिख लेना--बिना संपादन किए। फिर पीछे जला देना, किसी को दिखाने की जरूरत नहीं। दरवाजे में ताला लगा कर और लिख कर और फिर जला देना। इस में डर की कोई जरूरत नहीं। संशोधन मत करना, संपादन मत करना, जोड़ना मत, हटाना मत--जैसा आए! तुम बड़े हैरान होओगे, क्या-क्या बातें तुम्हारे भीतर चल रही हैं और कहां-कहां से शुरू हो जाती हैं! मोहल्ले में एक कुत्ता भौंक गया, तुम्हें सुनाई पड़ गया, बस चल पड़ा एक सिलसिला। कुत्ते ने चला दिया! तुम भी कैसी चीजों के शिकार हो! कुत्ता भौंका, तुम्हारे भीतर एक सिलसिला शुरू हो गया। तुम्हें याद आ गई एक स्त्री जिससे तुम्हारा प्रेम था, जिसके पास कुत्ता था। अब कुत्ता तो एक तरफ रहा, अब वह स्त्री आ गई। अब उस स्त्री के साथ जो-जो बीता... और क्या नहीं बीता! जो भी दुर्दिन बीत सकते थे, सब बीते। और उसको ही सोचते- सोचते और कुछ आ जाएगा। चल पड़ा सिलसिला। अब तुम जिंदगी भर सोचते रह सकते हो। एक कुत्ता बटन दबा गया और कुत्ते को पता ही नहीं था कि उसने बटन दबा दिया। वह अनजाने में ही दबा गया और तुम चल पड़े। जब तुम घंटे भर बाद लौट कर सोचोगे कि अरे, कहां से शुरू हुई यह यात्रा और कहां पहुंच गई; यह मेरे भीतर क्या चलता रहता है--तो तुम बहुत हैरान होओगे! एक विक्षिप्तता है, एक पागलपन है। यह तुम्हारा मन है।
मन हमेशा ही पागल है। देह मिट्टी है, मन पागल है। इन दोनों का तुम जोड़ हो। आदमी और मनुष्य यह तुम हो अभी और जाना है दोनों के पार।
इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।
दोनों बातें कह रहे हैं कबीर कि अब मुझे आदमी भी नहीं होना और अब मुझे मनुष्य भी नहीं रहना; अब तो मुझे हरि हो जाना है--अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि! अब तो मुझे उसमें अपनी सारी सीमाएं डुबा देनी हैं। अब तो मुझे चैतन्य-रूप हो जाना है। अब तो मुझे सिर्फ साक्षी हो जाना है।
तुम्हारे भीतर एक तीसरा तत्व भी है, जो साक्षी है, जो देखता है--देह को,
मन को--बस उसके साथ एक हो जाना है। वही साक्षी परमात्मा की किरण है तुम्हारे भीतर। उसी साक्षी को पकड़ लो, तो उसी धागे को पकड़ कर तुम परमात्मा के सूरज तक पहुंच जाओगे। और जब दसवें द्वार पर पहुंचते हो तो तारी लग जाती है। देह का पता नहीं रहता, मन का पता नहीं रहता। सोए हो कि जागे हो, यह भी पता नहीं रहता। नींद जैसा विश्राम और जागरण जैसी ताजगी; दोनों साथ-साथ होती हैं। उसका नाम तारी है। तारी बड़ी अदभुत दशा है!
संगीत में कभी-कभी शायद तुम्हें अनुभव हो जाए या प्रकृति के किसी सौंदर्य को देखते समय--सूर्यास्त को या हिमालय पर होती हुई सुबह को, हिमालय के बर्फ से ढके शुभ्र-शिखरों पर, सूरज की गिरती हुई किरणें और जैसे स्वर्ण बिखर गया हो, उसे देख कर; कि रात आकाश तारों से भरी हो और उन आकाश के तारों की अनंत रहस्यमयता में तुम डूब गए हो--तो शायद कभी-कभी तुम्हें तारी का छोटा सा क्षण भर का अनुभव हो। मगर वह क्षण भर का होगा, क्योंकि आकस्मिक

है; तुमने उसकी कोई भूमिका निर्मित नहीं की है; तुमने उसकी कोई पात्रता अर्जित नहीं की है।
योगी को वही अनुभव पात्रता से होता है। वह अपने पात्र को साफ करता है। अपने मन को शांत करता है। अपने विचारों से अपने को मुक्त करता है। साक्षी में लीन होता है! धीरे-धीरे, धीरे-धीरे एक ऐसी घड़ी आ जाती है कि उसके भीतर सन्नाटा छा जाता है। तब सूर्यास्त उसके भीतर होने लगते हैं, सूर्योदय उसके भीतर होने लगते हैं। जब चांद-तारे उसके भीतर उगने लगते हैं, तब सारा आकाश उसके भीतर होने लगता है, डोलने लगता है। तब सारा ब्रह्मांड उसके भीतर खड़ा हो जाता है। तब वह भीतर के सौंदर्य को देख कर विस्मयविमुग्ध हो जाता है। वह अवस्था है तारी की। कल उसी को कबीर ने कहा था--खुमारी; आज कहते हैं-- तारी दोनों का एक ही अर्थ है।
दसवैं दारि लगि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी।
कबीर कहते हैंः यह इतनी ऊंची बात है कि उससे लौटना मुश्किल हो जाता है, उससे वापस आना मुश्किल हो जाता है।
रामकृष्ण को जब तारी लग जाती थी तो कभी-कभी छह घंटे, कभी आठ घंटे, एक बार तो छह दिन तक लगी रही। शिष्य बड़ी मुश्किल में पड़ जाते थे। उनके शरीर की रक्षा करनी पड़ती, देखभाल करनी पड़ती। वे किसी और लोक में ही खो जाते। भूल ही जाते तन-मन की सुध-बुध! कहीं और ही उनकी सुधि हो जाती, किसी और आयाम में उनका प्रवेश हो जाता। और जब भी वे वापस लौटते तो रोते कि मुझे फिर क्यों वापस भेज दिया, वापस बुला लो, वापस लौटा लो, अब यहां मन नहीं लगता! यह मेरा देश नहीं। इस परदेश में मुझे फिर क्यों भेज दिया? शिष्य तो प्रसन्न होते कि रामकृष्ण परमहंसदेव वापस लौट आए और परमहंसदेव रोते। उनकी तारी टूट गई, उनकी समाधि टूट गई।
दूर गवन आवन भयौ भारी।
कबीर कहते हैंः इतने दूर निकल गया था, दसवें द्वार पर कि लौटना मुश्किल हो जाता है, आना बहुत मुश्किल हो जाता है। और आ भी जाओ, तो भी तुम फिर वही नहीं होते जो तुम गए थे तब थे। जिसने परमात्मा की झलक पा ली, वह रूपांतरित हो जाता है। जिसने उसकी जरा सी भी अनुकंपा पा ली, जिसने दो बूंदाबांदी भी अपने ऊपर उसके अमृत की पा ली, फिर वह वही नहीं रह जाता जो था--आदमी नहीं रह जाता, मनुष्य नहीं रह जाता। वह भगवान ही हो जाता है-- भगवत्ता में लीन हो गया।
चहुं दिसी बैठे चारि पहरिया, जागत मूसि गए मोरी नगरिया।
और कबीर कहते हैंः जब तक यह न हो जाए तब तक सावधान रहना, होशियार रहना; क्योंकि चारों तरफ भी तुम अगर पहरेदार बिठा दो और पहरेदार जागे भी रहें, तो भी मौत आएगी और तुम्हें लूट कर ले जाएगी। सिर्फ समाधि में ही एक ऐसा धन मिलता है, जिसको कोई लूट नहीं सकता।
कहै कबीर सुनहु रे लोई...
"लोई" कबीर की पत्नी का नाम है। अपनी पत्नी को संबोधन करते हुए कह रहे हैंः कहै कबीर सुनहु रे लोई, भांनड़ घड़ण संवारण सोई। वह जो तोड़ने वाला है, जोड़ने वाला है, वही सम्हालने वाला भी है। इतने अदभुत सूत्र कहने के बाद कबीर यह याद दिलाते हैं लोई को, क्योंकि हो सकता है लोई के मन में सवाल उठा हो कि अब मैं क्या करूं? अब कैसे इस दसवें द्वार को पाऊं?
स्वभावतः जब कोई ऐसी अनिर्वचनीय घटना का संकेत देने लगेगा और तुम्हारे ओठों में उसका स्वाद धीरे-धीरे उतरने लगेगा और तुम्हारे कानों में उस संगीत की पहली-पहली दूर की ध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी--जैसे दूर, बहुत दूर कोई कोयल बोले--तो स्वभावतः सवाल उठेगाः कैसे इसे पाएं? हम तो पाने की ही भाषा जानते हैं। कैसे पाएं? क्या करें? हम तो करने और पाने की दुनिया में उलझे हुए हैं। देखा होगा कबीर ने कि जब वे यह बातें कह रहे थे कि--
इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजन कंपै मेरी छाती।
दसवैं दारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी।
चहुं दिसी बैठे चारि पहरिया, जागत मूसि गए मोरी नगरिया।

इन अदभुत वचनों को सुन कर लोई बैठी-बैठी सोचने लगी होगी। सदगुरु उन्हीं प्रश्नों के उत्तर नहीं देते जो तुम पूछते हो; उनके भी उत्तर देते हैं, जो तुम कभी नहीं पूछते; उनके भी उत्तर देते हैं जो तुम पूछना चाहते हो, लेकिन पूछ नहीं पाते; उनके भी उत्तर देते हैं जो तुम्हारे अचेतन में पड़े हैं और तुम्हारे मन में चेतन भी नहीं हो पाते। देखा होगा लोई की तरफ। देखा होगा कि लोई के मन में आकांक्षा जगी है--कैसे पाऊं इस दशम द्वार को? कैसे यह समाधि भी मेरी हो? कैसे अमृत को पा लूं? तत्क्षण उत्तर आ गया।
कहै कबीर सुनहु रे लोई, ...
--कि ऐ लोई, सुन। इन भ्रांति के शब्दों में मत खो जा, इन भ्रांति की आकांक्षाओं में मत डूब जा, सुन!
... भांनड़ घड़ण संवारण सोई।
वह जो तोड़ने-जोड़ने वाला है, वही सम्हालने वाला भी है। तुझे कुछ करना नहीं है; सिर्फ अपने को उस पर छोड़ दे। होनी होय सो होय। फिर उसे जो करना है वह करेगा।

वह रवि कहता है, "पगली इसका है कहां किनारा?
इस "उद्य-अस्त" में मेरा बीता है जीवन सारा।

मैं उठता-गिरता फिरता इस पथ में मारा-मारा।
पर फल न मिला है कुछ भी, हो भी कुछ "कूल-किनारा!"

"मैं" नित्य जहां से चलता आ जाता वहीं "सवेरे।"
ऐसे ही व्यर्थ गगन में देता रहता हूं फेरे।

पा जाता पार क्षितिज का पर पुनः क्षितिज आ जाता।
"अवसान" जिसे कहते हैं है वही "उदय" कहलाता।

जिसके "वियोग" की मेरे प्राणों में जलती ज्वाला, क्या जग में जनमा कोई उसका "पथ" पाने वाला।

जब "एकाकार" बनेंगे घुल-मिल कर "सांझ-सवेरे", जिस दिवस शांत होगी यह "ज्वाला" अंतर की मेरे,

जब होगा शून्य जगत सब अपना अस्तित्व मिटा कर, तब अपने आप मिलेंगे सब उस "अनंत" में जाकर।

है वही "मुक्त" कर सकता जिसने जग-जाल बिछाया।
यह वही मिटा सकता है जिसने यह खेल बनाया।

जिसकी इच्छा की विस्तृत सागर भी, एक लहर है, उस छवि के दर्शन पाने लोचन पाना दुस्तर है।

कितना ही ऊंचा कोई चढ़ जाए इस अंबर में।
वह उसे गिरा देता है अवनी पर फिर पल भर में।

कितनी "नौकाएं" निशि-दिन "सागर" पर बहती रहतीं, उन से "विनाश" की गाथा आ-आ कर लहरें कहतीं।

तू अपनी जर्जर "नौका" क्यों खेती व्यर्थ अकेली, जब सुलझाने वाला है अंत "अनंत" पहेली।

इस अपनी टूटी-फूटी नौका को लेकर उस अनंत सागर में उतरना, आकांक्षाओं
से भरे--यह कर लूंगा, वह कर लूंगा; ऐसा कर लूंगा, वैसा कर लूंगा--सब नासमझी है। छोड़ो उस पर।
मनुष्य एक ही काम कर सकता है--एक ही काम करने योग्य हैः छोड़ दे। कह दे
कि राजी हूं तेरी रजा से, कि तेरी मर्जी मेरी मर्जी! कि अब तुझसे भिन्न नहीं हूं। अब तू जहां चलाएगा, चलूंगा और जो तू कराएगा, करूंगा। जिस दिन ऐसा समर्पण घटित होता है, उसी दिन क्रांति हो जाती है; उसी क्षण मिल गए हरि में। अगर तुमने कहा कि ऐसा होना चाहिए, तो तुम अभी अपने संकल्प को अलग किए हो। और संकल्प अलग है तो तुम अलग हो। संकल्प का अलग होना अहंकार का अलग होना है।
छोड़ो सब संकल्प, छोड़ो सब विकल्प, छोड़ो अहंकार। कह दो उससे, कर जो तुझे करना हो, मैं हर हाल में राजी हूं! और फिर देखो, जो तुम कर नहीं पाए जन्मों- जन्मों में, वह क्षण में हो जाता है।
पी ले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम अमीरस का रे।
और तब फिर पीने ही पीने को है। मधुशाला के द्वार खुल जाते हैं। जिसने
सब छोड़ दिया, समर्पण किया... समर्पण ही संन्यास है... उसके लिए मधुशाला के द्वार खुल गए।
पी ले प्याला हो मतवाला--फिर पीओ जितना पीना हो।... प्याला नाम अमीरस
का रे--फिर उस परमात्मा के नाम का अमृत-रस पीओ।
बालपना सब खेलि गंवाया, ...
बचपन तो खेलने में बीत गया।
... तरुन भया नारी बस का रे।
और युवा हुए तो नये खेल सीख लिए। स्त्री हुए तो पुरुषों के साथ खेल चला; पुरुष हुए तो स्त्रियों के साथ खेल चला। वे भी नये खेल हैं। जवानी के खेल हैं। खिलौने जरा बड़े हैं। कुछ बहुत फासला नहीं, कुछ बहुत भेद नहीं।
बचपन में गुड्डे-गुड्डियों से खेलते थे। बड़े हो गए, असली आदमी--स्त्रियों से खेलने लगे; मगर खेल वही है।
विरध भया कफ-बाय ने घेरा, खाट पड़ा न जाय खस का रे।
फिर बूढ़े हो गए, फिर हजार बीमारियों ने घेर लिया, खाट पर पड़े रहे। खाट
से खसकना भी मुश्किल हो गया।
ऐसे जिंदगी गंवाते हैं अधिकतम लोग। और जब कि मजा यह है--कबीर कहते हैंः नाभि कंवल बिच है कस्तूरी,... और तुम्हारे ही नाभि-कमल के भीतर कस्तूरी छिपी है, परम धन छिपा है।... जैसे मिरग फिरे बन का रे। जैसे मृग खोजता फिरता है कस्तूरी को, जंगल में भटकता फिरता है, क्योंकि गंध उसे मालूम होती है--और गंध उसके भीतर से ही उठती है। तुम जिसे खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। धन खोज रहे हो; धन तुम्हारे भीतर छिपा है।
और जिसे तुम धन कहते हो, यह कोई धन है? यह धन तो क्षण भर में मिट्टी हो जाता है। अभी कुछ दिन पहले हजार रुपये के नोट चलते थे, धन थे। फिर हजार रुपये का नोट बंद हो गया, फिर वह धन नहीं रहा; फिर लोगों ने उसकी सिगरेट बना कर पी ली और किसी ने उस पर अपना नाश्ता बिछा कर कर लिया। जिसको कल तक ऐसा सम्हाल कर रखा था, लोगों ने रास्तों पर फेंक दिया। क्या करोगे, कागज का टुकड़ा हो गया! कागज का टुकड़ा कल भी था, अब भी वही है; कुछ भेद नहीं पड़ा। लेकिन बस मान्यता की बात थी। मान्यता थी तो धन था। आज मान्यता नहीं है तो धन नहीं है।
तुम जिस चीज में अपनी मान्यता चिपका देते हो, वही धन मालूम होने लगता है। जिस चीज में से मान्यता हट जाती है, वही व्यर्थ हो गया। सब खेल मन का है, मान्यता का है। लेकिन भीतर एक ऐसा धन है जो मान्यता का नहीं है--जो वस्तुतः धन है। और उसे पा लेते ही व्यक्ति धनी हो जाता है, सम्राट हो जाता है।
और भीतर एक ऐसा पद है, जिसे कोई नहीं छीन सकता। अब देखते हो मोरारजी भाई देसाई को--पड़े चारों खाने चित! कोई जीवन-जल पिलाने वाला भी नहीं मिलता। पद का कोई मूल्य है? आज हो पद पर तो छाती फुला कर बैठ जाओ। कल पद पर नहीं रह जाओगे, दो कोड़ी की कीमत हो जाएगी। कीमत पद की थी, तुम्हारी थी

नहीं। लेकिन भीतर एक पद है, जिसको कोई भी नहीं छीन सकता। वह पद दसवें द्वार का है, समाधि का है।
हमने तो समाधि को ही पद कहा है। परमात्मा को जिसने पाया, उसी ने पद पाया; बाकी तो सब बकवास है।
ऐसे जिंदगी मत गंवाना तुम जैसे आम लोग गंवा देते हैं। बचपन यूं गया खेल-खिलौनों में, फिर जवानी गई आपा-धापी में--धन-दौलत, पत्नी, बच्चे; फिर बुढ़ापा बीमारी में, रोग में। और फिर आई मौत।
बिन सदगुरु इतना दुख पाया, ...
कबीर कहते हैंः बिना सदगुरु के इतना दुख पाया।
... बैद मिला नहिं इस तन का रे।
यह जो भीतर की बीमारी थी, इसका कोई वैद्य नहीं मिला, जब तक कि सदगुरु नहीं मिला। बाहर की बीमारियों के लिए तो बहुत चिकित्सक मिल गए; लेकिन यह जो भीतर की बीमारी थी, जो घुन की तरह खाए जाती थी, यह जो रोग था बेहोशी का, यह जो मूर्च्छा थी, इसको मिटाने वाला तब मिला जब गुरु मिला।
बिन सतगुरु इतना दुख पाया, बैद मिला नहिं इस तन का रे।
माता-पिता बंधु सुत तिरिया, संग नहीं कोइ जाय सका रे।
कोई साथ नहीं जाएगा। इस जगत के सब संगी-साथी बस मन के भुलावे हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। तो उसने नसरुद्दीन को कहा कि नसरुद्दीन, एक वचन दे दो। मैं जानती हूं कि मेरे मरते ही तुम ज्यादा दिन अविवाहित न रह सकोगे। तुम विवाह करोगे ही।
नसरुद्दीन ने कहाः कभी नहीं! तुझे देखने के बाद तुझ जैसा अब कोई दिखाई नहीं पड़ता। कौन है तेरे जैसा सुंदर, कौन है तेरे जैसा सौम्य! अब तो जिंदगी भर रोऊंगा, तड़फूंगा तेरे लिए। अगले जन्म में मिलने की आकांक्षा और प्रार्थना और परमात्मा से मांग करूंगा। वही सब बातें कहीं जो कि पत्नियां मरती हैं तो पति कहते हैं; पति मरते हैं तो पत्नियां कहती हैं। लेकिन पत्नियां इतनी आसानी से इस तरह की बातें मानती नहीं।
पत्नी ने कहाः तुम छोड़ो ये बातें। मेरी घड़ी दो घड़ी की श्वास है, एक बात
का वचन दे दो कि मेरे जो कपड़े हैं वे तुम चाहे शादी कर लेना, मगर मेरे कपड़े और मेरे गहने तुम्हारी आने वाली पत्नी न पहने। उससे मेरी आत्मा को बड़ा दुख होगा।
पत्नियां भी बड़ी अजीब होती हैं। जिंदा में ही ईर्ष्या नहीं, मरने के बाद भी ईर्ष्या--कि तुम्हारी पत्नी न पहने मेरे कपड़े-लत्ते। नहीं तो मेरी आत्मा को बड़ा दुख होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः तू फिकर ही मत कर। वैसे भी फातिमा को तेरे कपड़े आएंगे नहीं। अभी-अभी कह रहा था कि तुझे देखा तो फिर कोई देखने जैसा न रहा; अब वे भूल ही गए! और मरने के बाद की बात ही अलग है! मामला तय ही है। रास्ता ही देख रहे हैं कि कब मरे। इधर वह मरी नहीं कि उधर उनका विवाह हुआ नहीं। एक अर्थ में विवाह वे कर ही बैठे हैं, सब तैयारी चल रही है।
डाक्टर आया था देखने पत्नी को तो डाक्टर ने नसरुद्दीन से कहा कि हालत बहुत खराब है, दुख की बात है, दो-तीन घंटे से ज्यादा नहीं जीएगी। नसरुद्दीन ने कहा कि आप दुख न करें, अरे तीस साल जब सहा तो तीन घंटे और
सह लेंगे। आप नाहक दुख न करें!
यहां कौन अपना है? यहां कोई अपना नहीं, यहां सब बातें हैं। कसमें हैं, वायदे हैं; मगर सब बातें हैं। और बातों में हम खूब उलझ जाते हैं। हम कागज के फूलों में भी अटक जाते हैं। हम झूठे-झूठे सुंदर शब्दों में भी खो जाते हैं।
माता-पिता बंधु सुत तिरिया, संग नहीं कोइ जाय सका रे।
जब लग जीवै गुरु गुत लेगा, धन जीवन है दिन दस का रे।
कबीर कहते हैं कि धन हो, यौवन हो--बस दस दिन की बात है। आया नहीं कि गया नहीं--पता भी नहीं चलेगा कि कब आया और कब गया। लेकिन एक संबंध इस जगत में है, जो शाश्वत है। पूरब ही उस संबंध को खोज पाया। पश्चिम अब नया-नया उस खोज में संलग्न हुआ है। अगर हमने दुनिया को कोई देन दी है, अगर कोई दान है पूरब का सारी दुनिया को, तो वह शिष्य और गुरु के संबंध का दान है। दुनिया में

वैसा कोई संबंध और जगह नहीं होता। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी सब जगह होते हैं; मगर शिष्य और गुरु का संबंध बिल्कुल पूर्वीय घटना है। पश्चिम में होता है विद्यार्थी और शिक्षक का संबंध; वह बड़ी अलग बात है। उसका कोई संबंध गुरु और शिष्य से नहीं है। गुरु और शिष्य तो बड़ी और बात है।
गुरु का अर्थ हैः जो तुम्हारे अंधेरे को तोड़ दे। और शिष्य का अर्थ है
कि गुरु को अंधेरे को तोड़ लेने दे, राजी रहे; क्योंकि अंधेरा तोड़ना कोई सस्ता काम नहीं। तुम्हें खंड-खंड करना होगा। तुम्हारे सारे न्यस्त स्वार्थ अस्त-व्यस्त हो जाएंगे। तुम्हारे भीतर क्रांति घटित होगी। तुम्हें अतीत से विच्छिन्न करना होगा। तुम्हारे भविष्य को नष्ट करना होगा, ताकि न बचे अतीत, न भविष्य; तुम वर्तमान के ही हो जाओ।
गुरु तो आग की तरह है; मृत्यु की तरह है। गुरु में मरना होगा, ताकि तुम्हारा पुनरुज्जीवन हो सके। गुरु तो आग है जिसमें जलना होगा, ताकि शुद्ध स्वर्ण की तरह तुम बच पाओ। यह तो समर्पण का, प्रेम का, श्रद्धा का आत्यंतिक रूप है। यह संबंध भर एक ऐसा है जो भौतिक नहीं है, शारीरिक नहीं है, जैविक नहीं है; जिसके लिए कोई तुम्हारे शरीर के रसायन में जगह नहीं है। स्त्री-पुरुष में आकर्षण है; वह तो शारीरिक रसायन का आकर्षण है। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि इंजेक्शन लगाने से ही फर्क हो जाता है। अगर तुम्हारा पति तुममें उत्सुक न हो, उसका मतलब इतना ही है कि उसमें पुरुष हार्मोन कम हो गए; इंजेक्शन दिलवा दो। पुरुष हार्मोन के इंजेक्शन दिलवाते ही से वह तुम में उत्सुकता लेने लगेगा, स्त्री में उत्सुकता लेने लगेगा। यह उत्सुकता उसकी नहीं है; यह बेचारा भ्रांति में है। यह तो इंजेक्शन से जो हार्मोन चले गए हैं उसके खून में, वे उसको तड़फड़ा रहे हैं, वे उसको परेशान कर रहे हैं। स्त्री को हार्मोन दिलवा दो तो स्त्री उत्सुक हो जाएगी पुरुषों में। हार्मोन अलग कर लो तो बदलाहट हो जाती है। अब तो स्त्री को भी पुरुष बनाया जा सकता है, पुरुष को स्त्री बनाया जा सकता है--हार्मोन इतने बदले जा सकते हैं।
तो यह तो खेल रसायनशास्त्र का हुआ। इसमें कुछ अध्यात्म नहीं है। इसमें तो पशु में और तुममें कोई भेद नहीं है।
मनुष्य-जाति के जितने और संबंध हैं, वे सभी साधारण हैं, प्राकृतिक हैं। सिर्फ गुरु और शिष्य का संबंध अनूठा है, जिसका प्रकृति में कोई स्थान नहीं है; जिसको मनोवैज्ञानिक नहीं समझा सकता; जिसको भौतिकशास्त्री नहीं समझा सकता; जिसको रसायनशास्त्री नहीं समझा सकता। शिष्य को काटो कितना ही, तुम उसमें कहीं भी ऐसा रसायन न पाओगे जिससे गुरु और उसके संबंध का पता चले। हां, अगर पुरुष है तो स्त्री के प्रति आकर्षण का कारण मिल जाएगा। अगर बाप है तो बेटे के प्रति आकर्षण का कारण मिल जाएगा। अगर मां है तो बेटे के प्रति आकर्षण का कारण मिल जाएगा। लेकिन शिष्य और गुरु का संबंध बिल्कुल ही अभौतिक है। और चूंकि अभौतिक है, इसलिए मृत्यु भी इसे नष्ट नहीं कर सकती। यह शाश्वत है।
कबीर ठीक कहते हैंः जब लग जीवै गुरु गुत लेना।
जब तक जीवन रहेगा, तब तक यह संबंध रहेगा। और जीवन तो सदा हैः यह आत्मा
का संबंध है। कुछ संबंध शरीर के होते हैं, कुछ संबंध मन के होते हैं। आत्मा का एक ही संबंध है। शरीर के संबंध शरीर की बदलाहट के साथ बदलते जाते हैं। जवानी में जिसको प्रेम किया था, उसको बुढ़ापे में तुम वैसा ही थोड़े प्रेम कर पाओगे। जवानी ही न रही, वह जोश ही न रहा; वह जैविकता ही बदल गई।
एक पति-पत्नी अपने विवाह की पचासवीं वर्ष-गांठ मना रहे थे तो उन्होंने तय किया... पत्नी ने ही सुझाव दिया। पत्नियां इन मामलों में बहुत होशियार हैं! सुझाव दिया कि हम उसी होटल में चलें जहां हनीमून के लिए गए थे--महाबलेश्वर चलें।
पति ने कहाः ठंड के दिन, वैसे ही मैं सर्दी-जुकाम से परेशान रहता हूं। मगर पत्नी कहां सुने, तो कहाः ठीक है। गए महाबलेश्वर। उसी कमरे में ठहरे, उसी होटल में। वही भोजन किया। वह भोजन भी नहीं पचा। शाम को ही डाक्टर को बुलाना पड़ा। पचास साल पहले जो भोजन किया था, अब उसको पचाने की सामर्थ्य भी तो चाहिए। मगर पत्नी भी जिद पर अड़ी थी। जब दोनों सोने लगे, पत्नी ने कहाः

अरे ऐसे ही सो जाओगे क्या? कम से कम चुंबन तो लो। पति ने कहाः चलो ठीक है, यह भी सही। अब महाबलेश्वर तक आ गए, अपाच्य हो गया; चलो यह भी सही। अब जो-जो झेलना है सो झेल ही लो। क्या पता था, नहीं तो हनीमून ही न करते। अगर पहले ही पता होता कि इतनी मुसीबतें पीछे आएंगी... । और एकदम पति उठा बिस्तर से और जाने लगा कहीं। पत्नी ने कहाः अरे कहां जा रहे? तो कहा कि दांत तो ले आने दे बाई! चुंबन क्या खाक लें! दांत तो बाथरूम में रख आया हूं। अपने दांतों की सफाई करके... बड़ी देर लग गई खटर-पटर करते। पत्नी ने कहाः क्या कर रहे हो? कहा कि दांत साफ तो कर लूं और लगे हाथ तेरे भी साफ कर दिए।
जवानी जवानी थी; अब बुढ़ापे में उसकी कोई सार्थकता नहीं रह गई, कोई अर्थ नहीं रह गया।
जो बचपन में सार्थक था वह जवानी में सार्थक नहीं रह जाता। बच्चे लिए फिरते हैं, अपने खिलौनों को छाती से लगाए फिरते हैं और फिर एक दिन व्यर्थ हो जाते हैं खिलौने। कोने-कातरों में पड़े कहां खो जाते हैं पता ही नहीं चलता। जिन खिलौनों के बिना सो भी नहीं सकते थे, छाती से लगा कर सोते तो ही नींद आती थी, फिर वे कहां पड़े-पड़े खो जाते हैं कूड़े-करकट में, कहां रद्दी में बिक जाते हैं, कुछ पता ही नहीं चलता। ऐसे ही एक दिन जवानी के खिलौने बुढ़ापे में व्यर्थ हो जाते हैं और बुढ़ापे के खिलौने मौत व्यर्थ कर देगी। सब खिलौने ही खिलौने हैं। इसमें कुछ एकाध तो ऐसा सेतु खोज लो, जो खिलौना न हो। कुछ तो एकाध ऐसा नाता बना लो, जो शाश्वत हो--जो जन्म और मृत्यु के पार हो। वही नाता गुरु और शिष्य का नाता है।
चौरासी जो उबरा चाहे, छोड़ कामिन का चसका रे।
कबीर कहते हैंः... कामिनी इस देश में सभी कामनाओं का प्रतीक है। चूंकि
ये पुरुषों को संबोधन किए गए होंगे वचन, इसलिए ठीक है, "कामिनी" का उपयोग किया। लेकिन स्त्रियां भी ध्यान रखेंः जो स्त्रियों के संबंध में सच है पुरुषों के लिए, वही पुरुषों के संबंध में सच है स्त्रियों के लिए। यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिए। नहीं तो ऐसी भ्रांति होती है कि स्त्रियों के कारण ही दुनिया में सारा उपद्रव है। और तुम्हारे साधु-संत यही समझाते फिरते हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। अगर स्त्री नरक का द्वार है, तो स्त्रियां तो नरक जा ही नहीं सकतीं, क्योंकि द्वार तो चाहिए। यह तो साधु-संत खूब फंसा गए! पुरुष ही द्वार से जा सकते नरक और स्त्रियां चाहे स्वर्ग न जा सकें, मगर नरक तो जा ही नहीं सकतीं। जब द्वार ही हैं तो नरक के बाहर ही रहेंगी। द्वार तो बाहर ही रहता है न। पुरुषों को भेज देती होंगी कि चलो भीतर।
न तो स्त्रियां नरक के द्वार हैं, न पुरुष। स्त्रियां पुरुषों की चाहना करती हैं; चाह में द्वार है नरक का। पुरुष स्त्रियों की चाहना करते हैं; चाह में द्वार है।
कामिनी कामना का प्रतीक है, समझना। फिर पुरुष की हो कि स्त्री की, कुछ भेद नहीं पड़ता। अगर चौरासी, अगर जन्मों-जन्मों की अनंतयात्रा से बचना हो तो कामना की, वासना की, तृष्णा की आदत छोड़ दो।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, नख-सिख पूर रहा बिस का रे।
क्या चाह रहे हो? यहां चाहने योग्य क्या है? तुम्हारी देह भी और दूसरे
की देह भी सब विष से भरी है।
मुरसिद नैनों बीच नबी है!
तुम दूसरों में तलाश रहे हो सौंदर्य को, सत्य को--पुरुष स्त्रियों में, स्त्रियां पुरुषों में; कोई धन में, कोई प्रतिष्ठा में।
मुरसिद नैनों बीच नबी है!
अरे पागल, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो, जिस सदगुरु की, जिस परमात्मा की, जिस नबी की, ऐ उपदेशक, ऐ मुर्शिद! वह तेरी आंखों के बीच में बसा है। दोनों आंखों के बीच में, जहां हम तीसरी आंख कहते हैं--तृतीय-नेत्र, शिव-नेत्र--इन दोनों आंखों के बीच में बसा है।"
स्याह सपेद तिलों बिच तारा, अवगति अलख रबी है।
उस मालिक की अदभुत गति है। पकड़ में न आए, बुद्धि की, तर्क के जाल में न आए--ऐसी रहस्यमय उसकी गति है।
आंखी मद्धे पांखी चमके, ...

इन दोनों आंखों के मध्य में वह पक्षी की तरह है। क्यों पक्षी की तरह? बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया। आंखी मद्धे पांखी चमके--क्योंकि वह उड़ सकता है। वह उड़ सकता है अनंत तक, इसलिए पक्षी कहा।
आंखी मद्धे पांखी चमके, पांखी मद्धे द्वारा।
और उस पक्षी के मध्य में ही द्वार है परमात्मा के प्रवेश का, क्योंकि
वह उड़ सकता है, पंख फैला सकता है।
तेहि द्वारे दुर्बीन लगावै, ...
वहीं से देखो। दोनों आंखों के मध्य में जो तीसरी आंख है, वहां से देखो। ये दो आंखें बाहर देखती हैं, तीसरी आंख भीतर देखती है। और जो भीतर देखती है वहीं आंख द्वार है परमात्मा की।
तेहि द्वारे दुर्बीन लगावै, ... वहीं लगाओ दूरबीन।... उतरै भवजल पारा।
तो संसार से पार हो जाओ। तो इस व्यर्थ के उपद्रव, दुख, पीड़ा, जाल से मुक्त हो जाओ।
सुन्न सहर में बास हमारी, तहं सरबंगी जावै।
हमारा आत्यंतिक निवास तो हमारे ही भीतर एक शून्य है उसमें है।
सुन्न सहर में बास हमारी, तहं सरबंगी जावै।
जहां सबको जाना है, आज नहीं कल, देर-अबेर जाना ही पड़ेगा। खोज लो अपने भीतर छिपे शून्य को, क्योंकि उसी शून्य में पूर्ण का अवतरण होता है। इस शून्य को ही ध्यान कहते हैं, समाधि कहते हैं। तुम्हारे भीतर यह शून्य छिपा है। लेकिन ये दो आंखें इसे न देख पाएंगी। इन दोनों आंखों के बीच में एक तीसरी आंख है।
भीतर देखो! बाहर देखने से ही नहीं मिलेगा। और भीतर देखो तो तुम्हारी तीसरी आंख पक्षी बन जाए, उड़ चले शून्य गगन में।
साहिब कबीर सदा के संगी, ...
और तब तुम जानोगे कि अरे मैं जिसे खोजता था वह तो मेरे भीतर बैठा था! कितना खोजा, कहां-कहां भटका और वह सदा से भीतर वास कर रहा था!
कबीर साहिब सदा के संगी, ...
तब तुम पाओगे कि मालिक तो भीतर बैठा था, सदा से साथ था।
... सब्द महल ले आवै।
बस शून्य के महल में तुम आ जाओ।
कौन लाएगा उस शून्य के महल में तुम्हें? सदगुरु का शब्द; उसकी पुकार; उसका झकझोरना।
सब्द महल ले आवै, साहिब कबीर सदा के संगी।
सदगुरु का हाथ पकड़ लो। सदगुरु को कैसे पहचानोगे? कोई बाह्य लक्षण तो होते नहीं। सौ मैं निन्यानबे तो झूठे गुरु होते हैं। कैसे पहचानोगे सदगुरु को?
सदगुरु की एक ही पहचान हैः किसी के पास बैठ कर शांति मिले, सुगंध मिले। किसी के पास बैठ कर संतोष मिले। किसी के पास बैठ कर संगीत मिले। किसी के पास बैठते-बैठते तारी लगने लगे। बस वही पहचान है, और कोई पहचान नहीं। जिसके पास बैठ कर तारी लग जाए, फिर उसका हाथ पकड़ लेना, फिर छोड़ना मत। तो उसके शब्द तुम्हें जगा देंगे। उसकी पुकार तुम्हें जगा देगी। एक न एक दिन उसकी सुनते-सुनते तुम्हारे भीतर भी यह भाव सघन हो जाएगा--
इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिलि हरि में।
अब इस मिट्टी के घर में और नहीं रहूंगा। अब हरि में मिलने की अभीप्सा
जग गई है। जिस दिन यह अभीप्सा जगे, उसी दिन समझना तुम्हारा सच्चा जन्म हुआ; सच्चे जीवन की शुरुआत हुई। तुम द्विज बने, ब्राह्मण बने, क्योंकि ब्रह्म की आकांक्षा जगी। जब तक ब्रह्म की आकांक्षा नहीं, तब तक प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है, ब्राह्मण नहीं। ब्रह्म की आकांक्षा ही ब्राह्मण बनाती है।

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
आठवां प्रवचन

प्रज्ञा संन्यास है

पहला प्रश्नः ओशो!
तुम्हें पाके मैंने जहां पा लिया है
जमीं तो जमीं आसमां पा लिया है।
जमाने के गम प्यार में जल गए हैं
उम्मीदों के लाखों दीये जल गए हैं
न उजड़ेगा जो, आशियां पा लिया है!
तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है!

कृष्ण चैतन्य! मनुष्य दिखाई पड़ता है बहुत छोटा; है नहीं। लगता तो है जैसे ओस की एक बूंद; पर है महासागर। ऊपर से देखो तो ओस की बूंद ही मालूम होगा; भीतर जागो तो असीम सागर है।
मुझे पाकर तुमने मुझे नहीं पाया, अपने को ही पाने की कला पा ली है। मुझे पाकर तुम्हें अपने को ही भीतर से देखने का राज, कुंजी मिल गई है। भीतर से देखो स्वयं को तो तुम्हारी कोई सीमा नहीं है; सारा आकाश तुमसे छोटा है; सारे चांद तारे तुम्हारे भीतर हैं। लेकिन हम मनुष्य को बाहर से देखते हैं। हम अपने को भी बाहर से देखते हैं। दूसरे को बाहर से देखें, समझ में आता है; लेकिन अपने को भी दर्पण में देखते हैं और दर्पण में देख कर पहचानते हैं। हमारी खुद से भी पहचान अंतर की नहीं है, जो कि होनी चाहिए, क्योंकि वहीं हम विराजमान हं, वहीं हमारा होना है। जहा हम हैं वहीं पैर जमा कर अपने को नहीं देखते हैं। खुद को देखने के लिए भी दर्पण चाहिए। दर्पण में क्या दिखाई पड़ेगा? रूप-रेखा, रंग-ढंग, आकृति। वह तुम नहीं हो। न तुम देह हो, न तुम मन हो--तुम साक्षी हो।
सदगुरु के पास बैठने का और तो कुछ अर्थ नहीं है; यही अर्थ है कि साक्षी
का धीरे-धीरे जागरण होने लगे। तुम नींद में थे। मैंने तुम्हें पुकारा और तुम थोड़ी करवट बदलने लगे हो, तुम्हारी पलकें थोड़ी-थोड़ी खुलने लगी हैं। तुम्हें जो अनुभव हो रहा है, वह तुम्हारा ही है, उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। तुम्हारे भीतर जो पड़ा था उसे ही मैंने झकझोरा है। जो संपदा तुम्हारी थी, तुम्हें उससे परिचित कराया है। तुम्हें तुमसे परिचित कराया है! तब ऐसा होगा। लगेगा ऐसा ही। प्रथमतः ऐसी ही प्रतीति होगी--"तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है, जमीं तो जमीं आसमां पा लिया है। जमाने के गम प्यार में जल गए हैं... "
मनुष्य दुखी क्यों है? बस छोटी सी बात के कारण कि उसे प्यार की कला नहीं आती। उसकी पीड़ा क्या है? कि प्रेम प्रकट नहीं हो पाता। अप्रकट प्रेम ही पीड़ा बनता है और प्रकट प्रेम ही आनंद हो जाता है। अप्रकट प्रेम ऐसा है जैसे बीज और प्रकट प्रेम ऐसा है जैसे बीज वृक्ष बना, वसंत आया, फूल खिले, गंध उड़ी। वृक्ष जब फूलों से लद जाता है तो उसके आनंद का पारावार नहीं है, क्योंकि पा ली उसने अपनी नियति, अपना गंतव्य, अपना लक्ष्य। अपने को व्यक्त कर लिया। गा लिया गीत जो गाना था। नाच लिया नृत्य जो नाचना था। कर लीं बातें चांद-तारों से। हो गया संवाद सूरज से। हवाओं के साथ भांवर डाल ली। आकाश में शाखाएं फैला दी हैं। पृथ्वी में दूर तक जड़ें पहुंचा दी हैं। पृथ्वी के रस को भी चखा, आकाश की मुक्ति को भी जाना। परिपूर्णता हो गई। मनुष्य भी एक बीज है। और जब तक उसमें सहस्रदल कमल का फूल न खिल जाए-- जिसको योगी कहते सहस्रदल कमल; जिसको बुद्ध ने कहा निर्वाण; जिसको महावीर ने कहा कैवल्य; जिसको कबीर कहते हैं सुरति या दशम द्वार--दसवां द्वार न खुल जाए... मनुष्य की देह में नौ द्वार खुले हुए हैं, एक द्वार बंद है। नौ द्वार यानी नौ छेद। जननेंद्रिय से लेकर आंखों तक गिनती कर लेना, नौ छेद हैं; इनसे तुम जगत से जुड़े हो। आंख से तुम जुड़े हो प्रकाश से। कान से तुम जुड़े हो ध्वनि से। नाक से तुम जुड़े हो गंध से। मुंह से तुम जुड़े हो स्वाद से। ये नौ द्वार तुम्हें जगत से जोड़े हुए हैं। यही तुम्हारा लेन-देन है, व्यवसाय है

जगत से, व्यापार है। एक दसवां द्वार भी है--सहस्रार। तुम्हारे मस्तिष्क में सबसे ऊंचाई पर वह बंद पड़ा है। वह तब तक बंद रहेगा जब तक तुम जागोगे नहीं। जब तक ध्यान की गरिमा गहनतम न होगी जब तक ध्यान की त्वरा न होगी, जब तक ध्यान एक जलती हुई अग्नि न बन जाए, तब तक दसवां द्वार नहीं खुलेगा। जैसे ही ध्यान की अग्नि प्रज्वलित होगी, झटके से दसवां द्वार खुल जाता है। कबीर कहते हैंः खुली किबरिया! और जैसे ही दसवां द्वार खुलता है, जैसे नाक के बिना गंध नहीं, आंख के बिना रंग नहीं--ऐसे ही दसवें द्वार के बिना परमात्मा नहीं। दसवें द्वार से परमात्मा का अनभुव होता है। दसवें द्वार की प्रतीति परमात्मा है। जैसे ही दसवां द्वार खुला अचानक, फिर किसी प्रमाण की कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुम जानते हो तुम परमात्मा हो और तुम जानते हो शेष सब भी परमात्मा है।
लेकिन दसवें द्वार को खोलने के दो उपाय हैंः एक है ध्यान; एक है प्रेम। बुद्ध, महावीर ध्यान के आग्रही हैं। खूब जागरण को सघन करो--इतना सघन, जैसे कि किरणें इकट्ठी हो जाएं तो आग बन जाएं। ऐसे तुम्हारे जागरण की किरणें इकट्ठी हो जाएं, मारें धक्का तो खुले किबरिया! भक्त कहते हैं प्रेम। प्रीति की ऐसी उमंग तुम में उठे, ऐसा अंधड़, ऐसा तूफान उठे कि सारे अस्तित्व को डुबा देने की क्षमता तुम में आ जाए। बेशर्त प्रेम तुम कर सको तो प्रार्थना हो जाती है। मांगो मत प्रेम के उत्तर में कुछ, तो प्रेम ही किबड़िया को खोल देगा। मांगा कि चूके। मांगा कि भिखमंगे हुए। प्रेम अगर इसलिए दिया कि उत्तर में कुछ मिल जाए... और लोग इसीलिए प्रेम करते हैं कि उत्तर में कुछ मिल जाए। देते कम, लेना ज्यादा चाहते हैं। आदमी की व्यवसायी बुद्धि ऐसी है। व्यवसाय का अर्थ ही यह होता हैः लगाओ कम पूंजी, कमाओ ज्यादा।
एक यहूदी ने नया-नया विक्रेता अपनी दुकान पर रखा था। यहूदी बाहर गया था, लौटा तो विक्रेता बहुत प्रसन्न था। उसने कहा कि मालिक, आप जान कर प्रसन्न होंगे कि जो कोट वर्षों से आप नहीं बेच पाए वह मैंने बेच दिया। वह जो काले रंग का कोट था वह बेच दिया।
कितने में बेचा? यहूदी ने बड़े घबड़ा कर पूछा। तो उसने कहा कि जितने उस
पर दाम पड़े थे--अट्ठानबे सेंट। यहूदी ने माथा ठोक लिया, कहाः पागल, वह अट्ठानबे डालर का कोट था, अट्ठानबे सेंट का नहीं। बेचारा विक्रेता तो एकदम हतप्रभ हो गया। सोचा था धन्यवाद मिलेगा, यह तो मुसीबत हो गई। उसके चेहरे का रंग उड़ गया, पीला जर्द हो गया, चक्कर सा मालूम होने लगा। लेकिन यहूदी ने कहाः घबड़ा मत, फिर भी दस परसेंट का लाभ हमको हुआ है।
व्यवसाय का तो ढंग यही हैः लगाओ कम से कम।
मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा कि काफी मजे-मौज चल रहे हैं, खूब व्यवसाय चल रहा है मालूम होता है! बोला कि हां, अच्छा चल रहा है। एक रुपये में चीज खरीदते हैं, दो में बेच देते हैं। एक परसेंट का लाभ, मगर बस मजा चल रहा है।
एक रुपये की चीज को दो रुपये में बेचता है, इसको एक परसेंट का लाभ बता रहा है! लोग कम से कम लगाएं और ज्यादा से ज्यादा ले लें, यह व्यवसाय बुद्धि है। और प्रेम में भी हम इससे भिन्न नहीं करते हैं। कौड़ी देना चाहते हैं। हीरा पाना चाहते हैं। मगर जो व्यवसाय में चल जाता है, वह प्रेम में नहीं चलेगा। प्रेम व्यवसाय नहीं है। प्रेम से ज्यादा गैर-व्यावसायिक और कोई जीवन आयाम ही नहीं है। यह काम ही सौदे का नहीं है। यह काम तो दीवानों का है। और दीवानों की बड़ी कृपा है होशियारों पर, क्योंकि अगर होशियार ही होशियार दुनिया में होते तो प्रेम के फूल बिल्कुल समाप्त ही हो गए होते; प्रेम की भाषा ही भूल गई होती। यह तो कभी-कभी कोई दीवाना, कोई कबीर, कोई मीरा, कोई चैतन्य पैदा हो जाता है और प्रेम के पाठ हम भूल नहीं पाते; फिर-फिर हमें प्रेम की याद दिला जाता है, हमारी क्षमता की खबर दिला जाता है।

काश, तुम बेशर्त दे सको! देने में ही आनंद पा सको, लेने में नहीं। दान
बन सको। धन के दान को मैं दान नहीं कहता, क्योंकि धन का दान तो बड़ी बेईमानी का दान है। उन्हीं से चुराया था, उन्हीं से छीना था, उन्हीं को वापस दे

दिया! उन्हीं की जेबें काटीं, उन्हीं को दान कर दिया! यह कोई दान हुआ? धन तो तुम लेकर आए नहीं थे, इसलिए धन का दान कैसे करोगे? धन तो यहीं बटोरा। फिर यहीं बटोरा और यहीं दान कर दिया। प्रेम का ही दान हो सकता है, क्योंकि प्रेम तुम लेकर आए थे, यहां बटोरा नहीं। वह तुम्हारी निजता है। वह तुम्हारे प्राणों का स्वभाव है। वह तुम्हारे भीतर की गंध है। वह परमात्मा ने तुम्हारे भीतर रचा है। उसे तुमने किसी से लूटा नहीं है, किसी का शोषण नहीं किया। नहीं तो एक तरफ शोषण करते रहो और दूसरी तरफ मंदिर बनाते रहो। लोग करोड़ का शोषण करते हैं; लाख रुपये का दान कर देते हैं; सोचते हैं ऐसे भगवान को भी राजी रखेंगे, ऐसे परलोक में भी इंतजाम कर लेंगे। यहां भी मजे से रहेंगे, वहां भी मजे का इंतजाम कर रहे हैं। पहले से ही वहां के लिए भी उन्होंने सूत्रपात डाल दिए।
लेकिन धन तुम्हारा है ही नहीं। यह ख्याल कि मैंने धन का दान किया-- भ्रांति है, अहंकार है। हां, प्रेम तुम्हारा है। और प्रेम का ही मात्र दान हो सकता है। भक्त कहता है प्रेम को लुटाओ, दो! और मजा यह है कि जितना दोगे उतना ही पाओगे! तुम्हारे भीतर अजस्र स्रोत खुलने लगे। जैसे कुएं से कोई पानी भरता रहे तो नये-नये झरने कुएं को भरते जाते हैं। कंजूस हो कोई, कुएं पर ताला मार दे--डर से कि कहीं कुएं का पानी न चुक जाए--तो सड़ जाएगा पानी, तो जहर हो जाएगा पानी, तो पीने योग्य न रह जाएगा। सांप-बिच्छू पलेंगे कुएं में। और किसी दिन अगर जरूरत हुई तो जान लेगा उस कुएं का पानी। कुआं तो ताजा रहता है, जीवंत रहता है--जितना पानी खींचा जाए उतने ही झरने खुले रहते हैं। जब पानी नहीं खिंचता तो झरने अपने आप बंद हो जाते हैं; उनकी जरूरत ही न रही।
ऐसा ही तुम पाओगे। जितना प्रेम दोगे उतना ही तुम्हारे भीतर नये झरने फूटने लगेंगे। जिस दिन तुम बांटते ही रहोगे, गणना भी न करोगे, तौलोगे भी नहीं कि कितना बांटा, हिसाब भी न रखोगे कि कितना बांटा--उस दिन तुम्हारे भीतर अनंत स्रोत खुल जाएंगे, उन्हीं अनंत स्रोतों से जो ऊर्जा बहेगी, उसके धक्के से किबड़िया खुल जाएगी, दसवां द्वार खुल जाएगा।
मैं तो दोनों रास्तों से राजी हूं। तुम्हें जो पट जाए, तुम्हें जो रुच जाए। मेरा किसी रास्ते पर कोई मोह नहीं है। सब रास्ते उसी तक ले जाते हैं, इसलिए रास्तों का क्या मोह करना!
कृष्ण चैतन्य, तुम कहते होः "जमाने के गम प्यार में जल गए हैं।"
निश्चित ही प्रीति जला देती है सारे दुखों को, सारी चिंताओं को। प्रेम की अग्नि राख कर देती है कूड़ा-करकट को, बच रहता है खालिस सोना। और तब निश्चित ही जीवन को एक नई दिशा मिलती है, नहीं तो उलझे हैं व्यर्थ की चिंताओं में। जिन चिंताओं से कुछ लेना-देना नहीं है, उनमें उलझे हैं। कितनी ही चिंताएं करो, जिनका कोई हल तुम्हारे हाथ में नहीं है, उनमें उलझे हैं। जिनसे कुछ छुटकारा नहीं--जैसे मृत्यु--उसकी कितनी चिंता लोग करते रहते हैं! मगर मृत्यु तो निरपवाद रूप से आएगी चिंता क्या करनी है! आनी ही है, बात खतम हो गई। लेकिन उसकी ही चिंता में लगे रहते हैं। मरते दम तक चिंता करते रहते हैं। किसी तरह बचे रहें! बच कर कुछ पाया नहीं, जिंदगी खाली की खाली थी, जिंदगी रूखी-सूखी थी, एक फूल भी न खिला, एक बूंद भी अमृत की न निर्मित हुई; मगर फिर भी--जीना है; जीने का मोह, तृष्णा! कौन जाने आज तक नहीं हुआ, कल हो जाए, तो कल को बचाना है। जीना है। मृत्यु से घबड़ाए हुए हैं। और मृत्यु तो आकर रहेगी। घबड़ाने में ही जिंदगी चली जाएगी और मृत्यु तो आकर रहेगी। किसी ने दो शब्द कह दिए कठोर और तुम दुखी हो गए--और कितनी चिंताएं! वर्षों बीत जाते हैं और किसी के कठोर शब्द तुम्हारे भीतर गूंज ही उठाते रहते हैं--प्रतिशोध की, बदले की। शब्द ही तो थे, शब्दों में भी क्या रखा है? सब अर्थ मनगढ़ंत हैं।
खलील जिब्रान की प्रसिद्ध कहानी है। एक आदमी लेबनान आया, परदेस से आया है। लेबनान की भाषा नहीं जानता। भौचक्का सा घूम रहा है। बड़ा नगर। देहाती है। एक महल जैसे भवन में लोगों को आते-जाते देखा। बहुत लोग आ-जा रहे हैं तो वह भी चला गया। भीतर पहुंचा तो उसे बिठाया गया। बहुत लोग भोजन कर रहे हैं, तो उसने समझा कि शायद राजमहल है, राजा ने कोई भोज दिया है। मन ही

मन सोचा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरे ही स्वागत में भोज दिया हो, क्योंकि मैं ही एक अजनबी हूं यहां। और तभी थाली सज कर आ गई--सुंदर-सुंदर खाद्य पदार्थ, सजे हुए बैरे! वह थी एक होटल, मगर उसने समझा कि राजमहल है। राजमहल समझा तो उसके मजे का अंत न रहा। व्याख्या की बात है। फूला नहीं समाया। कहा कि राजा हो तो ऐसा हो। एक हमारा राजा है जिसने कभी एक दो कौड़ी का भी आयोजन न किया! इसको कहते हैं दिल! इसको कहते हैं दिलदारी!
फूला जा रहा था, मस्ती से भोजन कर रहा था। जब भोजन पूरा हो गया तो बैरा बिल लेकर आया। बैरे को वह समझ रहा था कि कोई राजदूत। शुभ्र वस्त्रों में सजा-बजा बैरा था! बिल लेकर आया तो उसने समझा कि राजा ने धन्यवाद दिया है कि आप आए, बड़ी कृपा की, भूल मत जाना, कुछ भूल-चूक हुई हो तो क्षमा करना, फिर आते रहना। पढ़ तो सकता नहीं था, भाषा तो आती नहीं थी, तो वह झुक-झुक कर धन्यवाद दिया बैरे को। बैरा मांगे पैसे, वह झुक-झुक कर धन्यवाद दे। बैरा जितना पैसे मांगे वह उतना ही धन्यवाद दे। बैरे ने कहा कि अच्छी झंझट हुई! लेकर मैनेजर के पास गया। सोचा कि शायद राजदूत अपने प्रधान के पास ले जा रहा है। मैनेजर का शानदार कमरा था वह झुक-झुक कर खूब धन्यवाद देने लगा। मैनेजर ने कहाः यह आदमी तो अजीब है! हम कुछ कहते हैं, यह कुछ कहता है! यह कौनसी भाषा बोल रहा है, यह भी पता नहीं। और मस्त बड़ा दिखता है। पागल है या पिए है? इसे अदालत ले जाओ।
अदालत का भवन और भी बड़ा था। उसने कहा कि मालूम होता है, सम्राट ने स्वयं बुलवाया है। मजिस्ट्रेट की शान देख कर तो वह समझा कि सम्राट है। वह तो एकदम चारों खाने गिर पड़ा नीचे--साष्टांग दंडवत! और सम्राट को झुक-झुक कर नमस्कार करने लगा। मजिस्ट्रेट ने कहाः यह आदमी या तो पागल है या पक्का शरारती है। हम कुछ कहते हैं, यह कुछ कहता है। उत्तर देता ही नहीं। इसको गधे पर बिठा कर, तख्ती लटका कर इसके गले में कि यह आदमी बेईमान है, बदमाश है, गांव में घुमाया जाए।
वह तो बड़ा ही खुश हुआ। जब उसके गले में तख्ती लटकाई गई तो उसकी छाती फूल कर दुगनी हो गई। उसने कहाः वाह रे लोगो, खिलाया भी पिलाया भी, राजा ने खुद स्वागत भी किया और अब जुलूस निकाल रहे हैं--शोभायात्रा! बच्चे भी इकट्ठे हो लिए, कुछ लोग भी पीछे चल पड़े। फालतू लोगों की कमी तो हैं नहीं दुनिया में। वे ऐसे ही घूमते रहते हैं कि कहीं कोई जुलूस हो, कोई हो-हल्ला हो तो साथ हो लें। वह झुक-झुक कर लोगों को नमस्कार करे और तख्ती दिखाए-- क्योंकि यह समझे कि सम्राट ने, कुछ प्रमाण-पत्र दिया है; शायद पद्मभूषण या भारतरत्न या ऐसी कोई पदवी दी है या क्या मामला है! भीड़ में लेकिन एक ही दुख उसे खल रहा था कि आज इतना बड़ा स्वागत हो रहा है, काश अपने गांव का कोई होता! वही एक बात अखर रही थी कि गांव में जाकर कहूंगा तो कोई मानेगा नहीं। वे कहेंगे, सब झूठी बातें कर रहा है, गप्प-शप्प मार रहा है। एकाध भी गवाह होता।
तभी उसे भीड़ में अपने गांव का एक आदमी दिखाई पड़ा, जो कि कोई दस-पंद्रह साल पहले गांव छोड़ दिया था और लेबनान आकर बस गया था। उसने उस आदमी की तरफ देखा और उसको इशारे से हाथ किया कि देखो, तख्ती देखो! मेरी हालत देखो! क्या मजा आ रहा है! गांव का आदमी अब तक भाषा समझने लगा था, लेबनान का रंग-ढंग समझने लगा था, उसने एकदम सिर झुकाया और भीड़ में गुप्प हो गया। इसने कहाः हद हो गई! ईर्ष्या की भी सीमा होती है! अरे ईर्ष्यालु तेरा स्वागत नहीं हुआ तो इतनी ईर्ष्या की तो बात न थी। दो शब्द तो बोल लेता ऐसे भाग जाना... । व्याख्या की बात है। किसी ने दो शब्द कह दिए, तुम क्या व्याख्या करते हो, सब इस पर निर्भर करता है। जैसी चाहो व्याख्या कर लो। शब्दों में क्या है! शब्दों में कुछ अर्थ थोड़े ही है। शब्द तो कामचलाऊ हैं। उनका कोई मूल्य नहीं है। न गालियों का कोई मूल्य है, न गीतों का कोई मूल्य है। समझो तो गालियां और गीत सब एक जैसे हैं। मान और सम्मान समान हैं। सफलता-असफलता समान हैं। प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा समान हैं। यश-अपयश समान हैं।
प्रेम का जब उदभव होता है तो सब कूड़ा-करकट जल जाता है। फिर अपमान खलता नहीं, दया आती है, उलटे दया आती है कि बेचारा नाहक कष्ट उठा रहा है। न मालूम कितना भीतर जला होगा, भुना होगा। न मालूम भीतर कितने क्रोध में पीड़ा पाई

होगी, तब ये गालियां आई हैं। गालियां ऐसे तो पैदा नहीं हो जातीं; जैसे बच्चे ऐसे ही तो पैदा नहीं हो जाते, पहले नौ महीने गर्भ में मां को कष्ट झेलना पड़ता है। वैसे ही जो आदमी गाली देता है, वह भी कोई से आकस्मिक रूप से गाली आकाश से थोड़े ही उतरती है। गर्भ होता है गाली का भी। नौ महीने तक उसको गर्भ में रखना पड़ता है। बड़ी तकलीफ झेलनी पड़ती है। तुम्हें तकलीफ देने के पहले वह खुद बहुत तकलीफ झेल लेता है, तभी तुम्हें तकलीफ देता है। और तुम्हारे ऊपर है कि तुम तकलीफ लो या न लो। गाली न लो, बात खत्म हो गई।
और जो प्रेम की कला जानता है वह गाली नहीं लेता। जिसे फूल चुनने आ गए
वह क्यों कांटे चुने? माना कि कांटे हैं गुलाब की झाड़ी में, तो रहने दो। जिसे फूल चुनने आ गए वह कांटों से बच जाता है, फूल चुन लेता है। तब यह सारा जगत नई अर्थवत्ता से, एक नई गरिमा से भर जाता है।
तुम ठीक कहते कृष्ण चैतन्यः
"जमाने के गम प्यार में जल गए हैं
उम्मीदों के लाखों दीये जल गए हैं"
और फिर ही उम्मीद का दीया जलता है। क्योंकि तब ही पहली बार तुम्हें लगता है कि हां, जीवन व्यर्थ नहीं है; कि हां, जीवन निरर्थक नहीं है; कि हां, जीवन एक दुर्घटना मात्र नहीं थी। इसके पीछे एक गहन प्रयोजन था। इसके पीछे एक छिपी हुई अंतर्यात्रा थी। हम किसी दिशा में चल रहे थे। पहुंच कर ही पता चलता है--मंजिल पर पहुंच कर ही पता चलता है कि हम मार्ग पर थे। मंजिल पर पहुंचे बिना पता भी चले तो कैसे चले?
नदी जब उतरती है हिमालय से तो कैसे जाने कि सागर की तरफ जा रही है, कैसे माने कि सागर है? न जाना, न देखा, न पहचाना और जो सागर में गई नदियां, वे लौट कर कहती नहीं। यह नदी तो सागर में जब गिरेगी, तब ही जानेगी कि अरे वे सारी पर्वतशृंखलाएं, वे लंबी यात्राएं, खाई-खड्डे, उलटे-सीधे मार्ग, अड़चनें, सब इस गंतव्य के लिए थीं, इस महासागर में लीन होने के लिए थीं। तब सब अचानक सार्थक हो जाता है। सब दुख, सब सुख सीढ़ियां बन गए। तब सारी यात्रा पीछे लौट कर स्पष्ट हो जाती है, जो पहले कभी स्पष्ट नहीं थी। अंतिम अनुभव में ही किबड़िया जब खुले, दसवां द्वार जब खुले, तब तुम पाओगे कि जो भी जीवन में जाना, माना, पहचाना, उस सबकी एक गहन अर्थवत्ता थी। वह सब एक तारतम्य में बंधा था। उसकी एकशृंखला थी। वह किसी दिशा में हमें गतिमान कर रहा था। पहुंच कर ही पता चलता है कि हम पथ पर थे।
प्रेम जब जला कर कचरे को अलग कर देता है, जीवन की चिंताएं, दुख, पीड़ाएं व्यर्थ--तुमने उधार ले ली थीं--जब सब समाप्त हो जाती हैं। तुम्हारी भूल थी, तुम्हारी गलत व्याख्या थी। तुम्हारे ही सोचने के कारण तुम्हारी चिंताएं थीं। जब वे सब गल जाती हैं, पिघल जाती हैं और जब खालिस सोना ही बचता है, तो उम्मीद का दीया जलता है। पहली बार तुम्हारे जीवन में आशा की किरण उतरती है, क्योंकि पहली बार भगवत्ता से मिलन होता है।
लेकिन ध्यान रहे कृष्ण चैतन्य, मैं तो निमित्त हूं, उससे ज्यादा नहीं। जो तुम्हारे भीतर हो रहा है, तुम्हारे ही भीतर हो रहा है। मैं उसे कर नहीं रहा हूं। हो सकता है मेरी मौजूदगी सहयोगी बन गई हो, लेकिन जब भी धन्यवाद दो तो मुझे छोड़ देना, धन्यवाद परमात्मा को ही देना। धन्यवाद सब उसके लिए, कृतज्ञता सब उसकी तरफ। तुम्हारा सिर झुके उसके लिए। मुझे बीच में मत लेना।
मैं बस निमित्त मात्र हूं। मेरे बहाने तुम चुप बैठना सीख गए। मेरे बहाने तुम्हें सत्संग की कला आ गई। मेरे बहाने तुम संगीत में डूबने लगे। मेरे बहाने तुम नाचे, गाए। मेरे बहाने तुम शांत हुए, मौन हुए। मगर यह सब बहाना है। यह किसी और के बहाने भी हो सकता था। इसलिए बहानों की क्या फिकर लेनी! अब जिस बहाने हो गया ठीक। मगर जो हो गया है, वह उस परमात्मा के द्वारा ही हो रहा है। और वह परमात्मा तुम्हारे भीतर ही छिपा पड़ा है।
जैसे हम किसी को सोते से जगा दें, तो जागरण उसी के भीतर मौजूद था। अगर कोई आदमी कोमा में पड़ा हो, फिर तुम कितना ही हिलाओ-डुलाओ, ठंडे पानी के छींटे उसकी आंखों पर मारो, अलार्म बजाओ, घंटे ठोको--कुछ भी न होगा। अजान दो, कुछ भी न होगा। वे कोमा में पड़े हैं। या कोई मर ही गया हो, अब तुम कितना ही

शोरगुल मचाओ, अच्छा-बुरा कुछ भी कहो, अब कुछ भी न होगा। वह तो जीवित हो और अभी जागने की क्षमता हो, तो कुछ हो सकता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी। जब उसे लेकर उतर रहे थे ऊपर की मंजिल
से, जीना छोटा, संकरा, नीचे के दरवाजे पर आकर अरथी को धक्का लग गया दरवाजे का और पत्नी उठ बैठी। मुल्ला की तो श्वास जैसे रुक गई। एक क्षण तो सकते में आ गया। फिर वह तीन साल जिंदा रही। फिर मरी। फिर वही जीना। फिर अरथी उतरने लगी। जैसे ही नीचे दरवाजे के करीब आने लगी अरथी, मुल्ला चिल्लायाः भाईयो, जरा सम्हाल कर! यह वही दरवाजा है। पिछली बार ठोकर मार कर तुम तो घर चले गए, फिर तीन साल जो मुझ पर गुजरी वह मैं ही जानता हूं।
मगर अगर पत्नी मर गई होती तो दरवाजे की ठोकर से भी जग नहीं सकती थी। मरी नहीं थी तो ही जग गई।
कृष्ण चैतन्य, तुम्हारे भीतर जागरण है, छिपा पड़ा है। मैंने तुम्हें झकझोरा। तुम जग गए, जगने लगे। तुमने आंखें खोल लीं। सुबह सूरज निकलता है कंकड़ पत्थर तो फूल नहीं बन जाते; कलियां फूल बन जाती हैं, क्योंकि कलियां फूल बन सकती हैं, उनमें बनने की क्षमता है। कंकड़-पत्थर तो कंकड़-पत्थर ही रहेंगे, चाहे रात हो चाहे दिन हो, क्या फर्क पड़ता है? लेकिन कलियों को बहुत फर्क पड़ता है! और सूरज की किरणें आकर कलियों की पंखुड़ियां भी खोलती नहीं, एक-एक पंखुड़ियां नहीं खोलतीं। बस सूरज की किरणों की मौजूदगी निमित्त बन जाती हे, कलियां खिल जाती हैं।
सत्संग निमित्त है। सदगुरु तो सूरज की भांति है। शिष्य कली की भांति है। वह खिल सकता है, इसलिए खिल जाता है। और जरूर, फिर लाखों उम्मीदों के दीये जलते हैं, क्योंकि पहली बार लगता है कि पैरों में घूंघर बंधे। पहली बार तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं पड़ते। पहली बार खुमारी चढ़ती है, आंखें मस्त होने लगती हैं। कोई भीतरी शराब रोएं-रोएं को डुबा लेती है। और पहली बार दिखाई पड़ता है--हम क्या हो सकते हैं, हमारे होने की कितनी बड़ी क्षमता है, हम विराट हैं! अहं ब्रह्मास्मि!

झुरमुट में दुपहरिया कुम्हलाई
खेतों पर अंधियारी घिर आई
पश्चिम की सुनहरिया धुंधराई
टीलों पर टालों पर
इक्के-दुक्के अपने घर जानों पर धीरे-धीरे उतरी शाम
आंचल से छू तुलसी की थाली दीदी ने घर की ढिबरी बाली जमुहाई ले लेकर उजियाली
जा बैठी ताकों में
घर भर के बच्चों की आंखों में धीरे-धीरे उतरी शाम

इस अधकच्चे से घर के आंगन में
न जाने क्यों इतना आश्वासन
पाता है यह मेरा टूटा मन
लगता है इन पिछले वर्षों में सच्चे-झूठे, मीठे-कड़वे संघर्षों में इस घर की छाया थी छूट गई अनजाने
जो अब झुक कर मेरे सिरहाने
कहती है
भटको बेबात कहीं
लौटोगे अपनी हर यात्रा के बाद यहीं धीरे-धीरे उतरी शाम

भटको बेबात कहीं... कितने ही भटको, कहीं भी भटको, एक दिन तो इस घर आ ही जाना है--यह परमात्मा का घर। जन्मों-जन्मों की भटकन के बाद भी आना है।

भटको बेबात कहीं
लौटोगे अपनी हर यात्रा के बाद यहीं

फिर कौन निमित्त बन जाएगा--कबीर, कि दादू, कि फरीद, या मैं--इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। ये सब बहाने हैं। किसकी अंगुली का इशारा तुम्हें चांद को दिखा देगा, इससे क्या फर्क पड़ता है? चांद दिख गया, अंगुली भुला देनी चाहिए। अंगुलियों को हम धन्यवाद नहीं देते; चांद दिख जाए।

प्रात होते--
सबल पंखों की अकेली एक मीठी चोट से
अनुगता मुझ को बना कर बावली को--
जान कर मैं अनुगता हूं--
उस बिदा के विरह के विच्छेद के तीखे निमिष में भी
युता हूं--
उड़ गया वह बावला
पंछी सुनहला
कर प्रहर्षित देह की रोमावली को
प्रात होते!

वही जो
थके पंखों को समेटे--
आसरे की मांग पर विश्वास की चादर लपेटे--
चंच की उन्मुख विकलता के सहारे
नम रही ग्रीवा उठाए--
सिहरता-सा, कांपता-सा,
नीड़ की--नीड़स्थ सब-कुछ की प्रतीक्षा भांपता-सा,
निकट अपनों के निकटतर भवितव्य की अपनी प्रतिज्ञा के-- निकटतम इस वि-बुध सपनों की सखी के
आ गया था
आ गया था
रात होते!

उड़ गया वह बावला
पंछी सुनहला
कर प्रहर्षित देह की रोमावली को।
प्रात होते!

सांझ पक्षी आ जाते हैं, वृक्षों पर बसेरा कर लेते हैं। रात भर विश्राम, सुबह होते उड़ जाते हैं।
कृष्ण चैतन्य, तुम्हारी सुबह अब करीब है। तैयारी करो--उड़ने की तैयारी करो। पंखों को झटको, धूल-धवांस झाड़ो। कूड़ा-करकट इकट्ठा हो, अलग करो। व्यर्थ के बंधन, व्यर्थ के आग्रह, व्यर्थ के पक्षपात, सिद्धांत शास्त्र सब गिरा दो।
सुबह करीब है। उड़ने की घड़ी आ गई। रात जो बना ली थीं बहुत सी आसक्तियां, लगाव, अब उनसे पार उठना है। सूरज निकलेगा, आकाश में उसकी किरणों का जाल फैलेगा। दूर तुम्हें पुकारेगा। उसी के दीये जल गए हैं, जिनको तुम उम्मीदों का दीया कह रहे हो, उसकी धीमी-धीमी पुकार आने लगी। सुबह की धुंध कटने लगी। भोर हो गई, अब उड़ना होगा। अब अपने असली घर की तरफ जाने का क्षण करीब आ रहा है। उसकी तैयारी में लगो।

मैं यहां कोई औपचारिक धर्म तुम्हें नहीं दे रहा हूं। औपचारिक धर्म सस्ता होता हैः मंदिर गए, सिर पटक लिया, आ गए; दो पैसे दान कर दिए, कि कभी सत्यनारायण की कथा करवा ली, कि बैठ कर कभी माला फेर ली। मैं तुम्हें कोई औपचारिक धर्म नहीं दे रहा हूं। न तो यहां जो दिया जा रहा है वह हिंदू है, न मुसलमान है, न जैन है, न ईसाई। यहां तो सिर्फ सुबह होने की खबर दी जा रही है। सुबह कैसे करीब आए, उसका विज्ञान समझाया जा रहा है। और जब सुबह आ जाए तो तुम कैसे उड़ सको--तुम जो कि वर्षों से, जन्मों से नहीं उड़े हो, फिर कैसे अपने पंखों को उड़ा सको, फिर कैसे पंखों को तौल सको आकाश में, क्योंकि फिर लौटना नहीं है। उस अनंत यात्रा पर निकलने की तैयारी की ही ये सूचनाएं हैं। इसलिए तुम कह पा रहे हो--

"तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है
जमीं तो जमीं आसमां पा लिया है।
जमाने के गम प्यार में जल गए हैं
उम्मीदों के लाखों दीये जल गए हैं
न उजड़ेगा जो आशियां पा लिया है!
तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है!"

दूसरा प्रश्नः ओशो, मेरे बूढ़े ससुर जवान बेटे की अचानक मृत्यु से विक्षिप्त से हो गए हैं और मैं संसार से बिल्कुल मुक्ति पाना चाहती हूं। किंतु मेरे ये गेरुआ वस्त्र कहीं उनकी मृत्यु का कारण न बनें। और मैं संन्यास लेना चाहती हूं। कृपया मार्गदर्शन करें। बड़ी आशा लेकर आई हूं।

उर्मिला! बेटे की मृत्यु से कोई विक्षिप्त नहीं होता। हां, बेटे से आसक्ति हो तो विक्षिप्तता आ सकती है। मृत्यु से नहीं, आसक्ति से। और आसक्ति तो विक्षिप्तता लाएगी ही। लेकिन हम बड़े होशियार हैं। हम अपनी आसक्तियों को छिपा लेते हैं और झूठे बहानों पर थोप देते हैं। बेटा मर गया, इसलिए विक्षिप्त हैं। मरना तो होगा ही--बेटे को भी, बाप को भी, सभी को। मृत्यु जैसा प्रगाढ़ सत्य टालोगे कैसे? कोई आज गया, कोई कल जाएगा। किसी की बारी आज आ गई, किसी की कल आ जाएगी। बेटा जरा क्यू में आगे खड़ा होगा, बाप जरा क्यू में पीछे खड़ा है। क्यू तो मौत के दरवाजे पर ही लगा है। और क्यू रोज छोटा होता जा रहा है, तुम रोज दरवाजे के करीब आते जा रहे हो। लेकिन यह सोच कर कि बेटे की मृत्यु के कारण मैं विक्षिप्त हूं, फिर तुमने अपनी आसक्ति बचा ली।
मेरे एक मित्र का बेटा मर गया। वे बिल्कुल पागल हालत में थे। यहां तक
कि उन्होंने दो बार आत्महत्या करने की कोशिश की। मुझे खबर मिली तो मैं उन्हें देखने गया। वे बड़े राजनेता थे। उनको पार्लियामेंट का पिता कहा जाता था। शायद सबसे पुराने संसद-सदस्य थे वे; अंग्रेजों के जमाने से संसद के सदस्य रहे थे। रो रहे थे, आंख से आंसू गिर रहे थे। लेकिन बगल में तारों की गिड्डी लगा रखी थी। मैं पहुंचा। औपचारिक थोड़ी बात हुई, फिर तारों की गिड्डी मेरी तरफ सरका दी कि देखो, जवाहरलालजी का पत्र आया, तार आया, राष्ट्रपति का--राजेंद्र प्रसाद का; इसका उसका... । उन दिनों मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे द्वारका प्रसाद मिश्र। द्वारका प्रसाद मिश्र का नहीं आया, यह भी नहीं भूले वे बताना।
मैंने उनसे कहाः बेटा मर गया, तुम ये तार इकट्ठे किए बैठे हो! और मैंने
तो सुना है कि आपने दो बार आत्महत्या करने की कोशिश की। कहीं यह द्वारका प्रसाद का पत्र नहीं आया, तार नहीं आया--इसी कारण तो नहीं?
उन्होंने कहाः आप भी इसी क्षण में मजाक करते हैं!
मैं मजाक नहीं कर रहा।
और मैंने कहाः आत्महत्या करने की दो बार कोशिश करनी पड़ती है! अरे, कर
ली तो कर ली। वह भी कुछ ऐसी ही रही होगी ढीली-ढाली।

लोग गोलियां ले लेते हैं, मगर वे भी हिसाब से लेते हैं कि कहीं मर ही न जाएं! कितने ही लोग कोशिश करते हैं आत्महत्या की--मगर कोशिश! और सब इंतजाम कर लेते हैं बचने का पहले ही।
मैंने कहाः दो बार आपने कोशिश की। होशियार आदमी हैं, समझदार आदमी हैं। राजनीति में जिंदगी भर खेले, आत्महत्या तक न कर सके! अरे करनी थी तो कर ही लेनी थी।
वे तो कहने लगे कि आप कैसी बातें करते हैं! जो भी आता है वह मुझसे सांत्वना प्रकट करता है। और आप उलटी-सीधी बातें कर रहे हैं!
मैंने कहाः आप सांत्वना प्रकट करवाना चाहते हैं, इसलिए बैठे हैं यह ढोंग रचा कर। सांत्वना में रस ले रहे हैं।
और मैंने कहा कि ख्याल रखना कि बेटे के मरने से कुछ इसका लेना-देना नहीं है। मामला कुछ और है।
उन्होंने कहाः क्या मामला है?
मैंने कहाः आपका दूसरा बेटा भी है। मैं आपसे पूछता हूं, छाती पर हाथ
रख कर कहा कि अगर यह दूसरा बेटा मर जाता तो आप आत्महत्या करने की कोशिश करते, यह ढोंग कर के बैठते?
उन्होंने थोड़ा सोचा और कहा कि नहीं; दूसरा मरता तो मैं आत्महत्या नहीं करता। दूसरा मरता तो मैं सोचता अच्छा ही हुआ। क्योंकि इस दूसरे ने मुझे इतना दुख दिया है... । यह दूसरा किसी काम का ही नहीं है।
तब मैंने कहा कि मामला बेटे का नहीं है। दोनों ही बेटे हैं, लेकिन पहला था मंत्री और मुख्यमंत्री होने की संभावना थी। उसके कंधे पर महत्वाकांक्षा की बंदूक रख कर बाप चलाने की कोशिश कर रहा था। और दूसरा बेचारा साधारण है, जैसा साधारण आदमी होता है। कोई नेता नहीं है। कोई महत्वाकांक्षी नहीं है। मेरे हिसाब से तो दूसरा बेहतर आदमी है। हां माना कि कभी-कभी शराब भी पी लेता है। पर मेरे हिसाब से तो राजनीति की शराब से तो साधारण शराब कुछ बुरी नहीं। पहले बेटे के मरने से आप परेशान नहीं हैं। अगर सच ईमानदारी से मुझसे कहो तो परेशानी यह है कि वह मुख्यमंत्री होने के करीब था अब; और यह कोई वक्त था मरने का, कम से कम मुख्यमंत्री हो जाता।
वे खुद नहीं बन सके मुख्यमंत्री कभी, वे खुद मंत्री नहीं बन सके। रहे
तो बहुत दिन राजनीति में, मगर उतने चालबाज नहीं थे, उनसे बड़े चालबाज हाथ मार ले गए। तो वे हमेशा पिछड़ते ही रहे। ट्रेन चूकते ही रहे। मगर बेटा चालबाज था; वह ठीक गति से चल रहा था।
मुझसे बोले कि अब आपसे मैं छिपा नहीं सकता। और जब आपने बात ही छेड़ दी
तो बात सच है। पीड़ा मुझे यही हो रही है कि यह भी कोई मरने का वक्त था! अरे मरना तो सभी को है, कम से कम मुख्यमंत्री तो हो जाता!
मैंने कहाः क्या फर्क पड़ता है, मुख्यमंत्री होकर भी मरता! ठीक से समझो, उनको मैंने कहा कि बेटे के मरने की तकलीफ नहीं है; महत्वाकांक्षा को चोट लगी है। आसक्ति को चोट लगती है। अहंकार को चोट लगती है। और सबसे बड़ी चोट यह लगती है कि बेटा मर गया, अब मुझे मरना होगा। जब बेटा तक नहीं बचा तो मैं कैसे बचूंगा?
इससे तुम उर्मिला, इस भाव को तो बिल्कुल छोड़ ही दो कि जवान बेटे की अचानक मृत्यु से... । सभी मृत्युएं अचानक होती हैं। तुम सोचती हो, तुम्हारे ससुर के जवान बेटे की मृत्यु ही अचानक हुई; तो बाकी लोगों की मृत्यु क्या खबर दे कर आती है? कि डाकबंगले में स्थान बना रखना, कि ब्लू-डायमंड में कम से कम कमरा रिजर्व करवा लेना, मैं आती हूं! सभी की अचानक होती है। बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी अचानक ही मरता है। अभी क्षण भर पहले जिंदा और क्षण भर बाद नहीं। सभी की मृत्यु असमय होती है। हालांकि हम कहते हैं कि फलां की मृत्यु हो गई, असमय हो गई; जैसे कि कुछ की समय पर होती है! किसकी समय पर होती है? सभी मृत्युएं असमय होती हैं, अचानक होती हैं।
और जवान, अगर गौर से देखो, तो शरीर से जवान लोग शायद अधिक नहीं मरते। लेकिन बूढ़े भी चित्त से तो जवान ही होते हैं--वही आकांक्षाएं, वही वासनाएं, वही इच्छाएं, वही जवानी के रोग। क्या फर्क पड़ता है? बूढ़ों में कुछ फर्क पड़ता है? तुम जाकर दिल्ली में देख लो, बूढ़े से बूढ़े--जिनको कभी का मर जाना

चाहिए था--इनको कहो कि असमय जिंदा हैं तो समझ में आता है। कि अचानक जिंदा! जिनको नहीं होना चाहिए, किसी वजह से भी होने का कोई कारण नहीं है... और न केवल जिंदा हैं, बल्कि छाती पर बैठे हैं। और ऐसे अड़ कर बैठे हैं कि डर लगता है पता नहीं, मरेंगे कि नहीं मरेंगे! तुम दिल्ली में जाकर जरा उपद्रव देखो--बूढ़ों के उपद्रव देखो! तो तुम्हें पता चलेगा कि कोई जवान ही जवान नहीं होते। शरीर बूढ़े हो जाते होंगे मगर वासनाएं तो जवान ही होती हैं। बूढ़ों की और विक्षिप्त हो जाती है; क्योंकि जवान तो कुछ कर भी सकता है अपनी वासनाओं के लिए, बूढ़े तो कुछ भी नहीं कर सकते।
मुल्ला नसरुद्दीन बैठा कुरान पढ़ रहा था। सुबह, सर्दी की सुबह। अभी कुछ ही दिन पहले की बात है। लेकिन कुरान कौन पढ़ाता है! वह तो बूढ़े ऐसा रख लेते हैं कुरान को सामने... मगर देख रहा था सड़क पर। एक सुंदर स्त्री निकली, एकदम आवाज दीः फजलू, फजलू! दांत ला।
फजलू ने कहा कि कुरान पढ़ने में दांत की क्या जरूरत है? अरे--उसने कहा-- दांत ला पहले, एक जवान स्त्री जा रही है। सीटी बजाने का मन हो रहा है।
यह सीटी बजाने का मन, दांत न हों तो भी समाप्त नहीं होता। जवान तो सभी
मर जाते हैं। प्रौढ़ हो ही कौन पाता है! हां, कोई बुद्ध, कोई कबीर, कोई जीसस, कोई महावीर, कोई मोहम्मद--ऐसे लोग प्रौढ़ होते हैं, बाकी तो अप्रौढ़ ही मरते हैं। शरीर के धोखे में मत आना। शरीर तो बूढ़ा सभी का हो जाता है, लेकिन आत्मा की प्रौढ़ता जिसकी हो जाए उसकी मृत्यु धन्य भाग है--नहीं तो सभी की मृत्यु वैसा ही है दुर्भाग्य, जैसा उनका जीवन था।
और तू कहती है उर्मिला कि वे विक्षिप्त से हो गए हैं बेटे की अचानक मृत्यु से। क्या तू सोचती है जितने लोग विक्षिप्त होते हैं वे सब बेटों की अचानक मृत्यु से विक्षिप्त होते हैं? बेटे की मृत्यु तो सिर्फ बहाना होगी। अगर बेटा न मरता तो किसी और कारण विक्षिप्त होते। अगर विक्षिप्त होने की भीतर संभावना थी, तो कारण कोई न कोई मिल भी जाता--मिल ही जाता! ये तो बहाने हैं कि बेटा मर गया। अच्छा बहाना मिल गया। अब लोग कुछ कह भी नहीं सकते। अब विक्षिप्त होने के लिए तुम्हें पूरी स्वतंत्रता मिल गई। नहीं तो किसी और बहाने विक्षिप्त होते। धंधे में नुकसान लग जाता। और ऐसा ही नहीं कि नुकसान लगने से लोग विक्षिप्त होते हैं; अरे कभी-कभी ज्यादा लाभ हो जाता है, उससे भी विक्षिप्त हो जाते हैं। लाटरी खुल गई और विक्षिप्त हो गए। आदमी को विक्षिप्त ही होना हो तो बहानों की इस संसार में कोई कमी नहीं है।
एक स्त्री के पति को लाटरी मिल गई। वह बहुत घबड़ाई। पति तो दफ्तर में थे, घर खबर आई कि लाटरी मिल गई है--दस लाख रुपया। वह इतनी घबड़ा गई... ईसाई स्त्री, पास के पड़ोस के पादरी के पास भागी गई और पादरी से कहा कि अब आप ही सम्हालो। मैं डरती हूं, क्योंकि मुझे मालूम है, उन्हें दस रुपये का नोट भी पड़ा मिल जाए तो रात भर नहीं सो सकते। उनकी एकदम हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, खून की चाल बढ़ जाती है। दस लाख रुपये! बरदाश्त न कर सकेंगे। वे मर ही जाएंगे। नहीं तो पागल हो जाना तो निश्चित ही है। अब आप बचाओ। आप ही बचा सकते हो, और कोई नहीं बचा सकता।
पादरी ने कहाः बिल्कुल फिकर मत कर। यही हमारा काम है। मैं आता हूं। पति के आने के पहले मैं आ जाता हूं। पादरी आकर जम कर बैठ गया। पति दफ्तर से आए। पादरी ने पूरी की पूरी व्यवस्था बना ली थी कि धीरे-धीरे बताना है। एकदम से दस लाख रुपया ज्यादा हो सकता है। सिर की नसें फट जाएं, कुछ भी हो जाए।
तो पादरी ने कहाः सुनते हो, पचास हजार रुपये मिले हैं लाटरी में! फिर देखा उसने कि क्या असर पड़ता है। अगर पचास हजार पचा जाए तो फिर पचास हजार और बताएंगे। वे भी पचा जाए तो फिर और, फिर और, ऐसे धीरे-धीरे बता कर दस लाख बता देंगे।
पति ने कहाः पचास हजार! अगर पचास हजार मुझे मिले हैं तो पच्चीस हजार आपके चर्च के लिए दान। पादरी वहीं गिरा, उसका हार्ट फेल हो गया।
उसने सोचा ही नहीं था कि यह--पच्चीस हजार एकदम से!

कुछ कहा नहीं जा सकता कि कौन किस कारण पागल हो गया है। कारण इत्यादि अकारण हैं।
तू कहती है उर्मिलाः मेरे ससुर जवान बेटे की अचानक मृत्यु से विक्षिप्त से हो गए हैं। अगर गौर से देखो तो अधिकतम लोग विक्षिप्त से हैं। किसी का पता चल जाता है, किसी का पता नहीं चलता। शायद बेटे के मरने से तेरे ससुर की असलियत का पता चल गया, और कुछ मामला ज्यादा नहीं हो गया है। डिग्रियों के फर्क हैं। कोई निन्यानबे डिग्री पागल, कोई सौ डिग्री पागल, कोई एक सौ एक डिग्री बस इतना फर्क है। कोई गुणात्मक भेद नहीं है, परिमाण का भेद है। ससुर रहे तो होंगे निन्यानबे डिग्री पागल, तू फिर से विचार करना। बेटे के मरने से पहले की जरा हालत पर विचार करना ससुर की। निन्यानबे डिग्री तो रहे ही होंगे। हां, हो सकता है बेटे ने ऊंट पर आखिरी तिनका कि उंट बैठ गया। कोई आखिरी तिनके से ऊंट बैठता है; मगर बोझ काफी था, आखिरी तिनके ने पूरा कर दिया। शायद बेटे की चोट आखिरी हो गई। चोटों पर चोटें पड़ी होंगी। चोंटें तो पड़ेंगी। जहां आसक्ति है वहां चोट पड़ेगी। जहां आसक्ति है वहां विक्षिप्तता की संभावना है। आसक्ति विक्षितता है-छिपी हुई; बीज है उसका।
लेकिन हम विक्षितता को भी छिपाने के उपाय कर लेते हैं। कोई आदमी बैठा हुआ माला फेर रहा है; उसको हम पागल नहीं कहते लेकिन अगर रूस में वही आदमी माला फेरे, फौरन उसको पागलखाने भेजा जाएगा। क्योंकि यह कोई बात हुई कि सुबह-सुबह बैठे और माला फेर रहे! रूस जाओ तो भूल कर माला मत फेरना, नहीं तो लोग समझेंगे विक्षिप्त हो, क्योंकि उन्होंने धर्म की आड़ छोड़ दी। अब धर्म की आड़ में विक्षिप्तता नहीं चल सकती वहां।
मैं एक सज्जन को जानता हूं, जो नल से पानी भरें, स्त्री दिख जाए, फिर से बर्तन मांजें, फिर से पानी भरें। मेरे पड़ोस में ही रहते थे। उनकी बड़ी ख्याति थी, उनको लोग महात्मा मानते थे--है तो पहुंचा हुआ सिद्ध! कभी कभी तो उनको दस दफा, बीस दफा, बर्तन मांजना पड़े। मगर वे भी एक थे जिद्दी। अब यह पागलपन ही है, मगर धार्मिक हवा में इसका नाम धार्मिकता है। स्त्री दिख भर जाए... ।
पड़ोस में ही एक स्त्री रहती थी, मैंने उससे कहा कि मैं तुझे दस रुपये दूंगा, तू आज महात्मा को दिखती ही रह। कब तक ये मलते हैं बर्तन, देखें!
उसे दस रुपये मिले, उसने कहा ठीक है। तो महात्मा बर्तन मलें, वे जब बर्तन मल कर जैसे ही पानी भरें, वह स्त्री फिर निकल आए। एक दफा, दो दफा, तीन दफा, ... वही की वही स्त्री। पच्चीस-तीस दफा उन्होंने बर्तन मला। दोपहर होने लगी, फिर राज कुछ उन्हें समझ में आ गया। बर्तन वहीं पटका और भागे हुए आकर मेरे पास आए। कहा कि बंद करवाइए! मैंने कहाः भाई मेरा इसमें क्या लेना- देना है? उन्होंने कहाः वही की वही औरत बार-बार आ रही है, मुझे शक है कि आपका इसमें हाथ है।
मैंने कहाः तुम्हीं क्यों नहीं बंद करते? तुम ही कह दो कि आओ जिसको आना हो, आज बर्तन नहीं मलेंगे! तुम मालिक हो, तुम मुख्तियार हो।
और मैंने कहाः स्त्री देख कर तुम्हारा बर्तन कैसे गंदा हो जाता है, यह
भी मेरी समझ में नहीं आता! आंख पर पानी मार लिया करें। बर्तन तो देख ही नहीं सकता कि स्त्री आई कि पुरुष आया, कौन आया! बर्तन तो बर्तन है। न आत्मा बर्तन में, न आंखें बर्तन में, बर्तन को क्या पता! बर्तन को नाहक घिसते हो! समय खराब करते हो। और स्त्री आई, आंख पर पानी मार लिया, या स्त्री आई तो आंखें बंद ही कर लीं।
और फिर मैंने उनसे कहा कि मां के पेट में नौ महीने रहे कि नहीं? फिर मां के स्तन से दूध पीआ कि नहीं? और दिन में और दूसरे काम भी करते रहते हो, स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं, तब झंझट में नहीं आते? कि कपड़े पहने चले जा रहे, स्त्री दिख गई, फौरन कपड़े धोने लगे। अगर महात्मा ही हो तो कुछ ऐसे काम कर के दिखाओ। यह बर्तन का क्या कसूर है?
और मैंने कहाः यह सस्ती महात्मागिरी मैं नहीं चलने दूंगा। मैंने तो स्त्री को रख छोड़ा है। दस रुपये उसको रोज दूंगा। वे महात्मा दूसरे दिन

मोहल्ला ही छोड़ कर चले गए। पता चला वे दूसरे मोहल्ले में महात्मा हो गए हैं।
इसको महात्मापन कहोगे? यह विक्षिप्तता है। एक आदमी बैठा किताब में राम-राम, राम-राम, राम-राम लिखता रहा है और लोग कहते हैंः अहा! कैसा धार्मिक पुरुष! तुम जरा एक किताब में बैठ कर लिखो न कोकाकोला-कोकाकोला- कोकाकोला, और तुम्हारी पत्नी देखेगी, बेटा देखेगा और कहेगा कि अच्छा चलो डाक्टर के पास! यह क्या कर रहे? और राम-राम लिखो तो धार्मिक और बेचारे कोकाकोला ने क्या बिगाड़ा है! इससे ज्यादा अंतर्राष्ट्रीय कोई मंत्र ही नहीं है। राम-राम लिखो, हिंदुओं का होगा। अल्लाह-अल्लाह लिखो, मुसलमानों का होगा। मगर कोकाकोला सब का! एकमात्र नाम है जो अंतर्राष्ट्रीय है, जिसके लिए कहीं कोई रोक-टोक नहीं है। रूस में भी नहीं! अगर रूस में भी कोई एक अमरीकन चीज तुमको मिल सकती है तो कोकाकोला। मगर कोकाकोला लिखे आदमी तो पागल! और कुछ अंट-संट लिखे--हिरीम श्रीम श्रीम्... मंत्र लिख रहा है-- वेदमंत्र!
तेरे ससुर उर्मिला पहले से ही कुछ गड़बड़ रहे होंगे। यह बेटे ने तो कलई खोल दी। उनका इलाज करवाओ, इसमें बेटे के मरने का कोई कसूर नहीं।
उनको आवश्यकता है कि थोड़ा आसक्ति से मुक्त होना सीखें। उनको आवश्यकता
है कि जीवन के इस परम सत्य को स्वीकार करना सीखें कि मृत्यु है और बेटे की मौत से कुछ पाठ सीखें कि जब बेटा तक नहीं बचा तो मैं कितनी देर बचूंगा! विक्षिप्त होने की क्या बात है, संन्यस्त होने की जरूरत है! विक्षिप्त होने का कहां सवाल है, ध्यानस्थ होने का सवाल है। बेटा मर गया तो ध्यान करो। बेटा मर गया हो समाधि साधो, कि कहीं तुम भी ऐसे ही न मर जाओ। यह बेटा तो बेकार गया, कहीं तुम भी बेकार न चले जाओ। यह बेटा तो खाली कारतूस निकल गया, तुम्हें भी खाली ही कारतूस की तरह टांय-टांय फिस्स हो जाना है, कि कुछ जीवन में उपलब्धि करनी है?
और तू इस चिंता में संन्यास रोक रही है अपना, कि कहीं मेरे गेरुआ वस्त्र पहनने से उनकी मृत्यु न हो जाए! मेरे एक लाख संन्यासी हैं, अभी तक किसी के ससुर की मृत्यु तो नहीं हुई। सिर्फ गणित के आधार पर ही काफी है। मत घबड़ा! ऐसे कहीं कोई मरता है? जब बेटे की मृत्यु से भी नहीं मरे तो तेरे गेरुआ पहनने से मर जाएंगे! यह तू बहाना खोज रही है अब--यह ससुर की आड़ कि कहीं ससुर न मर जाएं। और तू गेरुआ नहीं पहनेगी तो ससुर नहीं मरेंगे, यह पक्का है? अगर यह पक्का हो तो मैं कहता हूं गेरुआ मत पहन। रहने दो बेचारे ससुर को जिंदा, सदा जिंदा रहने दो! लेकिन ससुर तो मरेंगे, गेरुआ पहनो या न पहनो। गेरुआ पहनने से कोई नहीं मरता। न तो अब तक कोई ससुर मरा, न कोई सास मरी, न कोई पिता मरे, न कोई मां मरी, न कोई पत्नी मरी, न कोई पति मरा, न कोई बेटा... कोई नहीं मरता। गेरुआ पहने से किसी के मरने का क्या सवाल? अरे गेरुआ भी और रंगों में एक रंग है। काला कपड़ा पहन लो, कोई नहीं मरता; पीला पहन लो, कोई नहीं मरता; हरा पहन लो, कोई नहीं मरता--गेरुआ पहन लिया कि मर गए! गेरुआ क्या कोई जहर है? हां, इतना जरूर है कि मर गए होंगे तो गेरुआ पहन कर एकदम उठ कर खड़े हो जाएंगे कि क्यों, यह तूने क्या किया? और बेटे की चोट से उनको जो थोड़ी अस्त-व्यस्तता हुई है, वह रास्ते पर आ जाएंगे। क्योंकि अक्सर ऐसा होता है, छोटी चोट को भुलाने के लिए बड़ी चोट की जरूरत पड़ती है।
जैसे तुम्हारे सिर में दर्द है और मैं बता दूं कि सिरदर्द! सिरदर्द में क्या रखा है, तुमको टी.बी. है। सिरदर्द एकदम खतम हो जाएगा। जब टी.बी. है तो कौन सिरदर्द की फिकर करे! फिर बाद में समझा दूंगा कि टी.बी. नहीं है, वह तो सिरदर्द का इलाज था।
बर्नार्ड शॉ ने अपने जीवन में उल्लेख किया है। उसने अपने डाक्टर को खबर की, फोन किया कि मुझे हृदय का दौरा पड़ा है। डाक्टर खुद बूढ़ा है, पुराना डाक्टर है। बर्नार्ड शॉ खुद बूढ़ा, उसका डाक्टर बूढ़ा। अब हृदय का दौरा पड़ा है आधी रात को तो बेचारा डाक्टर उठा, तीन मंजिल सीढ़ियां चढ़ा, जब तक वह ऊपर पहुंचा तो उसकी छाती फूलने लगी, श्वास चढ़ गई वह डाक्टर एकदम लेट गया, कुर्सी पर लेट गया। बर्नार्ड शॉ बिस्तर पर लेटा था, उठ कर बैठ गया, कहाः "क्या हुआ?" वह बोले ही नहीं। तो बर्नार्ड शॉ उठा, पानी के छींटे मारे,

पंखा किया। पंद्रह-बीस मिनिट के बाद डाक्टर आंख खोला, और बोला कि अब थोड़ा ठीक लग रहा है।
चलते वक्त डाक्टर ने फीस मांगी। बर्नार्ड शॉ ने कहाः फीस काहे की? उलटा तुम्हारी मुझे सेवा करनी पड़ी। डाक्टर ने कहा कि वह तुम्हारा इलाज था। तुम देखो भले-चंगे दिखाई पड़ रहे हो। तुम भूल ही गए अपनी झंझट। अब घर में आदमी मर रहा हो सामने, तो किसको याद रह जाए अपने हृदय के दौरे पड़ने की! उसने कहा कि वह तो तुम्हारा इलाज था। फीस तो लूंगा फीस उसने ली। और बर्नार्ड शॉ ने कहा कि बात भी उसकी ठीक थी, क्योंकि पंद्रह-बीस मिनट उसकी हवा करना, पंखा करना, पानी पिलाना, उसमें मैं भूल ही गया, भूल क्या बिल्कुल ठीक ही हो गया! जब तक वह ठीक हुआ, तब तक मैं बिल्कुल स्वस्थ ही था।
शायद उर्मिला तेरे गेरुए वस्त्रों में पहुंच जाना उनको ऐसा धक्का दे
कि वे सम्हल जाएं। भूल ही भाल जाएं बेटे की असमय मृत्यु; सोचने लगें कि उर्मिला को क्या हो गया! यह असमय का संन्यास! मौत पर तो आदमी का बस नहीं है, इसलिए कुछ कर नहीं सकते, अब बेटे से कुछ लड़-झगड़ नहीं सकते। लेकिन तुझसे लड़-झगड़ सकते हैं, बातचीत करेंगे, बकवास करेंगे, अपना ज्ञान दिखलाएंगे। चलो एक नई व्यस्तता हो जाएगी। कौन जाने इसी में विक्षिप्तता ठीक हो जाए! इसी में बेटे की मौत भूल जाए--और बड़ा उपद्रव हो गया!
मेरा संन्यास मौत से कुछ छोटा उपद्रव नहीं है।
तो मैं तो कहूंगा कि ससुर से अगर तेरा कुछ भी लगाव हो, थोड़ी करुणा उन
पर हो, तो संन्यास ले ही ले। मरेंगे-वरेंगे नहीं। ऐसे कोई मरता ही नहीं। मरना कुछ आसान मामला है? कोई ऐसी छोटी-मोटी बातों से मरता है। बेटा जुआ खेलने लगे तो बाप नहीं मरता, शराब पीने लगे तो बाप नहीं मरता; संन्यास लेने से मर जाएगा? संन्यास लेकर कौन सा पाप किया? हो सकता है संन्यास लेने से उनको भी थोड़ा बोध आए।
और संन्यास सिर्फ गैरिक वस्त्र ही तो नहीं है। गैरिक वस्त्र तो केवल बाह्य आवरण है संन्यास का। साथ में ध्यान को लेकर जा, आनंद को लेकर जा। नाचती हुई जा! तो शायद तेरा नृत्य, तेरा गीत, तेरा संगीत, तेरा आनंद उनको छुए। शायद उन्हें भी होश आए कि अब अपने भी दिन कम बचे हैं, अब कुछ कर लेने जैसा कर लेना चाहिए।
डर मत। डरने की कोई जरूरत नहीं है। और अगर ससुर मर भी जाएं तो पाप मेरा, तू फिकर छोड़। मैं लोगों के पाप अपने ऊपर ले लेता हूं। उसका निपटारा मैं कर लूंगा। कयामत के दिन जब पूछताछ होगी, तू मेरी तरफ इशारा कर देना कि इस आदमी ने संन्यास दिया था, हमारा कोई कसूर नहीं है। और ये इतने मेरे संन्यासी गवाह हैं कि पाप मेरा रहेगा, क्योंकि मैं जानता हूंः मृत्यु होती ही नहीं, पाप कैसे होगा! कोई कभी मरा है? सिर्फ देह बदलती है। जैसे कपड़े कोई बदल ले।
मृत्यु सबसे बड़ा झूठ है इस जगत में और सबसे बड़ा सत्य होकर बैठ गया है। लेकिन तुम झूठों में जीते हो। तुम्हारा अहंकार झूठ है। तुम्हारा जन्म झूठ है। तुम्हारी मृत्यु झूठ है। न तो तुम कभी जन्में हो, क्योंकि जन्म के पहले भी तुम थे। तुम्हारा अहंकार झूठ है, क्योंकि तुम परमात्मा से अलग नहीं हो, भिन्न नहीं हो; इसलिए कैसा मैं? वही है एकमात्र वही है! और तुम्हारी मृत्यु भी झूठ है, क्योंकि तुम हो ही नहीं तो मरेगा कौन? परमात्मा थोड़े ही मरेगा, परमात्मा थोड़े ही मर सकता है। तुम मृत्यु के बाद भी रहोगे।
असल में "मैं" असली झूठ है, जिसके कारण दो झूठ और पैदा हो गए--जन्म और मृत्यु। यह ख्याल कि मैं अलग हूं, नई-नई भ्रांतियां पैदा करवाता है कि मेरा जन्म हुआ, अब मेरी मृत्यु होगी।
मैं हूं ही नहीं--यह जानना ही संन्यास है। मैं असत्य हूं, यह अहंकार झूठ है; परमात्मा सत्य है; मैं उसी की एक लहर हूं--यह जानना संन्यास है। और जिसने ऐसा जान लिया कि मैं सिर्फ एक लहर मात्र हूं, उसके जीवन में कहां मृत्यु, कहां जन्म?
तू मृत्यु और जन्म से मुक्त होकर जा। शायद तेरी मुक्ति तेरे ससुर को
भी इशारा बन जाए, शायद उनका जीवन क्रांति का कारण बन जाए।

इस अवसर को छोड़ मत।
तू कहती हैः "और मैं संन्यास लेना चाहती हूं, बड़ी आशा लेकर आई हूं!"
बड़ी आशा लेकर आई है तो खाली हाथ मत जा। मैं तेरी झोली भरने को राजी हूं।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं आपको सुनते-सुनते सो जाता हूं; पता नहीं यह तारी है या खुमारी है, या केवल साधारण निद्रा मात्र है। प्रकाश डालने की कृपा करें!

धर्मदास! भैया, तारी या खुमारी तो जरा मुश्किल है। निद्रा ही होगी। तारी और खुमारी होती तो प्रश्न उठता ही नहीं। लेकिन कुछ चिंता न लेना। धर्म-सभा का यह नियम है। वहां जो न सोए सो नासमझ है। समझदार तो गहरी निद्रा लेते हैं। यही तो अवसर है सोने का। रात इत्यादि तो दूसरे कामों के लिए बनी है--चिंताएं हजार, सपनों की भीड़, कहां फुर्सत है! धर्म-सभा ऐसी जगह है--न चिंता, न फिकर; न घर, न द्वार; न पत्नी, न बच्चे, एकदम निश्चिंत! ऐसा अवसर कौन छोड़े! लोग घुर्राटे लेते हैं।
मैं तो बहुत से डाक्टरों को जानता हूं। अनिद्रा के रोगियों को वे कहते हैंः भैया, धर्म-सभा में जाओ! अगर कोई और शामक दवा काम न करे तो फिर यह दवा जरूर काम करती है।
और धर्मदास, मैं तुम्हें जानता हूं, भलीभांति पहचानता हूं; सो सौ प्रतिशत नींद ही है।
मैटरनिटी हास्पिटल के जनरल वार्ड से नर्स गोद में एक काला-कलूटा, अधमरा सा बच्चा लिए बाहर निकली। बाहर खड़े अनेक व्यक्तियों के बीच से नसरुद्दीन जोर से बोलाः सिस्टर, यह बच्चा मेरा है! नर्स को तो बहुत आश्चर्य हुआ। वह बोलीः मगर नसरुद्दीन, तुमने पहचाना कैसे कि यह तुम्हारा ही बच्चा है?
नसरुद्दीन बोलाः अजी, मैं अपनी बीबी को अच्छी तरह जानता हूं, जो भी चीज बनाती है ऐसा ही जला-भुना देती है।
सो धर्मदास, मैं तुम्हें जानता हूं। खुमारी, समाधि--इस झंझट में तुम न पड़ोगे। तुम तो मजे से सो रहे होओगे। और नाम ही तुम्हें धर्मदास का किसलिए दिया है? धार्मिक हो। और धार्मिक आदमी और करे क्या! दर्शन को भी तुम आते हो तो मैं चकित होता हूं कि कैसे चले आ रहे हो! नींद तुम्हारी ऐसी गहरी है। मगर कुछ लोग नींद में भी चलते हैं। सौ में से दस प्रतिशत लोग नींद में
चल सकते हैं, मनोवैज्ञानिक कहते हैं। नींद में उठते हैं, काम भी कर लेते हैं, फिर सो जाते हैं। जाकर किचन में टटोल कर कुछ खा-पी आते हैं, फिर सो जाते हैं। और सुबह उनसे पूछो, उन्हें कुछ याद नहीं है। नींद में चलना संभव है।
तुम्हें जब देखता हूं आते, तो मैं सोचता हूंः ये चले आ रहे, चमत्कार!
सब सोया है तुम्हारे भीतर। तुम्हें देख कर मुझे नींद का ही पहले ख्याल आता है। असल में तुम अगर ज्यादा मेरे साथ सत्संग करो तो तुम्हारे जगने की कम संभावना है, मेरे सो जाने की ज्यादा है। तुम्हारा अभ्यास गहरा है।
कई संन्यासी अपने बच्चों को संन्यास लिवाने ले आते हैं। जब तक उनका नाम पुकारा जाए, तब तक बच्चे सो जाते हैं। तो बेचारे पिता या मां थोड़े से हतप्रभ होते हैं, कहते हैं क्षमा करें! मैं कहता हूंः तुम बिल्कुल फिकर मत करो। यह मेरा रोज का ही काम है--सोए लोगों को ही संन्यास देना है। ये बच्चे तो बेचारे सच्चे हैं, सो मजे से सो रहे हैं। बाकी चालबाज हैं, आंख भी खोले हैं और सो भी रहे हैं।
कुछ लोग हैं जिनको आंख खोल कर भी सोने का अभ्यास होता है। एक महिला को
तो मैं जानता हूं कि वे आंख खोल कर सो सकती हैं। उनको मैंने आंखें खोले सोए हुए देखा है। जब वे कभी मेरे घर आकर मेहमान होती थीं, तो मैं छोटे बच्चों को डराने के लिए उनका उपयोग करता था कि जब भी वे सोएं, बच्चों को भेजूं कि जरा अंदर जाकर तो देखो क्या हो रहा है। बच्चे देखें कि नींद भी लगी है, घुर्राटा भी चल रहा है--और आंखें भी खुली हैं!

ढब्बू जी को पेंटिंग का शौक था। एक दिन उन्होंने अपने मित्र डाक्टर
को पेंटिंग दिखाने के लिए बुलाया। सूर्योदय और सूर्यास्त, वृक्षों और पक्षियों के चित्र देख कर तो डाक्टर पर कोई असर पड़ा नहीं; यद्यपि वे चित्र बहुत खूबसूरत थे। फिर आया एक बूढ़ी दुबली-पतली स्त्री का दृश्य। डाक्टर की आंखें उस पर गड़ी रह गईं। ढब्बू जी को थोड़ी राहत मिली, वे खुशी से बोलेः मुझे अपनी बनाई हुई सभी कला कृतियों में यही सर्वश्रेष्ठ लगती है--बुढ़ापे के दुख की कथा, हताशा और पीड़ा चेहरे की झुर्रियों में स्पष्ट झलक आई है। आपका इस चित्र के संबंध में क्या ख्याल है?
डाक्टर ने गंभीर स्वर में अपनी राय पेश कीः आप मानें या न मानें, ढब्बू जी, मुझे तो पूरा विश्वास है, इस बुढ़िया को टी.बी. है।
धर्मदास, तुम्हें नींद की बीमारी है। तुम जब सोते हो, तब तो तुम सोते
ही हो; जब तुम जागे हो, तब भी तुम सोए हो। लेकिन कल चर्चा सुन कर--तारी, खुमारी--ये शब्द तुम्हारे कानों में पहुंच गए होंगे नींद में। तुमने सोचा होगाः हो न हो, यह भी खूब रही! हमें तारी लगती रही अब तक और हम नींद समझते रहे!
आदमी को सुंदर-सुंदर व्याख्याएं मिल जाएं अपनी बीमारियों की, तो उनको, बीमारियों को ढांक लेने की कोशिश करने में लग जाता है। लोग अपनी विक्षिप्तता को धर्म कह सकते हैं। लोग अपनी मूढ़ता को धर्म बना लेते हैं। लोग अपनी निद्रा को भी समाधि कह सकते हैं। लोग चाहते हैं अच्छे शब्द। अहंकार ऐसा आतुर है!
एक सज्जन हैं, उनको मिर्गी की बीमारी है तो बेहोश हो जाते हैं, मुंह से फसूकर गिरने लगता है। वे मेरे पास आए और कहने लगे कि मैं रामकृष्ण का जीवन पढ़ रहा हूं, तो उसमें ऐसा आता है कि वे भी बेहोश हो जाते थे और मुंह से फसूकर गिरता था, तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि वही अवस्था मेरी भी है और लोग गलती से समझ रहे हैं कि मुझे मिर्गी की बीमारी है!
उनकी आंखें देख कर मुझे लगा कि कैसे सच इनसे कहूं, बड़ी चोट लगेगी। उनका चेहरा बिल्कुल ऐसा, लार टपकी जा रही, कि मैं कह दूं कि हां यही बात है। मगर मैं यह भी तो कैसे कहूं! मगर उनकी उत्सुकता यही है कि अगर मैं कह दूं कि हां तुम्हें भी वही अवस्था आ गई जो रामकृष्ण की थी, तो वे इतने आनंदित होंगे कि उनके आनंद का कोई हिसाब न होगा। फिर वे घोषणा करेंगे दुनिया में कि हां गुरु है अगर कोई सच्चा तो यह।
लोगों को सत्य से प्रयोजन नहीं है। लोगों को सांत्वना मिले, ऐसी बातों से प्रयोजन है, चाहे वह असत्य ही क्यों न हो। और सच यही है कि असत्य से ज्यादा सांत्वना मिलती है सत्य की बजाय। सत्य तो झकझोर देता है। सत्य तो कड़वा लगता है। बुद्ध ने कहा हैः सत्य पहले कड़वा लगता है, फिर मीठा। और असत्य पहले मीठा लगता है, फिर कड़वा। असत्य पर शक्कर की पर्त चढ़ाई जा सकती है, सत्य पर नहीं चढ़ाई जा सकती। सत्य तो जैसा है, नग्न, वैसा ही होता है। एक धर्मगुरु अपना व्याख्यान दे रहे थे। मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी गुलजान सामने वाली पंक्ति में ही बैठे हुए थे। तभी धर्मगुरु ने देखा कि मुल्ला की पत्नी तो वहीं बैठे-बैठे ही आंख बंद करके घुर्राटे लेने लगी है। धर्मगुरु ने थोड़ी तो बेचैनी प्रकट की, कसमसाया, फिर भी शांत रहा। पर थोड़ी देर बाद मुल्ला ने अपनी छड़ी उठाई, अपनी टोपी सीधी की और उठ कर चलता बना। धर्मगुरु को यह तो बहुत बुरा लगा कि कोई उठ कर चला जाए। वह तो खैर ठीक कि कोई सो जाए, मगर उठ कर चला जाना किसी का, धर्मगुरु को बहुत अखरा। धर्म-सभा के अंत में उन्होंने मुल्ला की पत्नी से कहा कि देख, तू व्याख्यान के बीच सो गई सो ठीक, मगर तेरे पति को क्या हुआ? मैंने ऐसा क्या कहा कि वह उठ कर ही चला गया?
गुलजान बोलीः महोदय, आप चिंता न करें। दरअसल उन्हें नींद में चलने की आदत है।
धर्मदास, नींद ही होगी। तारी तो साधनी पड़ेगी, साधना करनी होगी। तारी
तो तब लगेगी जब दशम द्वार के करीब पहुंचोगे। जब सहस्रदल कमल पहली बार खुलने लगेगा तब तारी लगेगी। और जब खुल जाएगा तो खुमारी। तारी शुरुआत है, खुमारी अंत है। ये समाधि के दो अंगः तारी पहला कदम और खुमारी अंतिम। लेकिन

लग सकती है तारी। जब नींद लग सकती है तो तारी भी लग सकती है। जिंदा हो, इत्ता तो पक्का है। जिंदा न होओ तो सो भी नहीं सकते। मुर्दा कहीं सोते हैं! जिंदा हो इतना तो पक्का है; नींद से इतनी खबर मिलती है। नींद लग सकती है तो जागरण भी हो सकता है। नींद में ही जागरण की क्षमता छिपी है। नींद के ही आवरण में जागरण छिपा है। जैसे बीज के खोल के भीतर फूल छिपे हैं।
तो घबड़ाओ मत। मगर झूठे आश्वासन भी मत मांगो। मैं आखिरी आदमी हूं जो तुम्हें कोई आश्वासन दे सकूं। मैं तो कोई अवसर नहीं चूकता, जब कि मैं चोट कर सकूं तो जरूर करता हूं। बिना चोट किए तुम जग नहीं सकते। अब एक बात पक्की है कि इतनी बातें तुमने जग कर सुनी होंगी। यह बात बिल्कुल पक्की है कि धर्मदास अभी नहीं सो सकते। अभी कैसे सोएंगे! अभी तो उनकी जान पर गुजर रही होगी कि यह मारा, कि यह मारा! कि भीतर ही भीतर कह रहे होंगे कि किस दुर्घड़ी में यह प्रश्न पूछ लिया! अभी नहीं सो सकते। अगर अभी सो रहे होओ तो बोलो। अभी नहीं सो सकते। अभी तो बिल्कुल जगे होओगे। अभी तो एकदम जाग गए होओगे। चोट पड़ेगी बार-बार तो जागने लगोगे।
सदगुरु का काम ही यही है कि वह तुम्हारी नींद को तोड़ दे, चाहे यह कितना
ही पीड़ादायक, कितना ही कठोर कृत्य क्यों न मालूम पड़े। सदगुरु की करुणा यही है कि अगर उसे कठोर होना पड़े तो कठोर हो।
ले चलेंगे तुम्हें तारी की तरफ। ले चलेंगे तुम्हें खुमारी की तरफ। उसी का तो सारा आयोजन है। तुम्हें डुबो देना है शराब में, खुमारी में! रोआं-रोआं डुबा देना है। तुम्हारे भीतर कोई अणु भी न रह जाए प्यासा। शराब में तुम्हें डुबकी लगवा देनी है। लेकिन जागे बिना यह नहीं हो सकता। जागने की प्रक्रिया सीखो।
धर्मदास, विपस्सना में उतरो, ध्यान करो, होश सम्हालो। धीरे-धीरे! छोटे-छोटे काम होशपूर्वक करने लगो। चलो तो होशपूर्वक बैठो तो होशपूर्वक। कम से कम यहां जब रहो, जब सत्संग में बैठो, तो अपने को झकझोर कर बैठो। नींद आए, तोड़ दो नींद को! और ऐसा नहीं है कि तुम तोड़ना चाहो तो न तोड़ सको।
घर में आग लग जाए, उस रात तुम सो सकते हो? दिन भर के थके-मांदे घर लौटे हो, ऐसा लगता है कि गिरते ही बिस्तर पर सो जाएंगे, और घर में आग लग जाए--फिर रात भर जागे रहोगे। तुम्हारे संकल्प की बात है। तुम्हारे निर्णय की बात है। जागना चाहो, निर्णय करो, संकल्प करो, तो कोई पृथ्वी पर तुम्हें सुला नहीं सकता। और तुम जाग जाओ तो ही परमात्मा की पहचान हो सकती है। सोए-सोए तो जो पहचान होगी, पदार्थ की होगी, परमात्मा की नहीं; देह की होगी, आत्मा की नहीं; व्यर्थ की होगी, सार्थक की नहीं। सोए रहे तो सपनों के जाल में खोए रहोगे--माया। और जागे तो माया समाप्त, सपने समाप्त। तो प्रभात हो गई, भोर हो गया। फिर तुम पंख फैला सकते हो। फिर आकाश में उड़ सकते हो।

आखिरी प्रश्नः ओशो, मैं राजनीति में हूं, क्या राजनीति छोड़ कर संन्यासी बन जाऊं?

रामेश्वर प्रसाद! राजनीति इतनी आसानी से छोड़ सकोगे? राजनीति में रग-
पग गए होओगे। राजनीति भीतर घुस गई होगी। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस चुनाव में हार गए होओ, तब सोचा कि चलो संन्यासी हो जाएं। तब संन्यास भी राजनीति ही होगी। और कुछ नहीं--कि चलो अपनी हार को भी जीत का ढंग दे दिया, कि कह दिए कि अंगूर खट्टे हैं! कि अरे जीतना ही कौन चाहता था! कि हमें रस ही नहीं राजनीति में। नहीं तो अचानक तुम यहां आ कैसे गए? जो सत्ता में होते हैं, उनका तो पता ही नहीं चलता फिर।
मुझे पहले भूत-प्रेतों में विश्वास नहीं था, लेकिन अब हैः क्योंकि इतने भूतपूर्व मंत्री, इतने भूतपूर्व मुख्यमंत्री, इतने भूतपूर्व उपमंत्री कि लगता है कि भूत-प्रेत भी होते हैं। भूतपूर्व मंत्री आते हैं।
मंत्री तो एकदम नदारद हो जाते हैं! तुम जरूर कहीं पछाड़ खा गए, कहीं पिट गए।
अब तुम सोच रहे होओगे कि चलो संन्यास... तो कह देंगे कि हमें रस ही नहीं है, हमें कुछ लेना-देना ही नहीं।

कहते होः "मैं राजनीति में हूं, क्या राजनीति छोड़ कर संन्यासी बन जाऊं?"
अगर तुम्हें संन्यास समझ में आ गया, तो राजनीति छूट गई; छोड़ना नहीं पड़ेगी। और अगर छोड़ना पड़े, तो मैं कहूंगा, अभी मत छोड़ना। क्योंकि जिसे छोड़ना पड़ता है वह कुछ न कुछ बचा रह जाता है। छोड़ना पड़ने में जो चेष्टा करनी पड़ती है, उसमें ही बात बच जाती है।
और फिर इस बार हार गए तो क्या हर्ज है, लगे रहो! कितने ही पीटो, मगर लगे रहो। तो एक न एक दिन घुस ही जाओगे। सौ-सौ जूते खाएं, तमाशा घुस कर देखें। जूतों-मूतों की फिकर मत करना। ये तो अच्छे लक्षण हैं। यह तो इस बात की खबर है कि जनता तुम्हें पहचानने लगी। खाते ही रहे जूते तो एक न एक दिन तमाशा घुस कर देखोगे। और तमाशा दिल्ली बिना पहुंचे कोई देख सकता नहीं। तमाशा तो सब वहीं है। लगे रहो, इतनी जल्दी क्या हारना! कुछ कला सीखो राजनीति की, अगर हार गए।

नोट के दम पर वह वोट लेता है
बेचारा कुर्सी के लिए
टमाटर और अंडे
गाली और डंडे
क्या-क्या नहीं सहता है
हूटिंग हो कितनी ही
मंच पर खड़ा रहता है
अपमान से डरता नहीं
हिम्मत से काम लेता है
यह नेता है।

नेता एक साधना है, एक तपश्चर्या है--आधुनिक तप! पुराने तपस्वियों ने क्या खाक किया, जला ली धूनी, बैठ गए राख लगा कर! अरे उसमें कुछ भी लगा नहीं!

नोट के दम पर वह वोट लेता है
बेचारा कुर्सी के लिए
टमाटर और अंडे
गाली और डंडे
क्या-क्या नहीं सहता है
हूटिंग हो कितनी ही
मंच पर खड़ा रहता है
अपमान से डरता नहीं
हिम्मत से काम लेता है
यह नेता है।

कितना ही मारो इसे
मुस्कराए जाता है
पानी नहीं पीता है
रोटी नहीं खाता है
बस यह तो पार्टी का चंदा चबाता है नई-नई पार्टियां प्रतिदिन बनाता है पुराना रवैया इसे नहीं भाता है नये-नये झंडों और
नारों का प्रणेता है
यह नेता है।

पांच साल तक मैट्रिक में
जब पास हो सका नहीं
और न ही कालेज में

दाखिला मिला कहीं
तब यह बेरोजगार बन बैठा गुंडा धीरे-धीरे यहां तक बढ़ा लिया धंधा कि न हुआ बी.ए. या एम.ए.
पर देखो बन ही गया
आखिर एम.एल.ए.
आवारा बाप का यह
बिगड़ा हुआ बेटा है
यह नेता है।

बंदर सी सूरत है
कुत्ते की मूरत है
बुद्धि की
अकल की
जरा नहीं जरूरत है
हे प्रभु! यह कैसा महूरत है
देश की नैया यह नालायक खेता है
यह नेता है।

जमे रहो! घबड़ाओ मत! इतनी जल्दी क्या संन्यास की! लेकिन अगर समझ में आ
गई हो बात तो फिर यह मत पूछो कि क्या राजनीति छोड़ दूं? मुझसे क्यों पूछते हो? अगर हाथ में सांप पकड़े हो और दिखाई पड़ गया कि सांप है, तो क्या पूछते फिरोगे कि क्या सांप छोड़ दूं? जैसे दिखाई पड़ा वैसे ही छोड़ दोगे। पैर में कांटा गड़ा तो किसी से पूछते फिरते हो कि कांटा निकाल दूं? अरे जैसे ही पता चला, वैसे ही निकालने की कोशिश में लग जाओगे। अगर राजनीति की व्यर्थता दिखाई पड़ गई है, तो क्या पूछना, बात खत्म हो गई! एक परदा गिर गया।
संन्यास का अर्थ यही हैः दृष्टि; दर्शन; प्रतीति। मेरे कहे से तुम राजनीति छोड़ दोगे तो तुम यहां राजनीति करोगे। और मैं नहीं चाहता कि यहां राजनीति चले। राजनेता जहां जाएगा वहीं राजनीति चलाएगा। वह जानता ही एक बात है। उसको गणित ही एक आता है--वह हर चीज में से तरकीबें निकाल लेगा। नहीं, छोड़ने की बात मैं नहीं कहूंगा। हां, अगर तुम्हें दिखाई ही पड़ गया है, अगर मेरी बात तुम्हें सत्य लग रही है; लगता है कि जीवन ध्यान होना चाहिए, सुरति बननी चाहिए, कि जीवन परमात्मा की तलाश होनी चाहिए--तो पूछो मत छोड़ने की बात। बात खत्म हो गई। फिर संन्यास तुम्हारा है। फिर मैं राजी हूं--संन्यास के सारे आशीर्वाद तुम पर बरसा देने को! और तभी तुम संन्यासी हो सकते हो।
राजनीति छोड़ कर नहीं--छूट जाए तो; बोधपूर्वक। चेष्टा कर के त्याग न करना पड़े; सिर्फ समझ काफी है। समझ ही अगर त्याग बने किसी चीज का तो त्याग सच्चा होता है। और अगर समझ के बिना तुम जबरदस्ती कर के त्याग कर दो तो त्याग सच्चा नहीं होता है। पीछे के दरवाजे से सारी बात वापस लौट आती है। फिर वही खेल शुरू हो जाते हैं। ऊपर से राजनीति छोड़ दोगे, भीतर घुमड़ेगी। और भीतर घुमड़े, इससे बाहर ही बेहतर है।
इसलिए रामेश्वर प्रसाद, मेरी सलाह हैः समझो, सुनो, गुनो। और अगर मेरी बात सत्य दिखाई पड़ जाए... मैं नहीं कहता मानो; मैं कहता हूंः समझो, गुनो। मैं नहीं कहता विश्वास करो; मैं कहता हूंः अनुभव करो। रुको यहां! ध्यान में डूबो। और अगर लगे यह मार्ग है; यही मार्ग है--ऐसी प्रतीति प्रगाढ़ हो जाए तो गई राजनीति। राजनीति का कचरा कुछ छोड़ना पड़ता है! और जब राजनीति चली जाती है, तब जो शेष रह गया वही संन्यास है।
राजनीति के विकल्प में नहीं संन्यास लेना है। राजनीति चली जाए तो फिर
जो शेष रह जाएगा-निर्मल चित्त, राजनीति-मुक्त, कुटिलता से मुक्त, चालबाजी चालाकियों से मुक्त--वही संन्यास है। और चालबाजियां हजार तरह की हैं। कोई राजनीति सिर्फ राजनीति में ही थोड़े ही है। बाजार में भी राजनीति है--धन की। और घर में भी राजनीति है। पति पत्नी पर कब्जा करना चाहता है। पत्नी

पति पर कब्जा करना चाहती है। घर-घर में तो राजनीति है। बच्चे तक... बाप-बेटों के बीच राजनीति है। छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं कि कैसे राजनैतिक चाल चलनी है। मेहमान घर में आ गए, बच्चे उपद्रव करने लगते हैं। पिता जी जल्दी से पांच का नोट निकाल कर पकड़ा देते हैं कि जाओ, सिनेमा देख आओ; कि जाओ घर के बाहर। यही पिता जी से बच्चा पूछ रहा था तीन दिन से कि सिनेमा देख आऊं--डांटते थे कि नहीं, सिनेमा नहीं देखना है। और अब खुद ही कह रहे हैं कि जाओ सिनेमा देख आओ, किसी तरह यहां से टलो। बच्चा राजनीति सीख रहा है। बच्चा जान रहा है कि बाप कौन सी भाषा समझता है।
मेहमान जब घर में हों, उपद्रव मचाओ। पत्नी भी जानती है कि पति कौन सी भाषा समझता है। जिस दिन उसको राजनीति करनी होती है, उस दिन देखो ज्यादा कप-बसी टूटते हैं, बर्तन गिरते हैं, दरवाजे भड़ा-भड़ होते हैं। पति समझ जाता है कि अब अपनी पूंछ दबा लो, अब मामला बिगड़ा जा रहा है।
राजनीति कुछ राजनीति में ही नहीं है; हर जगह राजनीति है। एक जगह से छोड़ोगे, दूसरी जगह प्रकट हो जाएगी। अगर राजनीति की व्यर्थता समझ में आ गई तो सब जगह से विलीन हो जाएगी।

अपने पति के नाम का
रोना रोते हुए
एक महिला ने कहा--
सुनो बहन,
इस इनसान के पीछे मैंने
क्या-क्या दुख नहीं सहा!
मैं बीस वर्षों से इसके साथ
जी नहीं,
सड़ रही हूं,
यही समझो कि धीरे-धीरे मर रही हूं!

बोली पड़ोसिन एक आह भरती हुई-- क्यों जी रही हो इस तरह
नरक की आग में जलती हुई?
अरी क्या कहूं तेरी मति को
पगली!
तलाक क्यों नहीं दे देती
अपने दुष्ट पति को?

दहाड़ मार कर रोती हुई महिला चिल्लाई-- हे संतोषी माई!
रक्षा करो मेरे जीवन की
मैं सती हूं, और न सताओ
ये तलाक की बातें मुझे न बताओ
मैं कसम खा कर कहती हूं
खुद के तन-मन की
हे संतोषी माई,
रक्षा करो इस भक्तन की!
अभी तो धीरे-धीरे ही मर रही हूं किसी तरह जिंदगी गुजार रही हूं मगर पति को तलाक दे कर
इसे खुशी से फूला देख कर
मैं सदमा सहन न कर पाऊंगी
सच कहती हूं
एक क्षण में मर जाऊंगी!

राजनीति जगह-जगह है। पत्नी तलाक नहीं दे रही, यह मत सोचना कि सती है।
और जो पत्नी तुम्हारी चिता पर चढ़ कर सती हो जाए, यह मत सोचना कि सती हो रही है; हो सकता है सिर्फ पीछा कर रही हो कि आगे कहां जाते हो कि देखूं बच कर कहां जाते हो!
मनुष्य जब तक चालबाजी से भरा है तब तक राजनीति से भरा है। जिस दिन तुम्हें समझ में आ जाए, उसी दिन संन्यास है। समझ संन्यास है। प्रज्ञा संन्यास है।

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
नौवां प्रवचन

सखि, वह घर सबसे न्यारा

सूत्र

साहिब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
स्याही रंग छुड़ायके रे दियो मजीठा रंग।
धोय से छूटे नहीं रे दिन दिन होत सुरंग।।
भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग देइ बोर।
दुख देह मैल लुटाय दे रे खूब रंगी झकझोर।।
साहिब ने चुनरी रंगी रे पीतम चतुर सुजान।
सब कुछ उन पर बार दूं रे तन मन धन और प्रान।।
कहै कबीर रंगरेज पियारे मुझ पर हुए दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़ि के रे भई हौं मगन निहाल।।

अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।
कबिरा जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।।
सुन्न मंडल में घर किया, बाजै सब्द रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल।।
सुन्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव।
सुधा सिंधु सुख विलसही, विरला जाने भेव।।

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।
जिन पावन भुइं बहु फिरे, घूमें देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया आंगन भया बिदेस।।

सखि, वह घर सबसे न्यारा, जहं पूरन पुरुष हमारा।।
जहां न सुख-दुख सांच-झूठ नहिं पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन-रैन चंद नहिं सूरज, बिना जोति उजियारा।।
नहिं तहं ग्यान-ध्यान नहिं जप-तप बेद-कितेब न बानी।
करनी धरनी रहनी गहनी, ये सब उहां हेरानी।।
धर नहिं अधर न बाहर-भीतर, पिंड-ब्रह्मांड कछु नाहीं।
पांच तत्त गुन तीन नहीं तहं, साखी सब्द न ताहीं।।
मूल न फूल बेल नहिं बीजा, बिना बृच्छ फल सोहै।
ओहं-सोंह अध ऊरध नहिं, स्वासा लेखन को है।।
नहिं निरगुन नहिं अविगत भाई, नहिं सूछम-अस्थूल।
नहिं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के मूल।
जहां पुरुष तहंवा कछु नाहीं कहे कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।।

मैं नई "तारिका" नभ में आ चमकी भूली-भटकी।
मानो, मैं वन की कलिका उपवन में आकर चटकी।
मानो, मैं पथिक अकेली भूली पथ-रेखा घर की।
मैं बिछुड़ी बूंद, अमरता के मिलनोन्मुख सागर की।
क्या जाने किस गिरि से गिर मैं नीचे भू पर आई।
किस विकल जलद के दृग ने प्राणों की पीर बहाई?
बह चली "विश्व-सरिता" में कर पार नगर, निर्जन-वन; अस्तित्व निरख अपना ही मैं विस्मित होती क्षण-क्षण।
प्रत्येक, हृदय का कंपन कहता है एक कहानी।
"तू महा-उदधि के उर की, बस, एक लहर दीवानी!"
किस "सागर" का आमंत्रण है मलय समीरण लाई?

करने हैं "पार" मुझे अब कितने गिर गहूर खाई
होता है भान कहीं है मेरा भी "मधु-नंदन-वन।"
छूती थीं कभी मुझे भी शीतल "शशि-किरनें" छन छन!
अब पथ भूली उस सुख का, पाया यह "कंटक-कानन।"
किस ओर बहा जाता है अब मेरा आकुल जीवन?

पृथ्वी मनुष्य का घर नहीं है, परदेस है। लाख मानो कि घर है, फिर भी सराय सराय है और घर नहीं हो सकती। सराय वह जहां सांझ टिके और सुबह उठ जाना पड़े। घर वहां जहां शाश्वतता हो। यह संसार तो क्षणभंगुर है। यहां घर सिर्फ पागल बनाते हैं। होशियार तो सराय समझ कर ठहरते हैं और गुजर जाते हैं।
दूर है देश हमारा। कभी-कभी कोई उस देश की खबर ले आता है। कभी-कभी किसी
को उस देश की सुधि आ जाती है। जिसको उस देश की सुधि आ जाती है, उसकी बात हमारे लिए बेबूझ होने लगती है। हम समझते हैं एक भाषा, वह बोलता है कोई और भाषा। और इसलिए जब तक इन संदेशवाहकों की भाषा को समझने की श्रद्धा न हो, तत्परता न हो, आकुलता-व्याकुलता न हो, प्यास न हो, तड़फ न हो, एक अभीप्सा न हो--तब तक हम चूकते ही चले जाते हैं।
यूं तो कबीर के शब्द सीधे-साधे हैं। इससे सीधे-साधे शब्द और क्या होंगे! कबीर बे पढ़े-लिखे हैं, जुलाहे हैं। जो बोलते हैं वह जुलाहे की भाषा है। इसलिए प्यारी भी बहुत है। इसलिए सीधी-साधी भी बहुत है। उसमें मिट्टी की सौंधी सुगंध है। उसमें गांव की सरलता-सहजता है। जैसे खदान से अभी-अभी निकला हीरा, तराशा नहीं गया। अभी जौहरियों के हाथ नहीं पड़ा। अनगढ़ है; पर अनगढ़ है, इसलिए प्राकृतिक है, नैसर्गिक है, स्वतःस्फूर्त है। उपनिषदों के वचन जौहरियों ने खूब निखारे हैं। बुद्ध के वचन एक सम्राट के वचन हैं-- सुसंस्कृत। महावीर के वचन में गणित है, गहरा तर्क है; आकाश को छू लेने वाली ऊंचाइयां हैं। कबीर के वचनों में जमीन में गड़ी हुई जड़ें हैं।
अगर तुम कबीर को भी न समझ पाओ तो फिर किसी को भी न समझ पाओगे। इसलिए कबीर पर इतना बोला हूं। सबको बाद दी है--बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को। बोला हूं उन पर, पर इतना नहीं जितना कबीर पर। और कारण यही है कि अगर कबीर से चूक गए तुम तो फिर तुम किसी को न समझ पाओगे। कबीर को समझ लो तो सबको समझ लिया, जानना। क्योंकि कबीर तुम्हारे निकटतम हैं। बुद्ध और तुम्हारे बीच बड़ा फासला है। जो फासला राजमहल और झोपड़े के बीच होता है, वही फासला है। कबीर और तुम्हारे बीच कोई फासला नहीं है। अगर जरा तुम सजग हो जाओ तो कबीर के सीधे-साधे शब्द तुम्हारे भीतर अमृत को घोल जाएं। और सीधे-साधे हैं; लाग-लपेट नहीं उनमें, तर्कजाल नहीं उनमें; बोलचाल की भाषा के हैं। इसलिए एक ताजगी भी है--ऐसी ताजगी जो फूलों में होती है; सुबह घास की पत्तियों पर जमी हुई ओस के कणों में होती है।
कबीर को समझना अपरिहार्य है। कबीर तुम्हारे लिए पहली सीढ़ी बन सकते हैं और अंतिम भी।
पहली बातः हम जहां हैं, वहां हम आ गए हैं, वह हमारा घर नहीं है। और हमें जल्दी ही अपना घर खोज लेना है। एक सराय से दूसरी सराय, एक होटल से दूसरी होटल कब तक भटकते रहोगे?

बहरा है जगत किसे मैं प्राणों की पीर सुनाऊं?
इन कांटों में मैं कैसे अब अपना नीड़ बनाऊं?
जल उठी अचानक उर में किस आकांक्षा की ज्वाला?
है कौन, बता दे कोई, यह आग लगाने वाला?
हो उठा तरंगित मानस, उर में सागर लहराता।
अभिलाषा की लहरों का अब छोर नहीं मिल पाता। किसकी स्मृति अंतस्तल को करती पल-पल मतवाला? किसने अपनी ममता का छिप-छिप कर बंधन डाला? अलिगुंजन-सा कानों में अस्पष्ट "गान" है गाता, परिचित-सा, किंतु न उसका कुछ अर्थ समझ में आता।
वीणा के तार बजा कर हरिणी-सा मुझे बुलाता।

किसका "आकर्षण" मुझको अनजान कहां ले जाता?
उड़ता है हृदय निरंतर पर, उसे नहीं है पाता,
यह व्यर्थ असीम गगन में "चक्कर" अविराम लगाता!
यदि कभी, "अलख", "पथ" तेरा पल भर को भी मिल जाता,
इस "भूल-भूलैयां" से तब छुटकारा मिल पाता।

कबीर में वह झलक मिल सकती है। उस मार्ग की जरा सी भी झलक तुम्हारी समझ में आ जाए तो घर दूर नहीं है। शायद हम पीठ किए खड़े हैं और घर पीछे है और हम आगे ही आगे दौड़े चले जाते हैं। हम घर से दूर ही दूर निकले जाते हैं। घर की ही खोज करते हैं और घर से दूर निकले जाते हैं, क्योंकि पीछे लौट कर देखते ही नहीं।
घर शायद भीतर है और हमारी यात्रा बाहर की तरफ है--काशी और काबा और कैलाश, सब बाहर। और असली तीर्थ भीतर--वहां जहां तुम्हारी चेतना का उदगम-स्रोत है। गंगा भागी जाती है गंगा सागर की तरफ। वहां नहीं है घर। चलना है गंगोत्री की तरफ। जहां से आए हैं वहां चलना है, तब घर मिलेगा। मूल उदगम को खोजना है, तब घर मिलेगा। बजाने दो कबीर को तुम्हारे हृदय की वीणा के तार। शुरू-शुरू समझ में न भी आए तो फिकर मत लेना; किसी की समझ में शुरू-शुरू में बात नहीं आती। बात ही ऐसी है, तुम्हारा कोई कसूर नहीं है।

अलिगुंजन-सा कानों में अस्पष्ट "गान" है आता,
परिचित-सा, किंतु न उसका कुछ अर्थ समझ में आता।

परिचित सा भी लगेगा। जैसे गीत कहीं सुना हो--किसी स्वप्न में! कुछ भूली-बिसरी याद उमगने लगेगी। मगर अर्थ बिल्कुल स्पष्ट भी न हो जाएगा; ऐसा नहीं स्पष्ट हो जाएगा जैसे दो और दो चार। एक गुन-गुन तो उठेगी, मगर उस गुनगुन के शब्द पकड़ में न आएंगे।

वीणा के तार बजा कर हरिणी-सा मुझे बुलाता!
किसका "आकर्षण" मुझको अनजान कहां ले जाता?

पहले डर भी लगेगा कि कोई अज्ञात आकर्षण खींचने लगा। कहीं मेरी बसाई हुई बस्ती उजड़ न जाए! मेरे न्यस्त स्वार्थो का जाल बिखर न जाए! कितनी तमन्नाओं से, कितनी उम्मीदों से यह मिट्टी का घर बनाया है! कितनी आशाओं से इसकी नींव के पत्थर रखे हैं! यह सब कहीं धूल-धूसरित न हो जाए। इस डर से हम आंख नहीं खोलते। कभी-कभी कोई वीणा भी हमारी छू देता है, तार भी बज उठते हैं, तो भी हम अपने को कहीं और व्यस्त कर लेते हैं। हम नहीं चाहते कि कोई हमें याद दिलाए--उस पार हमारा घर है, क्योंकि इस पार हमने बहुत उलझाव खड़े कर लिए हैं। हालांकि सब उलझाव पड़े रह जाएंगे। कल मौत आएगी और जहां है, जो जैसा है वैसा ही पड़ा रह जाएगा। कुछ भी तुम अपने साथ न ले जा सकोगे। फिर भी कैसे उलझे हो, कैसे व्यस्त हो, कैसे पागल की तरह दौड़े जाते हो! कबीर को तुम्हारी वीणा के तार छूने दो। हृदय को सामने कर दो। हृदय को सामने कर देना सत्संग है। बुद्धि को ऐसे हटा देना बगल में, क्योंकि बुद्धि हृदय तक पहुंचने ही नहीं देती बात को। ऊहापोह में ही भटका देती है "ठीक", या गलत? शास्त्र के अनुकूल है या नहीं? मेरे सिद्धांत के अनुकूल है या नहीं? क्या तुम्हारा सिद्धांत! क्या खाक तुम्हारा सिद्धांत!
सिद्धांत का अर्थ ही होता है कि वह केवल सिद्धों के पास होता है, तुम्हारे पास नहीं हो सकता। सिद्धांत का अर्थ होता है--जो सिद्ध हो गया हो जिसने अंत पा लिया--उसका सिद्धांत होता है।
इधर मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैंः आप जो कहते हैं उससे हमारे सिद्धांत को बड़ी अड़चन होती है। तुम्हारा और सिद्धांत, तो तुम यहां आए किसलिए? सिद्धांत का वही अर्थ नहीं होता है जो निष्कर्ष का होता है। निष्कर्ष बौद्धिक होता है, तार्किक होता है। गलत भी हो सकता है, क्योंकि अनुमान ही है। सही होने की संभावना कम ही है। अंधेरे में टटोला है, अंधेरे

में तीर चला दिया है--लग जाए, लग जाए। लगने की संभावना बहुत कम है। न लगने की संभावना ज्यादा है। लग जाए तो तीर, न लगे तो तुक्का।
लेकिन सिद्धांत अनुमान नहीं है। सिद्धांत तो साधना की अंतिम परिणति है। सिद्धांत तो सिद्धि की सुवास है। सिद्धांत तो केवल सिद्धों के पास होता है। और तुम कहते होः हमारे शास्त्र के विपरीत है! तुम शास्त्र क्या खाक समझोगे! अपने को नहीं समझा अभी--और शास्त्र को समझने चल पड़े! तुम उपनिषद नहीं समझ सकते; वह भाषा उनकी है जिन्होंने अपने को जाना। जिन्होंने अपने भीतर गहरी डुबकी मारी, उस डुबकी के अनुभव से ही वे बोले हैं। तुम क्या समझोगे? तुम जो भी समझोगे वह गलत होगा। तुम अपनी जगह से समझोगे।
न तुम्हारा कोई शास्त्र है, न तुम्हारा कोई सिद्धांत है, न हो सकता है। ये भ्रांतियां छोड़ो। बुद्धि को एक तरफ रखो, ताकि हृदय को बजाया जा सके। बज उठे हृदय! तो पहले तो कुछ भी समझ में न आएगा। उमंग उठेगी, उत्साह उठेगा। एक अपूर्व ऊर्जा का जागरण होगा। कबीर कहते हैंः रोआं-रोआं दीया बन जाएगा। एक उजियाला हो जाएगा। लेकिन अगर हिम्मत बांध कर चल ही पड़े किसी सदगुरु के साथ, तो धीरे-धीरे अर्थ भी प्रकट होने लगेगा। पहले संगीत, फिर अर्थ। पहले वीणा बजेगी और फिर तुम्हारे भीतर ही कुरान और उपनिषद और गीता उठेंगे। तुम्हारे भीतर जब भगवान बोले तभी भगवदगीता जानी; उसके पहले नहीं। उसके पहले किताबें हैं। उसके पहले शब्द हैं। उसके पहले सिद्धांतों की कोई संभावना ही नहीं; अनुमान है, कल्पनाएं हैं, ऊहापोह है, दर्शन हैं, चिंतन-मनन हैं, --मगर प्रतीति नहीं, साक्षात नहीं।
कबीर के सामने अपने हृदय को कर दो।
कहते हैं कबीर--
साहेब है रंगरेज...
देखते ही जुलाहे की भाषा! साहेब है रंगरेज--परमात्मा को रंगरेज कह रहे हैं।
साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
स्याही रंग छुड़ाय के रे दियो मजीठा रंग।
परमात्मा की तरफ जो चला है उसने दुल्हन बनने की ठान ली। उसने तय कर लिया है कि रचाएंगे विवाह, डालेंगे भांवर परम के साथ। छोटी-मोटी क्या भांवरें डालनी! भांवर ही डालनी तो शाश्वत के साथ डालेंगे। अमृत के साथ जोड़ेंगे संबंध, चुनरी रंगनी होगी फिर। दुल्हन को सजना भी होगा फिर। मगर चुनरी भी "वही" रंग सकता है। हम रंगेंगे, हमारे रंग तो उतर जाते हैं। हमारे रंग पक्के नहीं होते। हम ही कच्चे हैं, हमारे रंग कैसे पक्के होंगे! साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
दे दो उसके हाथ में अपनी चुनरी तो रंग दे।
स्याही रंग छुड़ायके रे दियो मजीठा रंग।
और पहला काम तो यह करेगा कि तुमने जो गंदी कर ली है चुनरी, न मालूम कितने दाग लगा लिए हैं--दाग ही दाग हो गए हैं चुनरी में। लेकिन तुम तो उन्हीं दागों को समझते रहे कि छपाई है, कि छींट है। तुम तो उन्हीं दागों को समझते रहे कला है। तुम्हारी चुनरी की वही हालत है जो आधुनिक चित्रकला की है।
मैंने सुना है कि पेरिस में आधुनिक चित्रकारों की एक प्रतियोगिता थी।
उस प्रतियोगिता में जो प्रथम पुरस्कार मिला, वह उस व्यक्ति को मिला जो भूल से अपनी पेंटिंग तो नहीं लाया, लेकिन जिस प्लेट में उसने रंग मिलाए थे वह ले आया। उसको प्रथम पुरस्कार मिल गया। आधुनिक चित्रकला में समझ में आ जाए अगर चित्र तो वह आधुनिक ही नहीं है। समझ में न आए तो आधुनिक है।
पिकासो के पास एक अमरीकी करोड़पति चित्र खरीदने गया था। उसने कहा मुझे
दो पेंटिंग चाहिए, पिकासो के पास एक ही पेंटिंग तैयार थी। वह भीतर गया, उसने पेंटिंग को कैंची से दो टुकड़ों में काट दिया। बाहर लाकर दो पेंटिंग बेच दीं।... क्योंकि पता लगाना ही मुश्किल है। तुम्हें यह भी पक्का करना मुश्किल होगा कि इसको लटकाएं कैसा, कौन सी तरफ सीधी है और कौन सी तरफ उलटी है।

यह भी कहानी मैंने सुनी हैः एक महिला ने चित्र बनवाया अपना पिकासो से। छह महीने तो उसने बनाने में लगाए, लाखों रुपये दाम मांगे। और जब चित्र बन कर आ गया, महिला ने चित्र को देखा। उसने कहाः और तो सब ठीक है, लेकिन नाक मेरी ठीक नहीं आई।
पिकासो ने चित्र देखा और कहाः यह बहुत मुश्किल बात है, सुधार करना बहुत मुश्किल है।
उस महिला ने कहाः क्यों? इतना क्या मुश्किल है, जब इतने पैसे दे रही हूं? और थोड़े ले लेना, मगर सुधार कर दो।
पिकासो ने कहाः मुश्किल यह है कि नाक कहां है, मुझे खुद ही पता नहीं।
छह महीने हो गए बनाते-बनाते, नाक कहां बनाई है यह मैं खुद ही भूल गया हूं। आधुनिक चित्रकला मनुष्य के मन की प्रतीक है। ऐसा ही विक्षिप्त, ऐसा
ही विकृत मनुष्य का मन है। यही तुम्हारी हालत है, यही तुम्हारी चदरिया है, यही तुम्हारी चुनरी है। लेकिन जब तुम परमात्मा को दोगे तो इसमें सारे दाग, स्याहियों के दाग पड़ गए हैं जन्मों-जन्मों में, इन सबको धो डालेगा। वही धो सकता है। तुम तो धोने के नाम पर कुछ और बिगाड़ लोगे। तुम तो बिगाड़ने में कुशल हो गए हो। तुम्हारा तो जन्मों-जन्मों का अभ्यास बिगाड़ने का है। तुम बनाना जानते ही नहीं। तुमसे कोई चीज बन जाए तो आश्चर्य। तुम निष्णात हो बिगाड़ने में। क्योंकि तुम जीते हो विध्वंस में, घृणा में, हिंसा में, द्वेष में, ईर्ष्या में, जलन में। तुमसे बनेगा क्या? तुम्हारे भीतर आग की लपटें जल रही हैं। तुम्हारे भीतर सब तरह के जहर हैं। तुम सांप को काटो तो सांप मर जाए। वह तो यह कहो कि आदमी सांप को काटते नहीं। विषाक्त हो तुम; तुम सुधारने में लगोगे, और गड़बड़ हो जाएगी।
इसलिए कबीर कहते हैंः अगर सुधरवाना ही हो तो सौंप दो उसके हाथ में, समर्पण करो। संकल्प से नहीं पहुंचोगे तुम परमात्मा तक, समर्पण से पहुंचोगे। यह तुम्हारे संकल्प की बात भी अहंकार है। मैं पहुंचकर रहूंगा, मैं पा कर रहूंगा--इसमें न तो पहुंचना है न पाना है; इसमें बस मैं की ही उदघोषणा है। और मैं ही तो बाधा है। छोड़ दो उसके हाथ में, फिर--होनी होय सो होय। फिर जो उसे करना हो करने दो।
साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
कबीर कहते हैंः मैं तो तुम्हें अपनी बता दूं, इस भांति मेरी चुनरी रंगी गई कि मैंने उसको ही दे दी। मैंने कहाः मेरे किए तो कुछ न होगा। मैं तो जो करूंगा गलत हो जाता है। मैं तो जन्मों-जन्मों से गलत करने का अभ्यासी हूं। मैं तो ठीक भी करने जाऊं तो गलत हो जाता है। मैं तो शुभ करता हूं तो अशुभ हो जाता है। पुण्य करने की आकांक्षा रखता हूं, पाप हो जाता है। मेरे हाथ खराब हो गए। मेरा मन खराब हो गया। अब मैं किससे संकल्प करूं? मैं तो विकृति ही विकृति हूं। इसलिए सब तुम्हारे चरणों में रख देता हूं।
ऐसे मेरी चुनरी रंगी गई, कबीर कहते हैं। और जो मेरे साथ हुआ वही तुम्हारे साथ भी हो सकता है।
साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
मैंने दी नहीं कि उसने रंगी नहीं। वह है रंगरेज। वह बैठा ही था जैसे जन्मों-जन्मों से प्रतीक्षा करते कि कबीर ले आओ, चुनरी मैं रंग दूं। यह तुम क्या कर रहे हो, दाग पर दाग लगाए जाते हो, गंदे पर गंदा किए जाते हो? मेरा काम बढ़ाए जाते हो। दे दो मुझे।
मगर हम सब जिद्द में हैं कि अपना कुछ करके रहेंगे, दिखा कर रहेंगे। हम
भी कुछ हैं! उसी जिद्द में दाग लगते चले जाते हैं!
स्याही रंग छुड़ायके रे दियो मजीठा रंग।
कबीर कहते हैंः हद कर दी। सारे दाग छुड़ा दिए, सारा काला रंग छुड़ा दिया
और ऐसा पक्का रंग दिया है!
धोय से छूटे नहीं रे दिन दिन होत सुरंग।
ऐसा चमत्कार किया है कि कितना ही धोऊं, छूटता ही नहीं; जितना धोता हूं उतना ही और सुरंग होता जाता है, और-और निखरता आता है।
भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम के रंग देइ बोर।

कह दी सारी भक्ति--भक्ति का पूरा शास्त्र आ गया इस छोटे से वचन मेंः भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम के रंग देइ बोर।
भाव के कुंड!
तुम्हारे भीतर दो तल हैंः एक विचार का, एक भाव का। एक है मस्तिष्क जहां चलते सोच-विचार और एक है तुम्हारा हृदय, जहां उठतीं भावनाएं। हम सोच-विचार में अटके हैं।
लोग परमात्मा के संबंध में सोच रहे हैं।... परमात्मा के संबंध में खाक सोचोगे! जिसका पता ही नहीं है, क्या सोचोगे? सोच-विचार तो उसका हो सकता है जिसका हमें पता हो। परमात्मा तो अपरिचित है। है या नहीं, यह भी पता नहीं। क्या है, कैसा है, यह भी पता नहीं। उसके संबंध में सोच-विचार कैसे करोगे? सोचा कि चूके। जितना सोचा उतने दूर निकल गए। सोचा कि भटके। सोचने में भटकाव है। सोचने में उलझाव है। सोचने में अंतिम परिणति विक्षिप्तता है। लेकिन भाव एक और तल है तुम्हारे भीतर--जहां सोच-विचार नहीं होते; जहां प्रतीति होती है--सहज, बिना विचार के।
तुम एक फूल को देखते हो, क्या तुम विचार करके यह निष्कर्ष लेते हो कि
यह सुंदर है? अगर विचार करके निष्कर्ष लोगे तो निष्कर्ष ले ही न सकोगे। क्या प्रमाण दोगे कि गुलाब का फूल सुंदर है? और कोई जिद्दी अगर खड़ा हो जाए, कहे कि प्रमाण दो, तर्क दो, तो मुश्किल में पड़ जाओगे। कहोगे कि भई, सुंदर प्रतीत होता है, प्रमाण और क्या? अगर वैज्ञानिक के पास ले जाओगे तो फूल का विश्लेषण कर देगा, बता देगा कि कितना मिट्टी है, कितना पानी है, कितने रासायनिक द्रव्य हैं, क्या-क्या है, सब बता देगा; कितना लोहा, कितना तांबा, सब निकाल कर रख देगा। मगर सौंदर्य, वह कह देगाः कहीं है नहीं इसमें। और सब तो निकाल देगा, लेकिन सौंदर्य भर चूक जाएगा।
विज्ञान सौंदर्य को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि विज्ञान भाव के जगत से सोचता नहीं; सोचने के जगत से सोचता है। एक भाव के भी देखने का ढंग है। एक भाव का भी झरोखा है। भाव की भी अपनी एक दृष्टि है। भाव की अपनी रोशनी है। भाव का अपना ही अलग आयाम है। जब तुम फूल में सौंदर्य देखते हो तो वह भाव है, वह विचार नहीं है। जब तुम संगीत में सौंदर्य देखते हो, वह भाव है, विचार नहीं है। किसी विचारक से कहोगे कि संगीत में बड़ा सौंदर्य है; वह कहेगा, मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता, मुझे तो सिर्फ शोरगुल मालूम पड़ता है। तारों की खींचातानी से कहीं सौंदर्य पैदा हो सकता है? शोरगुल पैदा हो सकता है। आवाज सुनाई पड़ती है। और आवाज में क्या है? विद्युत-तरंगें हैं। हवा में उठी हुई विद्युत की लहरें हैं, और कुछ भी नहीं। सौंदर्य इत्यादि सब कल्पना है तुम्हारी।
अगर हम विचार से ही जीना शुरू करें तो सौंदर्य खो जाएगा, प्रेम खो जाएगा, काव्य खो जाएगा। जीवन में जो भी मूल्यवान है, सब खो जाएगा--खो गया है।
आधुनिक सदी मनुष्य-जाति के इतिहास में बड़ी अनूठी सदी है। बाहर की दृष्टि से हम सबसे ज्यादा समृद्ध लोग हैं और भीतर की दृष्टि से सबसे ज्यादा दरिद्र। क्योंकि काव्य हमारे भीतर उठता ही नहीं, उमगता ही नहीं; प्रेम हमारे भीतर जगता ही नहीं। सौंदर्य की भाषा से ही हम अपरिचित हो गए हैं। आश्चर्य हम जानते ही नहीं क्या है? अवाक होने की कला हम भूल गए हैं। भाव के कुंड! कबीर कहते हैं कि अगर परमात्मा को चुनरी दोगे तो वह भाव
के कुंड में डुबाएगा, विचार के कुंड में नहीं। विचार के कुंड में तो स्याही ही स्याही है। वहां तो स्याही की ही लिखावट है। शास्त्रों में भी स्याही ही स्याही है, क्योंकि वे भी विचारों की उत्पत्तियां हैं।
कबीर कहते हैंः मसि कागद छुओ नहिं। वे तो कहते हैंः मैंने तो कभी स्याही और कागज छुआ ही नहीं, दूर ही रहा, इस झंझट में पड़ा ही नहीं। कबीर कहते हैंः लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात। यह लिखा-लिखी की नहीं है कि लिख दी किसी ने और पढ़ ली किसी ने। यह देखादेखी! यह तो देखना पड़ेगा, यह तो आंख खोलनी पड़ेगी। ऐसे तो अंधा भी प्रकाश के संबंध में जानकारी इकट्ठी कर सकता है। और बहरा भी संगीत के संबंध में जानकारी इकट्ठी कर सकता है। संगीत को भी लिखने की लिपि होती है न, बहरा भी पढ़ सकता है। और अंधों की भी ब्रेल-

145

लिपि होती है, वह भी पढ़ सकते हैं। लेकिन अंधा प्रकाश को कभी न जान सकेगा, कितना ही पढ़े, सारा विज्ञान पढ़ ले प्रकाश का, तो भी प्रकाश न जान सकेगा। एक छोटी सी मोमबत्ती भी न जलेगी। और बहरा कितना ही अध्ययन करता रहे, सारे राग पढ़ डाले और सारे शास्त्र संगीत के छान डाले, तो भी कोयल की कुहू-कुहू भी उसके प्राणों में उठेगी नहीं, उसे संगीत का कोई अनुभव नहीं होगा। यह बात लिखालिखी की नहीं है--देखादेखी बात।
और देखने का जगत भाव है, देखने का द्वार भाव है। सोचने का--मस्तिष्क; देखने का--भाव।
परमात्मा को देखना हो तो हृदय से देखा जा सकता है। इसलिए सारे धर्म श्रद्धा पर इतना जोर देते हैं। संदेह है मस्तिष्क की प्रक्रिया और श्रद्धा है हृदय का कमल; वह हृदय की झील में खिलता है।
भाव के कुंड नेह के जल में...
भाव का तो कुंड है, उसमें प्रेम का जल भरा है। मस्तिष्क बिल्कुल प्रेम
से रिक्त है। मस्तिष्क को प्रेम की कोई खबर ही नहीं है। मस्तिष्क मान ही नहीं सकता कि प्रेम जैसी कोई चीज होती है; सब कल्पना है। मस्तिष्क धन को मान सकता है, पद को मान सकता है, प्रेम को नहीं मान सकता। मस्तिष्क गणित को मान सकता है काव्य को नहीं मान सकता, क्योंकि काव्य तो प्रेम की ही स्फुरणा है।
भाव के कुंड नेह के जल में...
लेकिन सौभाग्य है कि लाख इनकार करे कोई, हमारे भाव का कुंड नष्ट नहीं होता--चाहे हम पीठ कर लें उसकी तरफ, चाहे हम उसे देखना बंद कर दें, चाहे हम उसकी उपेक्षा करने लगें।
अंग्रेजी में शब्द है अज्ञान के लिए--इग्नोरेंस, वह बड़ा प्यारा शब्द है। इग्नोरेंस बनता है इग्नोर से। इग्नोर का अर्थ हैः उपेक्षा करना, ध्यान न देना।
हम चाहें तो अपने भीतर के जो राज हैं, उनको इग्नोर कर सकते हैं। उनकी उपेक्षा कर सकते हैं। बस वही इग्नोरेंस है, वही अज्ञान है। और जिस दिन चाहें उस दिन लौट कर देख सकते हैं, उपेक्षा करनी बंद कर दें, ध्यान देने लगें। जिस दिन चाहें उस दिन स्मरण कर लें, पुनः स्मरण कर लें, फिर से एक बार टटोल कर देख लें। और तत्क्षण, जो दबा पड़ा था, प्रकट होना शुरू हो जाएगा। जो झरोखा बंद था, खोला जा सकता है।
विज्ञान, तर्क लाख उपाय करे तो भी मनुष्य के भाव के जगत को नष्ट नहीं
कर सकता। भुलावा दे सकता है। प्रेम तो तुम्हारे भीतर है ही, बना ही रहेगा। अदृश्य हो जाएगा, अंतर्गर्भ में उसकी धारा बहने लगेगी। जरा खोदोगे तो मिल जाएगा।

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर।

और तुम कितना ही भुलाओ, प्रेम भीतर से पुकारता ही रहेगा। जब भी कभी अवसर पा जाएगा, तुम्हें थोड़े विश्राम में पाएगा, थोड़े विराम में पाएगा, फिर पुकार देगा कि आओ, थोड़ा भीतर देखो, थोड़ी मेरी तरफ भी तवज्जो दो, मैं भी हूं! इसलिए बड़े से बड़ा गणितज्ञ भी गणित की दुनिया में तो प्रेम को स्वीकार नहीं करता, लेकिन प्रेम में पड़ जाता है। बड़े से बड़ा दार्शनिक भी प्रेम में पड़ जाता है। दर्शनशास्त्र में तो इनकार कर देगा, लेकिन जीवन के शास्त्र में तो कहीं न कहीं से प्रेम उमग आता है, अंकुरित हो जाता है। उसके बीज तुम्हारे स्वभाव में हैं।

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर।

वह उठी आंधी कि नभ में
छा गया सहसा अंधेरा,

धूलि धूसर बादलों ने
भूमि को इस भांति घेरा,
रात-सा दिन हो गया फिर,
रात आई और काली,
लग रहा था, अब न होगा
इस निशा का फिर सवेरा;
रात के उत्पात-भय से
भीत जन-जन, भीत कण-कण,
किंतु प्राची से उषा की
मोहिनी मुस्कान फिर-फिर!
नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

रात कितनी ही अंधेरी हो और चाहे ऐसा ही क्यों न लगने लगे कि अब सुबह कभी होने की नहीं, अब सहर होगी ही नहीं; लेकिन फिर-फिर सुबह हो जाती है, फिर-फिर सूरज की किरण फूटती है।
प्रेम मनुष्य का स्वभाव है, इसलिए उसे सदा के लिए वंचित नहीं किया जा सकता। दबाओ लाख, इधर दबाओगे, उधर उभर रहा है।

वह चले झोंके कि कांपे
भीम कायावान भूधर,
जड़ समेत उखड़-पुखड़ कर
गिर पड़े टूटे विटप वर,
हाय, तिनकों से विनिर्मित
घोसलों पर क्या न बीती,
डगमगाए जब कि कंकड़,
ईंट, पत्थर के महल-घर;
बोल आशा के विहंगम,
किस जगह पर तू छिपा था,
जो गगन पर चढ़ उठाता
गर्व से निज तान फिर-फिर,
नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर।

आएं तूफान, आएं आंधियां, लेकिन फिर तुम अचानक पाओगे एक दीया तुम्हारे भीतर अभी भी जल रहा है, जो बुझता ही नहीं, जिसे बुझाया नहीं जा सकता। मनुष्य का सबसे बड़ा भाग्य यही है कि उसके प्रेम के दीये को बुझाया नहीं जा सकता। न विज्ञान बुझा सकता, न तर्कशास्त्र बुझा सकता, न राजनीति बुझा सकती, न धन-पद, माया-मोह कुछ भी नहीं बुझा सकता। आएं अंधड़, आएं आंधियां, घिरें अमावस की रातें, मगर फिर-फिर सुबह होगी। स्वभाव के विपरीत तुम कितने ही जाओ, स्वभाव तुम्हें फिर-फिर पुकार देगा।

क्रुद्ध नभ के वज्र दंतों
में उषा है मुस्कराती
घोर गर्जनमय गगन के
कंठ में खग-पंक्ति गाती
एक चिड़िया चोंच में तिनका
लिए जो जा रही है।
वह सहज में ही पवन
उन्चास को नीचा दिखाती।
नाश के दुख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख, प्रलय की निस्तब्धता में

सृष्टि का नवगान फिर-फिर।
नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर।

प्रलय भी आए तो भी एक चीज बच रहेगी तुम्हारे भीतर, वह तुम्हारा स्वभाव है। और प्रेम तुम्हारा स्वभाव है। प्रेम तुमसे भिन्न नहीं, प्रेम तुम्हारी आत्मा है।
भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग देइ बोर।
और परमात्मा इन्हीं से तुम्हारी चुनरिया रंग देता है।
भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग देइ बोर।
नेह और प्रेम में कुछ भेद किया है कबीर ने। भेद थोड़ा है। नेह--हम जिसे थोड़ा सा जानते हैं, जिससे हमारा थोड़ा सा परिचय है। जैसे प्रेम का मिट्टी से मिला-जुला रूप। जैसे सोना खालिस नहीं, ऐसा हमारा नेह है--मानवीय, हमारे आंसुओं से भीगा, हमारी कमजोरियों से भरा, और प्रेम नेह की शुद्धतम अवस्था है; जैसे सोना आग से गुजर गया, और कंचन हो गया।
भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग देइ बोर।
तो भाव के कुंड में और नेह के जल में और प्रेम के रंग में रंग देता है चुनरिया को।
दुख देह मैल लुटाया दे रे खूब रंगी झकझोर।।
साहिब ने चुनरी रंगी रे पीतम चतुर सुजान।
सब कुछ उन पर बार दूं रे तन मन धन और प्रान।।
कहै कबीर रंगरेज पियारे मुझ पर हुए दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़ि के रे भई हौं मगन निहाल।।
कबीर कहते हैंः अब इस चुनरी को ओढ़ कर दुल्हन बनी हूं। कबीर कहते हैंः मैं राम की दुल्हनिया! अब इस चुनरी को ओढ़ कर मैं निहाल हो गई, मगन हो गई।
क्योंकि यह चुनरी अब छीनी नहीं जा सकती। इसका रंग उतरेगा नहीं; जैसे-जैसे ओढ़ोगे, जैसे-जैसे धोओगे, वैसे-वैसे निखरेगा, और प्रगाढ़ होगा।
एक तो क्षणभंगुरता का रंग है, जिसमें हम जीते हैं। लाख पकड़ो तो भी छूट जाता है। लाख सम्हालो तो भी मिट जाता है। कागज की नाव में बैठे हैं हम--अब डूबी, तब डूबी! पानी के बबूले हैं हम--अब फूटे, तब फूटे! और एक है शाश्वत का रंग, सनातन का, जो सदा है।
परिवर्तनशील से अपने संबंध को जोड़ लेना संसार है और जो सदा अपरिवर्तित है उससे अपने संबंध को जोड़ लेना संन्यास है। संन्यास का अर्थ हैः दे दी चुनरी उसके हाथ में। संन्यास का अर्थ है, समर्पण।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।
कबीर कहते हैंः पहले बहुत गाता था। और जब से गुरु को भीतर देखा है, अपने भीतर... । "गुरु" शब्द बहुत प्यारा है। दुनिया की किसी भाषा में वैसा शब्द नहीं। गुरु का अर्थ होता है, जो अंधकार को दूर कर दे।... जब से भीतर उसे देखा है, अंधकार को दूर करने वाले को... "अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।" अब कहे नहीं कहा जाता, गाए नहीं गाया जाता, क्योंकि वह शब्दों के पार है। गीत में भी बंधता नहीं। गद्य की तो बात छोड़ो, पद्य की भी पकड़ में नहीं आता। छूट-छूट जाता है। इतना विराट है!

हे चिर महान!
यह स्वर्णरश्मि छू श्वेत भाल
बरसा जाती रंगीन हास,
सेली बनता है इंद्रधनुष,
परिमल मल मल जाता बतास!
पर रागहीन तू हिमनिधान!
हे चिर महान!

नभ में गर्वित झुकता न शीश, पर अंक लिए है दीन क्षार,

मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार! कितने मृदु कितने कठिन प्राण! हे चिर महान!

टूटी है कब तेरी समाधि,
झंझा लौटे शत हार हार,
बह चला दृगों से किंतु नीर, सुन कर जलते कन की पुकार! सुख से विरक्त दुख में समान! हे चिर महान!

मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप!
उर में पावस दृग में विहान!
हे चिर महान!

जैसे ही उसकी भीतर झलक मिलती है, एक क्रांति घट जाती है--उर में पावस दृग में विहान! एक आ जाता मधुमास, खिल जाते फूलों पर फूल, हो जाती सुबह! ऐसी सुबह, फिर जो आंखों से कभी मिटती नहीं! आंखों में भर जाती सुबह। भोर आंखों का हिस्सा हो जाती है। जिसने अपने भीतर देख लिया उसकी आंखों में प्रभात होता है। वह जहां देखे, जिसको देखे, जिसकी आंख में झांके, वहां भी अंधेरा टूटने लगे।
लेकिन कैसे इसे बांधें शब्दों में, रागों में? इसे बांधा नहीं जा सकता। इसलिए कबीर कहते हैंः
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।
कबिरा जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।।
पहले हम कितना गाते थे, कितना गुनगुनाते थे, कितनी प्रार्थनाएं, कितनी स्तुतियां, कितने भजन, कितने कीर्तन!
कबीरा जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।
तब हमने जाना नहीं था; नहीं जाना था सो गा लेते थे। अब जाना है, सकुचाते हैं।
जो नहीं जानते, परमात्मा के संबंध में बोलना उनके लिए बहुत आसान है।
जो जानते हैं, उनके लिए बहुत कठिन, असंभव। ज्यादा से ज्यादा इशारे कर सकते हैं, बोला नहीं जा सकता।
सुन्न मंडल में घर किया, बाजै शब्द रसाल।
कबीर कहते हैंः भीतर प्रवेश क्या हुआ, विराट शून्य में प्रवेश हो गया।
सुन्न मंडल में घर किया, बाजै शब्द रसाल।
और वहां अनहद नाद बज रहा है, अब हम क्या गाएं, अब हम कैसे गाएं? उस अनहद
को तो हद में बांधा नहीं जा सकता। वह शब्दातीत है। वह निराकार है।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल।
छोटे-छोटे शब्द, सीधे-साधे शब्द--बिना किसी उलझाव के। मगर सचोट, कि कोई अगर राजी हो तो जगा जाएं; कि कोई अगर राजी हो तो अमावस टूटे और अभी सुबह हो। रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल।
भीतर देखा रोआं-रोआं दीया हो गया और परमात्मा प्रकट हुआ। परमात्मा ही गुरु है, इसलिए हम गुरु को परमात्मा कहते हैंः वह प्रतीक मात्र, चूंकि हमने जाना, हजारों बार जाना। हजारों कबीर हो गए। नाम ही अलग हैं, नानक कहो कि दादू कहो कि फरीद कहो, सब कबीर ही हैं। इन सबने एक ही बात जानी कि परमात्मा ही गुरु है। अगर परमात्मा ही गुरु है तो इसका बाहर हमने प्रतीक बनाया है कि हमने बाहर के गुरु को भी परमात्मा कहा। यह सांकेतिक है। इसमें

इशारा छिपा है। इसमें इशारा है कि पहले गुरु को परमात्मा समझ कर चलो तो एक दिन तुम परमात्मा को गुरु की तरह पाओगे।
सुन्न सरोवर मीन मन, ...
शून्य का सरोवर है। और कबीर कहते हैंः हम तो मछली हो गए।
... नीर तीर सब देव।
और अब जल भी उसका, थल भी उसका। नीर भी उसका, तीर भी उसका।
सुधा सिंधु सुख विलसही, विरला जाने भेव।
और अब हम अमृत के इस सागर में हम आनंद-विभोर हो रहे हैं। सुख विलसही... खूब मजा ले रहे हैं, मस्त हो रहे हैं।... विरला जाने भेव। कोई विरले व्यक्तियों ने ही इस भेद को जाना है।
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
इस भेद को जानते ही एक रहस्य पता चला कि वही है, सब तरफ वही है।
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
"उसका" ही रंग छाया है।
लाल रंग बहुत सी बातों का प्रतीक है। एक तो सुबह का प्रतीकः प्राची लाल हो जाती है। भोर का प्रतीक। दूसरा मनुष्य के जीवन का प्रतीक, क्योंकि रक्त लाल है, रक्त मनुष्य की जीवन-धार है। उसके बिना मनुष्य नहीं, उसके बिना जीवन नहीं। तो जीवन का प्रतीक। और लाल वसंत का प्रतीक, क्योंकि फूल ही फूल भर जाते हैं, चारों तरफ फूल ही फूल हो जाते हैं। सब तरफ लाली फैल जाती है। और लाल प्रतीक है, यौवन का, युवावस्था का, ताजगी का, नवीनता का। ये चारों बातें परमात्मा के संबंध में सच हैं। वह सदा नवीन है, कभी पुराना नहीं होता। वह सदा युवा है, कभी बूढ़ा नहीं होता। वह जीवन है, वह भोर है। सदा सुबह है, उस लोक में कभी अंधकार नहीं, उजियारा ही उजियारा है। और वह मधुमास है, वसंत है। वहां फूल ही फूल खिल रहे हैं, और सुगंध ही सुगंध उड़ रही है। इसलिए हमने पूरब में संन्यास के रंग को भी लाल चुना। वह इन चारों प्रतीकों को अपने भीतर लिए है।
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
उस मेरे प्यारे का रंग लाल है। जहां देखता हूं उसका रंग ही मुझे दिखाई
पड़ रहा है। और भी चकित करने वाली बात यह है कि--
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।
और यह तो बाद में पता चला कि लाल को देखते-देखते कब मैं भी उसके रंग में रंग गई! कब मैं भी डुबकी खा गई! यह तो बहुत बाद में पता चला कि उसको देखते-देखते मैं भी वही हो गई, उसके जैसे ही हो गई।
तुम जो देखते हो, धीरे-धीरे वही हो जाते हो। जो व्यक्ति सौंदर्य को देखता है, सुंदर हो जाता है। जो व्यक्ति संगीत में डूबता है, संगीतमय हो जाता है। जो व्यक्ति ध्यान में डूबता है, वह ध्यान-रूप हो जाता है। जो व्यक्ति प्रेम में डूबता है, वह प्रेम हो जाता है। जो व्यक्ति परमात्मा में डूबता है, वह परमात्मा हो जाता है।
जिन पावन भुइं बहु फिरे, घूमें देस-बिदेस।
पवित्र तीर्थों की यात्रा की, देश-विदेश घूमा--इस तलाश में कि कहीं कोई भूमि मिले, जहां से उससे संबंध जुड़ जाए।
जिन पावन भुइं बहु फिरे, घूमें देस-बिदेस।
पिया मिलन जब होइया आंगन भया बिदेस।।
और जब उससे मिलना हुआ तो अपने घर का आंगन भी विदेश हो गया। और तो वह कहां मिलता! सब विदेश हो गया। यह देश ही विदेश हो गया! यह जीवन, यह देह, यह मन, यह तन, यह पृथ्वी, यह लोक, सब विदेश हो गया। "आंगन" में सारी बात कह दी कबीर ने। --पिया मिलन जब होइया आंगन भया विदेस।।
सखि, वह घर सबसे न्यारा, जहां पूरन पुरुष हमारा।।
जहां न सुख-दुख सांच-झूठ नहिं पाप न पुन्न पसारा।
वहां कोई द्वंद्व नहीं है, कोई द्वैत नहीं है। वहां न सुख है न दुख है।
समझना इस सूत्र को। साधारणतः तुम्हारी धारणा यह होती है कि वहां दुख नहीं है, सुख ही सुख है। वह धारणा गलत है। जहां दुख नहीं है वहां सुख भी नहीं हो सकता। घबड़ा मत जाना कि अगर वहां सुख नहीं है तो फिर खोजें ही

क्यों? सुख के भी ऊपर कुछ है। सुख तो दुख का ही दूसरा पहलू है। सुख और दुख तो एक ही सिक्के के दो अंग हैं। हर सुख में दुख छिपा है और हर दुख में सुख छिपा है। इसलिए दुख आए तो बहुत घबड़ाना मत; सुख आता होगा। और सुख आए तो बहुत अकड़ मत जाना; ये दुख के आने के संदेश आने लगे कि यह दुख आता ही होगा। इसके ही पीछे छिपा चला आ रहा है।
जो जानता है, दुख में दुखी नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि यह केवल सुख का ही एक रूप है। और सुख में सुखी नहीं होता, क्योंकि वह जानता है यह दुख का ही एक रूप है। धीरे-धीरे सुख और दुख उसके लिए समान हो जाते हैं। इससे समता पैदा होती है, समभाव पैदा होता है, सम्यकत्व पैदा होता है। और सम्यकत्व संन्यास की आधारशिला है।
जहां न सुख-दुख...
वहां सुख-दुख दोनों ही नहीं हैं। उस अवस्था को ही हमने आनंद कहा है। लेकिन कुछ भी कहो, हम ऐसे नासमझ हैं, हमारी नासमझी उसमें से कुछ ऐसी व्याख्या निकाल लेगी जो सत्य के अनुकूल नहीं होगी, हमारे असत्य के अनुकूल होगी। आनंद कहा हमने तो आनंद का मतलब हम समझने लगेः महासुख। मगर हमने सुख जोड़ ही लिया। हमारे शब्दकोषों में लिखा होता हैः आनंद यानी महासुख। महासुख में तो महादुख भी होगा। इसलिए बुद्ध ने आनंद शब्द का उपयोग नहीं किया; आनंद शब्द को ही छोड़ दिया, क्योंकि देखा कि लोग उससे भ्रांति में पड़ रहे हैं। उनकी आकांक्षा ही गलत हुई जा रही है। वे सुख की ही तलाश कर रहे हैं, परमात्मा का नाम दे रहे हैं सिर्फ; महासुख की तलाश कर रहे हैं और नाम परमात्मा का लगाया हुआ है। लेबल भर परमात्मा है, भीतर सब संसार की ही आकांक्षा भरी पड़ी है।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर में मेहमान आए हुए थे। भोजन चल रहा था। पत्नी नमक लाना भूल गई थी। तो मुल्ला ने कहाः मैं ले आता हूं। भागा, किचन में गया। बड़ी देर लग गई, बड़ी खटर-पटर, डब्बों की आवाज, इसका खोलना, उसका बंद करना। मेहमान भी थक गए। पत्नी ने कहाः क्या कर रहे हो? क्या जिंदगी भर वहीं रहे आओगे? तुम से कभी कुछ होगा कि नहीं होगा, नमक ही नहीं मिलता! मुल्ला ने कहा कि मैंने कितने डब्बे खोल डाले, नमक का कुछ पता नहीं। पत्नी ने कहाः अंधे हो! अरे तुम्हारे सामने ही जिस डब्बे पर "मिर्ची" लिखा है उसी में "नमक" है।
पत्नियों के भी राज रहते हैं! अक्सर तुम्हें किचन में यह हालत मिलेगी। डब्बे पर कुछ लिखा है, डब्बे के भीतर कुछ। पति को धोखा देने का इससे और क्या उचित उपाय हो सकता है! पति को भी धोखा, बच्चों को भी धोखा। कोई एक महिला के किचन में दूसरी महिला काम कर ही नहीं सकती। सारा मामला रहस्यपूर्ण होता है। इतना तो पक्का है कि जिस डब्बे पर मिर्च लिखी है उसमें मिर्च नहीं होगी।
हमारी जिंदगी भी ऐसी ही है। हम डिब्बों पर कुछ लिख लेते हैं--परमात्मा
की खोज। मेरे पास लोग आ जाते हैं कि परमात्मा को खोजना है। मैं कहता हूंः सच में? तुम्हारे परमात्मा ने तुम्हारा बिगाड़ा क्या है?
वे कहते हैंः नहीं, बिगाड़ा तो कुछ भी नहीं।
तो फिर तुम काहे के लिए खोज कर रहे हो? खोज ही करनी होगी तो वह तुम्हारी करेगा। वारंट ही निकालना होगा तो वह निकालेगा, तुम क्यों परेशान हो रहे हो? तुम इतने उपद्रव कर रहे हो कि उसके आते ही होंगे पहरेदार, यमदूत इत्यादि--भैंसों पर सवार होकर, तुम घबड़ाओ मत। तुम्हें खोजने की कोई जरूरत नहीं। तुम सच्ची बात कहो, क्या चाहते हो?
तब उनकी सच्ची बात निकलती है कि जीवन में बड़ा दुख है। तो पहले ही क्यों नहीं कहते कि जीवन में बड़ा दुख है। सुख चाहते हो? कि हां सुख चाहते हैं। आनंद चाहिए। और हमने सुना है कि परमात्मा यानी सच्चिदानंद। परमात्मा से किसको लेना-देना है! आनंद चाहिए! और आनंद का तुम्हारा मतलब, तुम्हारा है; ज्ञानियों का नहीं। ज्ञानियों का अर्थ होता है आनंद से--जहां न सुख है न दुख है। बुद्ध ने आनंद शब्द छोड़ दिया। आनंद की जगह उपयोग किया शांति--जहां न दुख, न सुख, सारी अशांति गई, सब शांत हो गया, कोई सुख-दुख की तरंगें न रहीं।

इसलिए बुद्ध का बहुत प्रभाव नहीं पड़ा इस देश में। बुद्ध जब जिंदा रहे
तो प्रभाव पड़ा, पड़ना था; क्योंकि बुद्ध जैसा व्यक्ति मौजूद हो, प्रभाव न पड़े, यह कैसे हो सकता है! लेकिन बुद्ध के जाते ही बुद्ध-धर्म इस देश से समाप्त हो गया। उस समाप्त होने में बहुत कारणों में से एक कारण यह था कि बुद्ध ने तुम्हारी आकांक्षाओं को कोई सहारा नहीं दिया। तुम कहते हो हमें आनंद चाहिए; बुद्ध कहते हैं, फालतू की बातें। वहां कैसा आनंद, वहां तो बिल्कुल शून्य है।
"शून्य!" तो तुम उनसे कहते हो कि फिर हम जरा सोच-विचार कर आएंगे कि शून्य में जाना है कि नहीं, जाकर भी वहां क्या करेंगे? इससे यहीं भले, कुछ खटर-पटर तो है, कुछ तो है! ... शून्य!
शून्य शब्द में आकर्षण नहीं मालूम होता, कोई बुलावा नहीं मालूम होता, ऐसा नहीं लगता कि बस एकदम गले लग जाएं। शून्य शब्द सुन कर ऐसा होता है कि भाग खड़े होओ, कि जितने दूर निकल सको निकल जाओ, कि कहीं ऐसा न हो कि इस शून्य की झपट में आ जाओ।
बुद्ध कहते हैंः वहां शांति है।
शांति! आदमी को दुख भला, सुख न हो तो, मगर शांत होने को कोई राजी नहीं, क्योंकि शांति में क्या रस? मरघट का सन्नाटा! एकदम शांति ही शांति है।
आदमी तो कहता हैः इससे तो दुख ही बेहतर, कम से कम कुछ तो उलझाव बना रहता है।
कुछ समाचार, कुछ घटनाएं घटती रहती हैं। आदमी दुखी होना पसंद करेगा बजाय शांत होने के, क्योंकि दुख में व्यस्तता तो रहती है।
जरा तुम सोचो, एक बार बैठ कर सोचना कि अगर सच में ही यह हो जाए कि तुम एकदम शांत हो गए, तो तुम्हें खुद ही डर लगने लगेगा। शांत! एकदम शांत! भीतर कोई हलचल नहीं, कुछ नहीं, फिर करेंगे क्या? इससे तो ऐसे ही बेहतर। करने- धरने को भी है। सोच-विचार को भी है। जीवन में कुछ रंग-रौनक भी है। अब सभी बैठ गए शांत होकर। शांत होने में भी आकर्षण नहीं मालूम होता।
और बुद्ध ने और भी जड़ काट दी--आखिरी। लोग कहते कि आत्मा को पाना है। बुद्ध कहतेः आत्मा वगैरह कुछ है ही नहीं। जब तुम भीतर जाओगे तो पाओगे आत्मा वगैरह कुछ नहीं है। है ही नहीं कुछ; बस सन्नाटा है, शून्य, शांति! लोग पूछतेः तो कोई तो शांत होगा। बुद्ध कहतेः कोई नहीं। सिर्फ शांति है; वहां कोई शांत है, ऐसा भी नहीं।
तो लोग बुद्ध से बार-बार पूछेंः तो फिर इतनी काहे के लिए मेहनत करें
कि बैठे वृक्षों के नीचे, तप कर रहे! काहे के लिए? आंख बंद कर रहे, ध्यान कर रहे--किसलिए, इसका प्रयोजन क्या है?
बुद्ध के प्रभाव में तो बैठ गए लोग, मगर बुद्ध के हटते ही भाग गए।... अपने अपने घर जाओ, इसमें क्या सार है! हिंदुस्तान से बुद्ध धर्म की जड़ें उखड़ गईं। जड़ें उखड़ने का कारणः बुद्ध ने तुम्हारी क्षमता के बाहर के शब्दों का उपयोग किया। सीधा-सीधा उपयोग किया। लेकिन हिंदुस्तान के बाहर बुद्ध धर्म की जड़ें जम गईं, क्योंकि हिंदुस्तान में बुद्ध--धर्म उखड़ा तो बौद्ध भिक्षुओं ने राज समझ लिया कि उखड़ने का कारण क्या है। वे-वे कारण उन्होंने सुधार लिए। तो जब चीन में जाकर उन्होंने कहा तो उन्होंने कहाः वहां महासुख मिलेगा। इसलिए चीनी शास्त्रों में शून्य की चर्चा नहीं है; महासुख। शांति की चर्चा नहीं है; परम आनंद। यह बात जंची। यहां उन्होंने जो भूल की थी, वह भूल फिर चीन में नहीं की, तिब्बत में नहीं की, लंका में नहीं की, बर्मा में नहीं की, जापान में नहीं की। हिंदुस्तान को छोड़ कर सारे एशिया में बौद्ध धर्म फैल गया; मगर विकृत होकर फैला। बुद्ध की मूल बात टूट गई। बुद्ध का मूल संदेश शुद्ध न रहा। शुद्ध हम पचा न सके।
मैंने सुना है कि एक सम्राट, जो रोज रात देर तक नाच-गाने में मस्त रहता, शराब पीता और फिर बारह बजे, दो बजे दिन में सो कर उठता। एक रात, जब विदा हो रही थीं नर्तकियां और नींद उसे आ नहीं रही थी, बजे होंगे कोई पांच, ब्रह्ममुहूर्त, नींद नहीं आ रही थी तो उठ कर अपने बगीचे में आ गया। कुछ अजीब सी बात मालूम हुई। उसने पूछा अपने दरबारी से, जो उसके साथ थाः यह किस चीज की बास आ रही है? उसने कहाः मालिक, यह बास नहीं है, यह सुबह की ताजी हवा है। यह सुबह की ताजी हवा की सुगंध है, यह बास नहीं है।

उसने जीवन भर से ताजी हवा का अनुभव ही नहीं किया था। तो रात देर तक नशा चलता, नाच-गाना चलता, सिगरेट, हुक्का इत्यादि चलता होगा, धुआं-धाम। फिर सो जाता होगा। फिर दो बजे उठता होगा। सूरज के तो उसने दर्शन ही नहीं किए थे, ब्रह्ममुहूर्त का तो उसे कुछ पता ही नहीं था। तो सुबह की ताजी हवा उसको ऐसी लगी जैसे कि कोई गड़बड़ बात हो रही है, कुछ मामला ठीक नहीं मालूम होता। हमारी आदतें बन जाती हैं। हम अपनी आदतों से जीते हैं।
मैंने सुना है कि एक आदमी एक चौराहे पर गिर पड़ा बेहोश होकर। उस चौराहे
के चारों तरफ गंधियों की दुकानें थीं। आयुर्वेद में इस तरह की सूचनाएं हैं कि कुछ खास सुगंधें होती हैं बड़ी तीव्र, जो बेहोश आदमी को सुंघा दी जाएं तो वह होश में आ जाए, उसके भीतर तक चोट करती हैं। गंधियों की दुकानें थीं। एक गंधी को दया आ गई, वह अपनी तिजोड़ी में से सबसे बहुमूल्य गंध निकाल कर लाया, उसने इस आदमी को सुंघाई। बजाय होश में आने के वह हाथ-पैर तड़फड़ाने लगा, पैर पटकने लगा। भीड़ लग गई थी। एक आदमी भीड़ में खड़ा था, उसने कहा कि तुम मार डालोगे उसको, यह क्या सुंघा रहे हो? बंद करो! मैं इसको भलीभांति जानता हूं वह कौन है। वह मछली बेचने वाला है। मैं भी मछली बेचने वाला था। हटो! इसकी टोकरी कहां है?
वहीं टोकरी पास में पड़ी थी, जिसमें मछलियां बेच कर वह लौटा था। उसने टोकरी उठाई, उसमें गंदा कपड़ा था जिसमें मछलियां बांध कर लाया था। उस पर थोड़ा पानी छिड़का और टोकरी पूरी की पूरी उस आदमी के सिर पर उलट दी। उसने एक गहरी श्वास ली, एकदम होश में आ गया। टोकरी उठाई, उसने कहाः भाई, किसने मुझे बचाया? कोई दुष्ट मेरी जान लिए लेता था। ऐसी दुर्गंध, ऐसी दुर्गंध कि मैंने अपने जीवन में नहीं देखी। मछलियों की सुगंध मिलते ही मेरे प्राण में प्राण आ गए।
जिंदगी भर जो मछलियों में रहा है, उसे मछलियों में सुगंध मालूम होने लगती है। तुम्हें दुर्गंध मालूम होगी मछली में। लेकिन जो मछलियों में ही रहा है, उसे मछलियों में गंध, सुगंध बन जाती है।
बुद्ध बिल्कुल शुद्ध भाषा बोले हैं; वही उनका कसूर था। तुम चाहते हो ऐसी भाषा, जिसमें तुम्हारी अशुद्धियां मिली हों। आनंद जंचता है, मोक्ष जंचता है। मुक्ति हो जाएगी। तुम मुक्ति का क्या अर्थ लेते हो? अगर तुम अपने भीतर खोज-बीन करोगे, तुम्हारा मतलब यही होता है कि वहां सब करने की स्वतंत्रता होगी। और क्या मतलब होगा, कि जो दिल में आएगा करेंगे। मोक्ष का मतलब तुम्हारे मन में यही होगा--गहरे में अगर खोजोगे अचेतन में अगर खोजोगे, --कि फिर जो दिल में आएगा करेंगे। मुक्ति का मतलब यह है कि फिर कोई बंधन नहीं।
लेकिन बुद्ध ने कहाः मोक्ष! कोई मोक्ष नहीं है, क्योंकि तुम मिट ही जाओगे उसके पहले। कैसा मोक्ष? किसका मोक्ष निर्वाण हो जाएगा। निर्वाण का अर्थ होता हैः दीये का बुझ जाना। जैसे दीया बुझ जाता है, ऐसे ही तुम बुझ जाओगे। कहां का मोक्ष! सब खत्म।
लोग बार-बार... अनेक घटनाएं हैं बुद्ध के जीवन में... बार-बार यही पूछते
कि जब सभी मिट जाएगा, सभी खत्म हो जाएगा तो आप क्या उपदेश देते हैं? किसलिए इतना उपदेश देते हैं। ये इतने भिक्षु क्या कर रहे हैं। ये सब मिटने की तैयारी कर रहे हैं। सार क्या?
हमें सार भी हमारे ही हिसाब का होता है। मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैंः अगर हम ध्यान करेंगे तो उससे समृद्धि बढ़ेगी? समृद्धि--ध्यान से! मैंने कहाः भैया, कुछ होगी तो वह भी चली जाएगी। तुम ध्यान करते रहे, कोई जेब ही काट लेगा। तुम ध्यान करते रहे, कि कोई तिजोड़ी खोल कर ले जाएगा। समृद्धि बढ़ेगी!
लेकिन महर्षि महेश योगी अमरीका में लोगों को समझाते हैं कि अगर भावातीत ध्यान--उनका ध्यान, जिसको वे ध्यान कहते हैं--करोगे--जो कि ध्यान बिल्कुल नहीं है, न कुछ भावातीत है उसमें, न कुछ ध्यान है--तो समृद्धि बढ़ेगी, पदोन्नति होगी, स्वास्थ्य मिलेगा, युवावस्था देर तक ठहरेगी। अमरीका में जो-जो चीजें लोगों को चाहिए, जिन-जिन के लिए लोग दीवाने हैं, उस

सबका आश्वासन देते हैं। चलती है बात फिर। फिर बाजार में उस बात की कीमत बन जाती है--लोग जो चाहते हैं।
ये सूत्र कबीर के तुम ठीक से समझ लेना। ये ठीक बुद्ध के ही वचन हैं। भाषा अलग है। कबीर कहते हैंः जहां न सुख-दुख... वहां सुख नहीं, दुख नहीं।... सांच झूठ नहिं... वहां न सत्य है, न असत्य है। तुमने अभी तक यही सुना है कि वहां सत्य है। चौदहवां खंड, सच्च खंड! वह भी नहीं वहां। वहां झूठ ही नहीं तो सत्य कैसा! ... पाप न पुन्न पसारा। पाप तो है ही नहीं, पुण्य भी नहीं है वहां। इस भ्रांति में मत रहना कि पाप यहां छूट जाएगा, पुण्य की पोटली बांध कर और ले जाओगे। कुछ न ले जा सकोगे--न पाप न पुण्य।
नहिं दिन-रैन...
न दिन है, न रात।
... चंद नहिं सूरज, बिना जोति उजियारा।
वहां कोई ज्योति भी नहीं है। लेकिन उजियारा है, अलौकिक प्रकाश है! मगर
वह प्रकाश तुम्हारा प्रकाश नहीं है, क्योंकि तुम्हारा प्रकाश तो ज्योति से बंधा होता है। वह सिर्फ प्रकाश है। कोई ज्योति नहीं। बिन बाती बिन तेल! न कोई बाती है, न कोई तेल है।
यह तुम्हारी सारी धारणाओं को तोड़ने की चेष्टा चल रही है कि तुम्हारे द्वैत की धारणा छूट जाए।
नहिं तहं ग्यान-ध्यान...
वहां न ज्ञान है, न ध्यान है।
... नहिं जप-तप बेद-कितेब न बानी।
न वेद है, न कुरान है, न बानी है, कुछ भी नहीं है।
करनी धरनी रहनी गहनी, ये सब उहां हेरानी।
ये सब खत्म। यह सब यहीं की बकवास है--करनी, धरनी, रहनी, गहनी।
धर नहिं अधर न बाहर-भीतर, ...
न तो वहां बाहर है कुछ, न भीतर--न धर, न अधर।
... पिंड ब्रह्मांड कछु नाहिं।
पांच तत्त गुन तीन नहीं तहं, साखी सब्द न ताहीं।
वहां कुछ भी नहीं है। साक्षी तक समाप्त हो गया, क्योंकि किसका साक्षी रहोगे। वहां कोई विषय नहीं बचता जिसके साक्षी बने रहो। जहां द्वैत गया, वहां दर्शन भी गया, द्रष्टा भी गया, दृश्य भी गया। ज्ञान भी गया, ज्ञेय भी गया, ज्ञाता भी गया। ध्यान भी गया, ध्याता भी गया, ध्येय भी गया। जहां द्वंद्व चला गया, जहां दो न रहे, वहां हमारी सारी भाषा व्यर्थ हो गई।
मूल न फूल बेल नहिं बीजा, बिना बृच्छ फल सोहै।
कबीर कहते हैंः समझो तो समझ लेना। फल तो है वहां, सिद्धि तो है वहां, परम सिद्धि है वहां, मगर--मूल न फूल बेल नहिं बीजा, ... वहां न बीज है, न मूल है, न फूल है, न बेल है। सिर्फ फल रह गया। सिर्फ आत्यंतिक उपलब्धि है। ओहं- सोहं... कबीर कहते हैंः ये तुम्हारे ओहं-सोहं भी नहीं। देख रहे हो कि अगर उनको कोकाकोला का पता होता तो जरूर कहा होता। ओहं-सोहं... कुछ भी नहीं है ये मंत्र-तंत्र।... अध ऊरध नहिं--न वहां कुछ ऊंचा है, न कुछ नीचा है।... स्वासा लेखन को है। और न वहां श्वास को देखने वाला है। विपस्सना भी वहां काम नहीं करेगी, कि बैठे अपनी श्वास देख रहे हैं। न वहां श्वास है, न कोई देखने वाला है।
नहिं निरगुन नहिं अविगत भाई, नहिं सूछम-अस्थूल।
न कुछ सूक्ष्म है, न कुछ स्थूल है। न निर्गुन है, न सगुण है।
नहिं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के मूल।
न अक्षर है, न अज्ञात है। ये सब जग के मूल! ये द्वंद्व ही जग के मूल हैं।
जहां पुरुष तहंवा कछु नाहिं...
जहां परमात्मा है वहां और कुछ नहीं बचता।
जहां पुरुष तहंवा कछु नाही कह कबीर हम जाना।
और कबीर कहते हैंः ध्यान रखना, हम जान कर कह रहे हैं। यह हम कोई पढ़ी- लिखी बात नहीं कर रहे। यह कोई शास्त्रों का उद्धरण नहीं दे रहे हैं।

जहां पुरुष तहंवा कछु नाहीं कह कबीर हम जाना।
यह अनुभव से कह रहे हैं। उस शून्य में उतर कर कह रहे हैं। उस शून्य में खोकर कह रहे हैं।
हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।
बड़ा प्यारा वचन है--हमरी सैन--बस इशारे हैं! सैन। साफ-साफ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि साफ-साफ कहने में बात बिगड़ जाती है। जितना स्पष्ट कहोगे, उतनी ही बात परमात्मा से दूर हो जाएगी। वह परम रहस्य है, उसे साफ-साफ कैसे कहोगे!
हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।
कबीर कहते हैंः हमने जो इशारा किया, इसको अगर देख लो तो निर्वाण का परम पद तुम्हारा है, पा लोगे।
निर्वाण शब्द का उपयोग किया कबीर ने भी--ठीक बुद्ध जैसा। बुझ जाओ, मिट जाओ, खो जाओ। क्योंकि जहां तुम मिटे वहीं परमात्मा है। जब तक तुम हो, परमात्मा नहीं।
कबीर कहते हैंः प्रेमगली अति सांकरी, तामें दो न समाय। वह गली बड़ी संकरी है, उसमें दो नहीं समा सकते।
जीसस का भी प्रसिद्ध वचन है, कि रास्ता सीधा है, मगर बहुत संकरा है; संकरा इतना कि दो नहीं समा सकते। इसलिए तुम इस आशा में मत जाना कि तुम भी पहुंच जाओगे वहां। तुम तो छूट जाओगे बहुत पीछे। परमात्मा का अनुभव किसी "और" का अनुभव नहीं है। अलग खड़े होकर तुम परमात्मा का दर्शन करोगे, ऐसा नहीं है; परमात्मा में एक हो जाओगे। जैसे गंगा सागर में एक हो गई। जैसे बूंद गिरी और सागर हो गई, ऐसे तुम भी उसके साथ एक हो जाओगे। तुम्हारा तो निर्वाण हो जाएगा, तुम तो गए, सदा को गए; फिर लौटने का भी कोई उपाय नहीं है। तुम तो महाशून्य हो जाओगे।
लेकिन उस महाशून्यता में ही आनंद है। उस महाशून्यता में ही परम सफलता है, परम सिद्धि है। उस महाशून्यता में ही मोक्ष है। उस महाशून्यता की ही तलाश, जिन्होंने जाना है उन्होंने करने के लिए तुम्हें पुकारा है।
हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।।
जहां पुरुष तहंवा कछु नाहीं कह कबीर हम जाना।
कबीर कहते हैंः हम जान कर कह रहे हैं। अगर तुम लखो, देख सको हमारी सैन को, हमारे इशारे को। ये इशारे हैं, जैसे कोई अंगुली बताए चांद की तरफ।
अंगुली चांद नहीं है, अंगुली को मत पकड़ लेना।
अंगुली की पूजा चल रही है। कोई महावीर की पूजा कर रहा है, कोई बुद्ध की पूजा कर रहा है, कोई कृष्ण की, कोई राम की। और कुछ तो बहुत ही आगे निकल गए हैं--गणेश जी तक की पूजा कर रहे हैं! हनुमान जी की पूजा कर रहे हैं! कुछ की तो पूछो ही मत, उनकी गति तो बड़ी न्यारी है, सोच-विचार भी नहीं करते कि क्या कर रहे हैं। काली माई की पूजा चल रही है! ... जय संतोषी मैया!
अंगुलियां पकड़ रहे हो! चांद की तरफ देखो। कुरान कोई सिर पर लिए है। कोई वेद लिए है। मरे जा रहे हैं, दबे जा रहे हैं। भारी हो गए हैं वेद, सदियों-सदियों का भार हो गया है। टीका-टिप्पणियां जुड़ती चली गईं, जुड़ती चली गईं। इंच भर सरकना मुश्किल है, पहुंचने की तो बात अलग। शास्त्रों का बोझ भारी है। और जिस चांद की तरफ इशारा था, वह कहां खो गया, इसका पता ही नहीं है। फुर्सत कहां! अंगुली की ही साज-शृंगार में लगे हैं।
मैं एक घर में मेहमान था। सुबह उठ कर स्नान करने जा रहा था तो जिस कमरे
से निकला, देख कर हैरान हुआ। वहां एक छोटा सा मंदिर बना रखा था उन्होंने। उसमें गुरु-ग्रंथ साहिब रखे हुए थे। चलो कोई बात नहीं, गुरु-ग्रंथ साहिब रखो तो कोई हर्ज नहीं। मगर सामने एक लोटा रखा और दतौन रखी। मैंने कहाः भैया, तुम गुरु-ग्रंथ साहिब को भी दतौन करवा रहे हो! चलो यह भी ठीक था कि कृष्ण जी की मूर्ति होती और तुम दतौन रख देते, चलो समझ में आती है बात। हालांकि उन्हें भी कोई दतौन की जरूरत नहीं है, मूर्ति को क्या दतौन! मगर पुस्तक! ... मगर यह, "साहिब" शब्द दिक्कत दे रहा है--गुरु-ग्रंथ "साहिब।" अब जब साहिब हैं तो फिर दतौन भी करेंगे।

मैंने उनसे कहा कि तुम्हें शर्म नहीं आती? टुथपेस्ट रखो! अरे साहिब हैं, दतौन करेंगे? बिनाका! कहां के पुराने चलन में पड़े हो! नीम की दतौन बेचारे साहिब को! सड़ोगे नरक में अगर साहिब को ऐसी दतौन करवाई। और फिर रोज तोड़ो, लाओ... । एक दफा ब्रश खरीद लो, और बिनाका की एक पैकट रख दो--हो गया सदा के लिए निपटारा, करने दो साहिब को जितना करना हो।
लोग भी अदभुत हैं, क्या-क्या अदभुत लोग हैं! उनकी अगर कारगुजारियां देखो तो बड़ी हैरानी होती है। धर्म के नाम पर चल रही हैं सारी कारगुजारियां। गणेश जी की पूजा चल रही है। तुम्हें आदमी नहीं मिलते पूजा करने को? और क्या-क्या खूबियां! और गणेश जी बैठे काहे पर--चूहे पर! चूहों ने क्या बिगाड़ा? और चूहे पर गणेश जी को बिठाले हुए हो! असलियत उलटी हैः रात को जरा गणेश जी को कमरे में छोड़ो, चूहे गणेश जी पर बैठे मिलेंगे। और गणेश जी कुछ भी न बिगाड़ लेंगे।
मगर आदमी की बुद्धिहीनता का कोई अंत नहीं है। और धर्म के नाम पर क्या- क्या कूड़ा-करकट चल जाता है! अच्छे नाम, फिर कुछ भी उनके पीछे चलता रहता है। फिर पंडे हैं, पुरोहित हैं; उनकी दुकानें हैं, उनके व्यवसाय हैं। वे अपने व्यवसाय को समझाने के लिए कुछ भी समझाते रहते हैं। ऐसी-ऐसी बातें समझाते हैं कि हैरानी होती है; बीसवीं सदी है या अभी हम कोई पांच हजार साल पुराने जमाने में रह रहे हैं।
मैं एक वेदांत सम्मेलन में भाग लेने गया था। भूल से ही मुझे बुला लिया लोगों ने। एक सम्मेलन में बस एक ही बार लोग मुझे बुलाते हैं। वहां मेरी झंझट हो गई। झंझट सीधी-साफ थी। एक स्वामी जी लोगों को समझा रहे थे कि हमारे शास्त्रों में तो सारा विज्ञान भरा हुआ है। हर चीज! अरे ये जर्मन हमारे वेदों को चुरा कर ले गए और उन्होंने हमारे वेदों में से सब निकाल लिया। हमारे वेदों में क्या नहीं है!
और लोग बड़े भक्ति-भाव से सुन रहे--कोई पचास हजार लोग। मैं चकित कि यह...
। मैंने पूछाः जब मैं बोला कि अगर तुम्हारे वेदों में सब कुछ लिखा ही है तो तुमने पश्चिम की खोज के पहले ये सब चीजें क्यों नहीं बनाईं? मैंने पूछा कि तुम कुछ चीजों का उत्तर दो, कम से कम यह ही बताओ कि साइकिल को वेद में क्या कहते हैं? छोड़ो हवाई जहाज वगैरह, साइकिल? साइकिल का पंचर कैसे जोड़ा जाता है, इसके लिए वेद में कहीं कोई जगह है? और इतने दिन तक तुम क्या करते रहे, कम से कम साइकिल तो बना लेते!
मगर वे समझा रहे थे लोगों को कि हर चीज वैज्ञानिक है।... हिंदू चोटी इसीलिए रखते हैं कि वह वैज्ञानिक है। और क्या आधार दिया उन्होंने विज्ञान का--कि जैसे तुम देखते न बड़े-बड़े मकानों के ऊपर बिजली से बचाने के लिए एक लोहे का डंडा लगा देते हैं, वैसे ही बिजली से बचाने के लिए चुटैया खड़ी कर देते हैं। और लोग बड़े प्रसन्नता से सुन रहे कि अहा! अपने वेदों में भी कैसा-कैसा विज्ञान, क्या-क्या रहस्य भरा हुआ पड़ा है! धर्म इन मूढ़ताओं का नाम नहीं है।
वे थे स्वामी जी, वे तो बिल्कुल सफाचट थे। तो मैंने उनसे कहाः स्वामी जी, आपके बाबत क्या ख्याल है? बिजली गिरेगी तो आप पर ही गिरेगी। चुटैया कहां है? इसका क्या विज्ञान है?
लेकिन इसी तरह की मूढ़ता की बातें कि हम खड़ाऊं पहन कर चलते थे, क्योंकि वहां एक नस होती है पैर में, वह खड़ाऊं को पकड़ने में दबी रहे तो उससे आदमी ब्रह्मचारी रहता है। हद के पागलो... तो फिर यह बर्थ-कंट्रोल वगैरह का इत्ता उपद्रव क्यों कर रहे हो? खड़ाऊं बांट दो भैया! थोड़ी खटर-पटर होगी, और क्या, मगर यह भीड़-भाड़ तो बचेगी। जब ब्रह्मचर्य का ऐसा सस्ता नुस्खा तुम्हें मालूम है... । मगर मूढ़तापूर्ण बातों को भी अगर वे हमारी हों और उनके लिए कोई व्यर्थ के तर्क भी देता रहे, तो हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है। हमारे शास्त्र, हमारे पंडित-पुरोहित इसी तरह व्याख्या करते रहते हैं, कि हमारे अहंकार को तृप्ति देते रहते हैं। और अहंकार ही बाधा है। फिर वह अहंकार हिंदू का हो, मुसलमान का हो, जैन का हो, ईसाई का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अहंकार बाधा है। अहंकार को विदा करो, तो परमात्मा प्रवेश करे। जहां अहंकार नहीं है वहीं परमात्मा है।

यह छोटा सा इशारा समझो। यह सैन है। इसको कोई तख्ती पर लगा कर पूजा करने की जरूरत नहीं है। इस इशारे को समझो, गुनो, जीओ। ऐसे जीओ जैसे तुम हो ही नहीं; जैसे तुम शून्यवत हो। एक दिन चौबीस घंटे ही प्रयोग कर के देखो, ऐसे जैसे तुम हो ही नहीं, फिर कोई गाली दे जाए तो तुम हो ही नहीं तो गाली शून्य से आर-पार निकल जाएगी। और तुम बड़े हैरान होओगेः चूंकि तुम नहीं हो, इसलिए आज गाली कोई प्रभाव नहीं करती। कोई गले में माला डाल जाए तो भी ठीक; कोई भेद नहीं आता, क्योंकि तुम शून्य हो। शून्य-भाव ऐसे धीरे-धीरे सघन होता जाए तो संन्यास के एक-एक सोपान पर तुम चढ़ते चले जाते हो। जिस दिन शून्य-भाव पूर्ण हो जाता है उस दिन परमात्मा अवतरित हो जाता है। शून्यता एकमात्र पात्रता है।
जहां पुरुष तहंवा कछु नाहीं कह कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।।

आज इतना ही।

होनी होय सो होय
दसवां प्रवचन

नेति-नेति

पहला प्रश्नः ओशो, अपने ज्ञान-चक्षुओं के आधार पर जब भी आपको पाया तो
दो रूपों में। आपके आरंभिक जीवन के प्रेरणा-स्रोत स्वामी विवेकानंद ही रहे होंगे, तत्पश्चात भगवान बुद्ध होंगे। और उसके बाद आप स्वयं ही बुद्ध हो गए। स्वामी विवेकानंद भारत के दूसरे कृष्ण थे; उपनिषदों व अन्य भारतीय ग्रंथों के मूर्धन्य विद्वान थे। ऐसे महापुरुष पर आपके मुखारविंद से एक लंबी प्रवचनमाला की अपेक्षा है। शंका भी है कि विवेकानंद पर आप शायद नहीं भी बोलें; कारण कि उनका समग्र चिंतन हिंदू शब्द व हिंदू सभ्यता पर आधारित है। और हिंदू शब्द से आपको घृणा है, ऐसा मुझे कई बार प्रतीत हुआ है।
विशेष प्रार्थना है कि स्वामी विवेकानंद के मौलिक विचारों पर व चिंतन
पर आप मंथन करते हुए हमें शुभ्र, सात्विक, सच्चाईपूर्ण नवनीत का प्रसाद प्रदान करेंगे!

भगवानदास आर्य! हिंदू शब्द से मुझे उतनी ही घृणा है जितनी मुसलमान शब्द से, जितनी ईसाई शब्द से, जितनी जैन शब्द से--और जितनी, यह तुम्हारे नाम के पीछे जो "आर्य" जुड़ा है इससे। हिंदू शब्द से कोई विशेष घृणा नहीं है, वह कोई अपवाद नहीं है। सभी संप्रदाय मनुष्य को धर्म तक जाने से रोकते हैं। धर्म से मुझे प्रेम है। इसीलिए प्रकारांतर से मैं हिंदू, जैन, ईसाई, बौद्ध सभी के विपरीत हूं। लेकिन विपरीत होने में मुझे रस नहीं है। फूलों का पक्षपाती हूं, इसलिए कांटों से विरोध है, कांटों से कोई सीधी दुश्मनी नहीं है। स्वास्थ्य का पक्षपाती हूं, इसलिए बीमारियों से विरोध है। ये सब बीमारियों के अलग-अलग नाम हैं।
पृथ्वी पर कोई तीन सौ धर्म हैं। तीन सौ कहीं धर्म हो सकते हैं! धर्म तो
एक ही हो सकता है। धर्म का तो अर्थ होता है स्वभाव। विज्ञान एक है और धर्म तीन सौ हैं, इससे ही तुम झूठ का अंदाज लगा सकते हो। विज्ञान एक क्यों है? क्योंकि पदार्थ का स्वभाव एक है।
पानी को गर्म करो, चाहे हिंदू घर में और मुसलमान घर में, सौ डिग्री पर भाप बनेगा। चाहे भारत में और चाहे चीन में, पानी अपना स्वभाव न बदलेगा। चाहे कुरान पढ़ कर पानी को गरम करो, चाहे गीता पढ़ कर, पानी अपनी नियति से चलेगा।
जब पदार्थ का स्वभाव एक है, तो तुम सोचते हो परमात्मा का स्वभाव अनेक होगा? और मजा यह है कि पदार्थ अनेक हैं, उनका स्वभाव एक है! और परमात्मा तो सदा एक है, उसका स्वभाव अनेक होगा? अनेकों का स्वभाव भी मूलतः एक है, तो एक का स्वभाव तो एक ही होगा?
ये तीन सौ धर्म, धर्म नहीं हैं--धर्म के नाम पर चलते हुए थोथे सिद्धांत हैं! और इन थोथे सिद्धांतों में जो खो गया, वह धर्म से वंचित रह जाता है। तुम धर्म से वंचित न रह जाओ, इसलिए इन थोथी मान्यताओं और धारणाओं पर जितनी चोट बन सके उतनी करता हूं। लेकिन मेरी कोई दुश्मनी नहीं है। दुश्मनी तो किसी से भी नहीं है। दुश्मनी का तो कोई उपाय न रहा। मेरे भीतर कोई घृणा नहीं है। लेकिन देखता हूं तुम्हें उलझे हुए, तो तुम्हारी जंजीरें टूटनी जरूरी हैं, तुम्हारी बेड़ियां तोड़नी जरूरी हैं, तुम्हें कारागृह के बाहर खींच लेना जरूरी है। तो तुम्हारी जंजीरों और बेड़ियों पर चोट करता हूं। जंजीरों-बेड़ियों से कोई दुश्मनी नहीं है; तुम्हारी मुक्ति की जरूर अभीप्सा है।
हिंदू भी बंधा है, मुसलमान भी बंधा है। उनके बंधन अलग-अलग हैं। उनके बंधन के ढंग अलग-अलग हैं। लेकिन उन बंधनों के भीतर झांकोगे तो एक ही मूल आधार है; वह है विश्वास।
ज्ञान मुक्त करता है; विश्वास बांधता है। तुम हिंदू कैसे हो--विश्वास
से या बोध से? हिंदू घर में पैदा हुए तो हिंदू हो, क्योंकि हिंदू विश्वास तुम पर आरोपित कर दिए गए। बचपन में ही तुम्हें उठा कर मुसलमान घर में रख

दिया गया होता और तुम मुसलमान घर में बड़े होते, तो तुम मुसलमान होते; तुम्हें कभी ख्याल भी न आता कि तुम हिंदू हो। खून थोड़े ही हिंदू होता है, हड्डी-मांस-मज्जा थोड़े ही हिंदू होती है! ये तो तुम्हारे मस्तिष्क में डाले गए विचार... जो भी डाल दिए जाएं, वही विचार तुम पकड़ लेते हो। और धर्म इन विचारों से मुक्त होने का नाम है।
धर्म यानी ध्यान। ध्यान में तुम हिंदू नहीं रह जाओगे, मुसलमान भी नहीं रह जाओगे, ईसाई भी नहीं रह जाओगे। क्योंकि ध्यान का अर्थ है अपने विचारों से मुक्त हो जाना; अपने विचारों का साक्षी हूं मैं, ऐसा जान लेना। तब तुम देखोगे कि हिंदुओं के विचार, मुसलमानों के विचार, ईसाइयों के विचार तुम्हारे चारों तरफ हैं--बादलों की तरह घिरे हैं। और तुम सूरज हो। तुम बादल नहीं हो। न यह बादल, न वह बादल। जिस दिन तुम जानोगे कि तुम सूर्य के प्रकाश हो, जिस दिन तुम जानोगे कि तुम साक्षीभाव हो, जिस दिन तुम्हारे भीतर समाधि फलित होगी--उस दिन क्या तुम हिंदू रह जाओगे? अगर उस दिन भी हिंदू रह गए तो तुम्हारी समाधि झूठी। उस दिन क्या तुम पुरुष रह जाओगे या स्त्री? अगर तुम पुरुष और स्त्री रह गए, तो भी तुम्हारी समाधि झूठी। उसका अर्थ है अभी तुम शरीर के साक्षी नहीं हो पाए। स्त्री-पुरुष होना शरीर में है। हिंदू-मुसलमान होना मन में है। मन और शरीर दोनों के पार हो तुम। न आर्य हो, न अनार्य हो--साक्षी हो। साक्षी होने में ही तुम्हारी भगवत्ता है। इसलिए इस बात को ख्याल में रख लो।
चोट करता हूं तुम्हारी जंजीरों पर, क्योंकि तुमने जंजीरों को आभूषण समझ रखा है। तुम उनको सजा रहे हो, रंग रहे हो, मोती जड़ रहे हो उन पर, हीरे- जवाहरात लगा रहे हो। और जो भी तुम्हारे आभूषणों की प्रशंसा करता है, तुम्हारे आभूषणों का यशगान करता है, स्तुति करता है, उससे तुम बहुत प्रभावित होते हो। स्वामी विवेकानंद से तुम इसीलिए प्रभावित हो कि उन्होंने तुम्हारे कारागृह को खूब सजाया। वे कुशल व्यक्ति थे; द्रष्टा नहीं, बुद्ध नहीं, साक्षी नहीं। चिंतक थे, विचारक थे, दार्शनिक थे; ऋषि नहीं, भगवत्ता को उपलब्ध नहीं, समाधिस्थ नहीं। समाधिस्थ होकर क्या फिकर रह जाती है हिंदू-मुसलमान की! और वे जीवन भर छूट न सके उन शब्दों से। और उन शब्दों का इतना मोह था उन्हें कि एक जगह उन्होंने कहा है कि जो व्यक्ति अपनी परंपरा के विपरीत जाएगा वह भयंकर बीमारियों से मरेगा। उन दिनों मधुमेह, डायबिटीज बड़ी भयंकर बीमारी थी, तो उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है कि परंपरा के विपरीत जो जाएगा, वह मधुमेह से मरेगा। और जान कर तुम हैरान होओगे, वे खुद मधुमेह से मरे! और तेतीस साल की उम्र में मरे।
अब मधुमेह का परंपरा के विपरीत जाने से कोई संबंध नहीं है। लेकिन डरवाने के लिए, भयभीत करने के लिए--कि अपनी परंपरा को पकड़े रहना, नहीं तो मधुमेह से मरोगे!
विवेकानंद का शरीर तुम्हें बहुत प्रभावित करता है। लेकिन उस तरह के शरीर वाले लोग अक्सर ही मधुमेह से पीड़ित होंगे। वह कोई स्वास्थ्य का लक्षण नहीं है। उतना वजन शरीर पर डालना डायबिटीज को निमंत्रण देना है। मगर कोई डायबिटीज परंपरा के विपरीत जाने से पैदा नहीं होती, नहीं तो सारी दुनिया में डायबिटीज फैल जाए। तब तो ऐसा आदमी पाना मुश्किल हो जाए जिसको डायबिटीज न हो।
अभी जिन लोगों को डायबिटीज है उन की संख्या बहुत थोड़ी है। तो उन्होंने संघ बना लिया है और वे अपने कोट के खीसे में कार्ड रखते हैं कि मैं डायबिटीज का बीमार हूं। क्योंकि डायबिटीज का बीमार कभी-कभी अगर शक्कर की मात्रा शरीर में कम हो जाए तो बेहोश हो जाता है। तो कार्ड पर लिखा होता कि मैं बेहोश हो जाऊं तो घबड़ाने की जरूरत नहीं है, शीघ्र मुझे शक्कर पिलाई जाए; कोई और दूसरा इलाज न किया जाए, मैं सिर्फ डायबिटीज का बीमार हूं।
अगर परंपरा के विपरीत जाने से डायबिटीज होती हो तो हमें स्थिति बदलनी पड़े; सिर्फ कुछ लोगों को कार्ड रखना पड़े कि मैं डायबिटीज का बीमार नहीं हूं। बाकी तो सब लोग हैं ही फिर। और विवेकानंद खुद डायबिटीज से मरे। और तेतीस-चौतीस साल की उम्र में मरे और डरवाते रहे लोगों को। पहले कभी सोचा

भी नहीं होगा कि इसी बीमारी में अपने को फंस जाना पड़ेगा। और परंपरा के बड़े भक्त थे।
तुम कहते हो भगवानदास आर्यः "कि अपने ज्ञान-चक्षुओं के आधार पर"...
अगर तुम्हारे ज्ञान-चक्षु खुल गए तो भैया यहां सिर क्यों मार रहे हो! मुझे तो शक है कि अभी चर्म-चक्षु भी तुम्हारे खुले हैं कि नहीं। ज्ञान-चक्षु खुल गए तो फिर बचा क्या? और ज्ञान-चक्षु खुले--और दिखाई पड़ रही हैं ये बातें! तुम्हारे ज्ञान-चक्षु खुलें तो मैं विवेकानंद से प्रारंभिक रूप से प्रभावित रहा होऊंगा, यह दिखाई पड़ेगा? क्या लेना विवेकानंद से, क्या लेना मुझसे? ज्ञान-चक्षु खुलेंगे तो परमात्मा दिखाई पड़ेगा। ज्ञान-चक्षु खुलेंगे तो परम ज्योति का अनुभव होगा; या इन बातों का पता लगाते रहोगे! ज्ञान-चक्षुओं को भी इस काम में लगाओगे? इतिहास की खोज-बीन करोगे, भूगोल का पता लगाओगे?
ज्ञान-चक्षु का अर्थ क्या होता है? औपचारिक रूप से तो हम अंधों को भी कहते हैं--प्रज्ञा-चक्षु। दयावश। बेचारों की आंखें तो हैं नहीं। सीधा- सीधा किसी को अंधा कहो, अच्छा नहीं लगता। सत्य अच्छा लगता ही नहीं। अंधे को भी अंधा कहो तो वह नाराज हो जाए। तो अंधे को भी हमें शक्कर चढ़ा कर सत्य को कहना पड़ता है, कि आप हैं प्रज्ञा-चक्षु! अंधा भी बड़ा प्रसन्न होता है। कुल हम इतना ही कह रहे हैं कि इनके चर्म-चक्षु नहीं हैं। मगर चर्म-चक्षु नहीं हैं, यह कहने के लिए और एक झूठ बोलना पड़ रहा है कि इनके प्रज्ञा-चक्षु हैं, इनके ज्ञान-चक्षु हैं। काश इतना आसान होता कि अंधे होने से ज्ञान के चक्षु खुल जाते, तब तो जिनको चश्मे लगे हैं उनके थोड़े-थोड़े खुल गए समझो! धन्यभागी हैं वे। और जितना बड़ा नंबर हो चश्मे का उतने ही प्रसन्न होना कि परमात्मा से उतनी ही निकटता बढ़ रही है। जब चश्मे से भी कुछ दिखाई न पड़े तो समझना कि अब ज्ञान-चक्षु खुल गए। जब टटोलने लगो बिल्कुल, द्वार-दरवाजे कुछ समझ में न आएं, तो समझना कि यही परमहंस अवस्था है।
भगवानदास आर्य, कुछ तो सोचो। ज्ञान-चक्षु! चर्म-चक्षु ही कहते तो ठीक था। मगर हमारी आदतें खराब हो गई हैं। इस देश की बड़ी से बड़ी बीमारियों में एक बीमारी है कि हम बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग करना सीख गए हैं। छोटे-मोटे शब्दों की तो हम बात ही नहीं करते। हम शब्दों में ऐसे कुशल हो गए हैं! शब्दों में ही जीते हैं और शब्दों से ही हम समस्याएं हल कर लेते हैं। महात्मा गांधी ने देखो न कैसे समस्याएं हल कर दीं! अछूत को हरिजन कह दिया, समस्या हल हो गई। जैसे शब्द ही का मामला था! अछूत कहो तो समस्या थी। हरिजन कह दिया, अछूत भी बड़े प्रसन्न हुए। अंधे प्रज्ञा-चक्षु हो गए। हरिजन हम कहते हैं, जिसने हरि को जान लिया उसको। और गांधी ने कह दिया हरिजन उनको, जो-जो अछूत हैं। सस्तें में हरिजन हो गए। बुद्ध को हरिजन कहो, कृष्ण को हरिजन कहो, कबीर को कहो, तो समझ में आता है। लेकिन तुमने अछूतों को हरिजन कह दिया और समस्या हल कर ली! अच्छा शब्द दे दिया, नाम सुंदर दे दिया। सुंदर नाम और बस हम बड़े प्रभावित होते हैं।
गरीबों को "दरिद्रनारायण" कह दिया। लक्ष्मीनारायण के मंदिर होते थे। जमनालाल बजाज वर्धा में लक्ष्मीनारायण का मंदिर बना रहे थे। उस मंदिर
को बनाते देख कर ही गांधी जी को यह ख्याल आया कि अरे, यह तो अच्छा है-- दरिद्रनारायण! बस तो दरिद्रनारायण हो गए। अब गरीब होने में एक अध्यात्म हो गया। अब तुम गरीब हो तो बड़े गौरव की बात है। अछूत हो तो हरिजन हो, गरीब हो तो भगवान हो; अब और क्या चाहिए? अगर अछूत घर में और गरीब हुए, बस यह महा- सौभाग्य!
उन्नीस सौ बावन में भारत की संसद में एक बड़ी समस्या थी, क्योंकि हिमालय में नीलगाय पाई जाती है--जंगली गाय है। और वह खेतों को काफी नुकसान पहुंचा रही थी, उसकी संख्या काफी बढ़ गई थी। उसको मारा जाना जरूरी था। लेकिन सवाल यह था कि अगर नीलगाय को मारो तो हिंदू एकदम भड़क जाएंगे। "गाय" शब्द ही काफी है उपद्रव मचाने के लिए। तो पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सलाह-मशविरा लिया। लोगों ने कहा कि नाम बदल दो--नीलघोड़ा। बस नाम बदल दिया और नीलघोड़े मारे गए। और एक हिंदू ने कोई ऐतराज नहीं उठाया। नीलघोड़ा मारो, किसको क्या लेना-देना! नीलगाय मारो तो बस सारे शंकराचार्य खड़े हो जाते

झंडा लेकर, कि नीलगाय मारी जा रही है, हिंदू धर्म पर अत्याचार हो रहा है! न तो वह नीलगाय है न नीलघोड़ा है; वह जंगली जानवर है, उसको नाम तुम जो देना चाहो दे दो। मगर "नीलघोड़ा" देकर मामला हल कर लिया। शब्दों से जीते हैं हम! तुम्हें भी क्या सूझी! ज्ञान-चक्षु के आधार पर... ज्ञान-चक्षु तो समाधि में खुलते हैं। बड़ी अपूर्व घटना है ज्ञान-चक्षु का खुलना। ज्ञान-चक्षु का अर्थ होता है कि भीतर निर्विचार घटित हुआ; मौन, परम मौन उतरा; कुंआरा शून्य उतरा! तब वहां से जो दृष्टि मिलती है, जो दर्शन मिलता है... मगर उस दर्शन में ये चीजें थोड़े ही प्रकट होंगी--कि किसी के घर में चोरी हो गई तो तुम्हारे ज्ञान-चक्षुओं से तुम बता दोगे कि चोर कौन है।
एक गांव में चोरी हो गई थी। पुलिस खोज-बीन करने आई। बहुत खोज-बीन की, कुछ पता न चला। आखिर गांव के लोगों ने कहा कि अब एक ही उपाय हैः हमारे गांव में एक लाल बुझक्कड़ हैं। ऐसी कोई चीज ही नहीं है जिसको वे न बूझ दें। लाल बुझक्कड़ के ज्ञान-चक्षु खुल गए होंगे--जब ऐसी कोई चीज ही नहीं है जिसको वे न बूझ दें! कैसी ही समस्या ले आओ, फौरन बूझ देते हैं। एक दफा रात गांव में हाथी निकल गया होगा। गांव के लोगों ने हाथी देखा नहीं था, सुबह लाल बुझक्कड़ को पूछा। पैरों के चिह्न थे गांव के धूल भरे रास्ते पर। लाल बुझक्कड़ ने बहुत सिर मारा, आंखें बंद कीं, ज्ञान-चक्षु खोले होंगे। फिर कहा कि एक ही बात है--"पांव में चक्की बांध के हरिणा कूदा होय।" पैर तो ऐसे ही थे जैसे चक्की। और हाथी किसी ने देखा नहीं था। तो एक ही बात है कि हरिणा पैर में चक्की बांध कर कूद गया होगा।
गांव के लोग प्रसन्न हुए कहा कि देखो, इसको कहते हैं ज्ञान! तो लोगों
ने कहा कि अब और कोई उपाय नहीं है, लाल बुझक्कड़ से पूछो। इंस्पेक्टर ने लाल बुझक्कड़ के दरवाजे पर जाकर दस्तक दी, बुलाया। लाल बुझक्कड़ ने कहा कि ऐसी कौन सी चीज है जो मैं न बता सकूं! मगर एकांत में बताऊंगा और इस शर्त से बताऊंगा कि तुम किसी और को मत बताना।
इंस्पेक्टर ने कहा कि भैया, तू बता। शर्त हम तेरी मानते हैं, किसी को न बताएंगे कि तूने बताया है।
कहा कि यहां नहीं बताऊंगा, एकांत में चलो। ले गया दूर गांव के बाहर।
थक गया इंस्पेक्टर भी; कहा, भई, कहां ले जा रहा है? अब यहां कोई भी नहीं दिखाई पड़ता, पशु-पक्षी भी नहीं हैं, झाड़-झंखाड़ भी नहीं हैं। अब तो बता दे! तो पास में लाकर मुंह कान के, कि जहां तक मैं समझता हूं, किसी चोर ने चोरी की है।
... ज्ञान-चक्षु खुले हैं! और इतना पता लगाया कि चोर ने चोरी की है! इंस्पेक्टर ने सिर ठोक लिया। कहाः यह तू गांव में ही बता देता। और यह तो हमें ही मालूम है। यह किसको मालूम नहीं है!
तुमने भी ज्ञान-चक्षुओं का खूब उपयोग किया! कुछ काम की बातों में लगाओ।
रही मेरी बात। विवेकानंद मेरे लिए कभी भी प्रेरणा के कोई स्रोत नहीं हैं। विवेकानंद भारत में समादृत हुए, उसका कारण यह नहीं था कि वे कृष्ण के बाद दूसरे महापुरुष हैं। उसका कुल कारण इतना था कि विवेकानंद ने भारत के अहंकार को खूब पोषित किया। और भारत सदियों से, कोई दो हजार साल से गुलाम था। इसके अहंकार को बड़ी चोटें लग गई थीं, बड़े घाव हो गए थे। यह चाहता था कि कोई इसके अहंकार पर मलहम-पट्टी करे। कोई इसको कहे कि तुम जगत-गुरु हो। कोई इसकी घोषणा करे कि तुम महानतम हो! कि इसी पृथ्वी पर अवतारों का जन्म हुआ है। कि यह धर्म-भूमि है, यह पुण्य-भूमि है। कोई घोषणा करे, हमारी अस्मिता को बल दे, हमारे अहंकार के झंडे फहराए। वह कार्य विवेकानंद ने किया।
यह काम राजनीति का काम है, धर्म का इससे कोई संबंध नहीं है। और विवेकानंद होशियार थे, राजनीति में कुशल थे। और अगर ठीक से उनकी जांच-पड़ताल करोगे तो तुम बहुत चकित हो जाओगे। उनके नाम से बहुत सी झूठी बातें प्रचारित की जाती रही हैं--कि उन्होंने भारत में राजनैतिक क्रांति को जन्म दिया, कि भारत के सभी राजनेताओं ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की। विवेकानंद ब्रिटिश साम्राज्य के बड़े पक्षपाती थे और खुशामदी थे, क्योंकि होशियार आदमी थे। ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ उन्होंने एक शब्द

नहीं कहा है, यह तुम्हें मालूम होना चाहिए; बल्कि उसकी बड़ी प्रशंसा की है। यहां तक कहा है कि ब्रिटिश साम्राज्य न होता तो भारत का पुनरुत्थान नहीं हो सकता था। यह ब्रिटिश साम्राज्य के कारण ही भारत का पुनरुत्थान हो रहा है। और यह भी कहा है कि राजनीति में भाग मत लेना। उन दिनों राजनीति में भाग लेने का अर्थ था राजनैतिक स्वतंत्रता के आंदोलन में भाग लेना। उन दिनों राजनीति में भाग लेने का अर्थ था ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ लड़ना। विवेकानंद ने अपने शिष्यों को, अपने संन्यासियों को, अपने अनुयायियों को बचाने की कोशिश की कि वे राजनीति में न उतरें। वे हर हालत में चाहते थे कि ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा उनको समर्थन मिले। और वह समर्थन मिला। ब्रिटिश साम्राज्य ने विवेकानंद के खिलाफ कोई काम नहीं किया, सब तरह समर्थन दिया। वे कोई भारतीय क्रांति के अग्रदूत नहीं हैं--पलायनवादी हैं। और खुशामदी हैं। और उन्होंने भारतीयों को समझाने की कोशिश की कि तुम्हारा असली काम अध्यात्म है; तुम तो सिर्फ उपनिषद, गीता, वेद इनकी घोषणा करो। यह भौतिक गुलामी है, इसमें क्या रखा है! यह तो सब माया है!
विवेकानंद का यह मूल आधार रहा चिंतन का, कि यह जगत माया है। तो गुलामी क्या, स्वतंत्रता क्या? यह सब तो माया है, इसमें क्या उलझना? अध्यात्म की घोषणा करो!
और गुलाम कौमें अध्यात्म की क्या खाक घोषणा करेंगी! जो अपनी स्वतंत्रता की घोषणा भी नहीं कर सकते, वे क्या परम स्वतंत्रता की घोषणा करेंगे?
लेकिन विवेकानंद कुशल थे। तरकीब यह थी कि ब्रिटिश राज्य नाराज भी न हो, ब्रिटिश राज्य से कोई झंझट भी न लेनी पड़े और साथ ही साथ भारत के अहंकार को भी चोट न पहुंचे, भारत के अहंकार को भी फुलाया जा सके। तो भारत को उन्होंने समझाया कि तुम धार्मिक जगत-गुरु हो। तुम्हें और दूसरी उलझनों में नहीं पड़ना है। तुम्हें अपने धार्मिक जगत-गुरु होने की घोषणा करनी है जगत के ऊपर। तुम्हें धार्मिक साम्राज्य स्थापित करना है।
और उन्होंने ब्रिटिश राज्य की बड़ी प्रशंसा की है कि रेल और टेलीफोन
और पोस्ट आफिस, सब ब्रिटिश साम्राज्य लाया। विज्ञान ब्रिटिश साम्राज्य लाया, रास्ते, आवागमन के साधन ब्रिटिश साम्राज्य लाया। दवाइयां, ब्रिटिश साम्राज्य लाया। इसका हमें अनुग्रह मानना चाहिए। जैसे कि हम इतने नपुंसक हैं कि हम अपने हाथ से रास्ते भी नहीं बना सकते थे, रेलगाड़ी भी नहीं ला सकते थे! जैसे कि जिन-जिन देशों में ब्रिटिश साम्राज्य नहीं रहा वहां रेलगाड़ी नहीं पहुंची और वहां रास्ते नहीं बने और वहां टेलीफोन तार नहीं है और पोस्ट आफिस नहीं है! यह मूढ़तापूर्ण बात! मगर ब्रिटिश साम्राज्य की खुशामद हमेशा वे करते रहे। एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्य की खुशामद करते रहे, जितना मक्खन लगा सकते थे ब्रिटिश साम्राज्य को लगाते रहे, और दूसरी तरफ आध्यात्मिक रूप से हिंदुओं के अहंकार को पुनरुज्जीवित करने की बात करते रहे। यह चालबाजी का लक्षण है। ये कोई बुद्धत्व के लक्षण नहीं हैं। विवेकानंद मेरी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं रखते। प्रेरणा-स्रोत तो बहुत दूर, मेरे लिए उनका कोई मूल्य भी नहीं है। हां, रामकृष्ण परमहंस देव का कुछ मूल्य है। उनकी कुछ बात करो तो समझ में आती है। रामकृष्ण उसी कोटि में हैं जिसमें राम और जिसमें कृष्ण; उसी कोटि में हैं जहां बुद्ध और महावीर। विवेकानंद ने रामकृष्ण के सिद्धांत को भ्रष्ट किया। विवेकानंद ने रामकृष्ण के सिद्धांत को उसकी ऊंचाइयों से उतार लिया, आकाश से उतार लिया, धूल-धूसरित कर दिया।
मेरे लिए कोई प्रेरणा उनसे कभी नहीं मिली। हां, भगवानदास आर्य, तुम्हें उनसे प्रेरणा मिली होगी। सभी हिंदुओं को उनसे प्रेरणा मिली है। हिंदू अहंकार को इतनी उदघोषणा और किसने दी?
तुम कहते होः "अपने ज्ञान-चक्षुओं के आधार पर जब भी आपको पाया तो दो रूपों में। आपके आरंभिक जीवन के प्रेरणा-स्रोत स्वामी विवेकानंद ही रहे होंगे?" मुझसे तो पूछ लेते, निर्णय ही कर लिया!... "तत्पश्चात बुद्ध होंगे।" वह भी तुमने निर्णय कर लिया। जैसे कि प्रेरणा-स्रोत होना ही चाहिए कोई!

प्रेरणा-स्रोत तो तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है। जिस दिन तुम अपने भीतर झांक लेते हो उसी दिन बुद्ध को समझ पाओगे, उसी दिन महावीर को भी, उसी दिन मोहम्मद को भी, उसी दिन जीसस को भी। उसके पहले तुम किसी को भी नहीं समझ पाओगे। उसके पहले तुम जो भी समझोगे वह गलत होगा। उसके पहले तुम्हारी ही समझ काम करेगी न! तुम्हारी समझ ही तुम आरोपित करोगे।
मैंने किसी बाहरी व्यक्ति में प्रेरणा खोजने की कभी कोई चेष्टा नहीं की। मैं अगर बुद्धत्व तक पहुंचा हूं तो किसी से प्रेरणा लेकर नहीं, बल्कि परम नास्तिकता के मार्ग से पहुंचा हूं। सबको इनकार करके पहुंचा हूं। मेरा प्रारंभिक जीवन नास्तिक का जीवन है, आस्तिक का जीवन ही नहीं है। और मैं मानता हूं कि जिसको सच में आस्तिक होना हो उसे पहले नास्तिकता से गुजरना जरूरी है। क्योंकि जिसे "नहीं" कहने की सामर्थ्य नहीं, उसके "हां" में कुछ बल नहीं होता। और जिसने कभी संदेह नहीं किया है--प्रखरता से, परिपूर्णता से, समग्रता से--उसकी श्रद्धा दो कौड़ी की है।
मैं किसी पर श्रद्धा करके यहां नहीं पहुंचा हूं। मैं सब पर अश्रद्धा करके यहां पहुंचा हूं। मैंने सबको इनकार किया है। मेरा प्रारंभिक जीवन विरोध का जीवन रहा है, नकारात्मक जीवन रहा है। अगर बुद्ध को पढ़ता तो बुद्ध में भी गलतियां खोजने की ही चेष्टा रहती। महावीर को पढ़ता तो महावीर में गलतियां खोजता। कृष्ण को पढ़ता तो कृष्ण में गलतियां खोजता। मुझसे सभी नाराज थे।
मेरे गांव में कोई संन्यासी अगर प्रवचन देने आते थे तो संयोजक मुझसे प्रार्थना कर जाते थे कि आप न आना, क्योंकि झंझट हो जानी निश्चित थी। मगर मैं बेचूक मौजूद होता था। और मैं बिना बीच में खड़े हुए नहीं रह सकता था। विवाद होना सुनिश्चित था।
मेरा प्रारंभिक जीवन नकार का जीवन है। जहां तक इनकार किया जा सकता था, मैंने इनकार किया। इनकार करते-करते उस जगह आया जहां इनकार करने को भी कुछ न बचा। अगर ठीक से समझो तो यही नेति-नेति का अर्थ है। नेति-नेति नकार की पराकाष्ठा है--न यह, न वह। अगर ठीक से समझो तो यही उपनिषद है--नकार। और जब तुम इनकार करते-करते-करते उस जगह आ जाते हो जहां इनकार करने को भी कुछ नहीं बचता, एक विराट शून्य ही रह जाता है--तभी तुम्हारे भीतर अंतर-वाणी गूंजती है। उस शून्य में अनाहत का नाद होता है। उस शून्य में ही पूर्ण का अवतरण होता है।
तो मैंने किसी से प्रेरणा नहीं ली। हां, जब पूर्ण का अवतरण हुआ, जब मेरा अंतर-आकाश प्रकाश से भर गया, तब मैंने जाना कि ऐसा ही बुद्ध को हुआ था; तब मैं पहचाना कि ऐसा ही महावीर को हुआ था; तब कबीर में भी मुझे वही झलक मिली--और जीसस में और जरथुस्त्र में और लाओत्सु में। लेकिन मैं उनका गवाह हूं, वे मेरे प्रेरणा-स्रोत नहीं हैं। इस बात को मैं बहुत स्पष्ट कर देना चाहता हूं। उनकी प्रेरणा पाकर मैं यहां नहीं पहुंचा हूं। यहां पहुंच कर मैंने उनको गवाही दी है कि हां वे ठीक हैं। मैंने जान कर कहा है कि वे ठीक हैं। मैंने उनको मान कर ठीक को नहीं जाना है। जाना पहले है, फिर उनको ठीक कहा है। मैं उनका प्रमाण हूं, उनका गवाह हूं, उनका साक्षी हूं। अब मैं कह सकता हूं कि वे ठीक हैं।
लेकिन विवेकानंद कहीं भी नहीं आते। रामकृष्ण ठीक हैं, बिल्कुल ठीक हैं, सौ प्रतिशत ठीक हैं। विवेकानंद की कोई गिनती नहीं।
यह सच है कि बिना विवेकानंद के रामकृष्ण की कोई ख्याति न होती। शायद दुनिया में कोई उनको जान भी न सकता। यह भी सच है कि विवेकानंद ने रामकृष्ण को बड़े तर्कयुक्त ढंग से प्रस्तावित किया। लेकिन उस प्रस्तावना में ही रामकृष्ण का मूल खो गया। क्योंकि वह जो तर्कयुक्तता है, उसी ने तो मार डाला। रामकृष्ण हैं दीवाने, मस्ताने, परवाने! उनको तुम तर्कबद्ध नहीं बना सकते। हां, तर्कबद्ध बनाने से लोगों की समझ में आ जाएंगे। लोगों को ही समझाना हो तो ठीक। मगर तर्कबद्ध बनाने में उनका जो मूल स्वर है वह खो जाएगा; उनकी जो गरिमा है, उनकी जो महिमा है, नष्ट हो जाएगी।
ऐसा ही समझो कि एक दीया जला और अंधे को समझाना है, तो अंधे को समझाने
के लिए तुम्हें कुछ उपाय करने पड़ेंगे।

रामकृष्ण एक कहानी कहा करते थे। वे कहते थेः एक अंधा आदमी अपने मित्र
के घर पर निमंत्रित था भोजन के लिए। उसने पहली दफा खीर खाई। गरीब आदमी था। सुंदर खीर थी, स्वादिष्ट खीर थी। गुलाब की पंखुड़ियां डाली गई थीं उसमें और केसर थी उसमें और पिस्ता-बादाम थे उसमें। और बहुत प्रभावित हुआ। और उसने कहाः यह क्या है? मुझे कुछ समझाओ।
पास में बैठे हुए एक पंडित ने, जो कि निमंत्रित था भोजन के लिए, उसने कहाः अरे, यह समझ में नहीं आता! यह खीर है, दूध की बनी हुई।
अंधे आदमी ने कहाः दूध क्या है? दूध का रंग क्या है, ढंग क्या है? कुछ दूध की परिभाषा दो।
पंडित तो पंडित! पंडित तो अंधों से अंधे होते हैं। पंडित समझाने बैठ गया। उसने इसको चुनौती मान ली। पंडित ने कहाः दूध, दूध तुझे पता नहीं! अरे बिल्कुल सफेद रंग का होता है।
अब अंधे आदमी ने कहा कि तुम पहेलियां बुझा रहे हो। पहला प्रश्न हल नहीं होता, तुम और नये प्रश्न खड़े कर देते हो। अब यह सफेदी क्या है?
मगर पंडित भी कोई हारने वाला था! अंधे से कुछ हारने वाला था! अंधे से कुछ पिछड़ने वाला था! उसने कहाः सफेद रंग नहीं मालूम! बगुला देखा बगुला? ठीक बगुले के रंग जैसा।
अंधे आदमी ने कहा कि बात और उलझती जा रही है। खीर से चले थे, बगुले पर पहुंच गए। बात और दूर की हुई जा रही है। बगुला कैसा होता है?
मगर पंडित तो पंडित, उनके तो ज्ञान-चक्षु खुले होते हैं! वह यह भी न देख सका कि यह अंधा आदमी है, उसको मैं बगुला समझा रहा हूं, यह कैसे समझेगा! उसने तरकीब निकाली। उसने कहा कि ऐसे नहीं चलेगा, बातचीत से नहीं चलेगा, तुझे कुछ अनुभव करवाना पड़ेगा। ला तेरा हाथ मेरे हाथ में दे।
एक हाथ में हाथ पकड़ा, दूसरा हाथ बगुले की गर्दन की तरह मोड़ा और अंधे के हाथ को लेकर दूसरे हाथ पर फेरा और कहाः देख इस तरह बगुले की गर्दन होती है! अंधे ने कहाः अब कुछ बात कही। अब मैं समझ गया कि खीर कैसी होती है। मुड़े हुए हाथ की तरह होती है।
हम हंसते हैं, मगर अंधा क्या करे? अंधे पर दया करो। उसकी गलती कहां? बात बिल्कुल तर्कयुक्त है। खीर के लिए ही सवाल उठा था। खीर को समझाने के लिए ही बगुले तक बात पहुंची थी। फिर बगुला, कुछ थोड़ा-थोड़ा उसकी समझ में आया कि ऐसी उसकी गर्दन होती है--मुड़े हुए हाथ की तरह। तत्क्षण उसने निष्कर्ष ले लिया कि खीर मुड़े हुए हाथ की तरह होती है। बात बड़ी दूर हो गई। कहां खीर! कहां मुड़ा हुआ हाथ! क्या लेना-देना!
विवेकानंद ने वही किया। रामकृष्ण खीर की बात कर रहे हैं, विवेकानंद मुड़े हुए हाथ की। मगर अंधों को मुड़ा हुआ हाथ समझ में आ रहा है। और अंधों की जमात है, अंधों की भीड़ है। रामकृष्ण तुम्हें समझ में नहीं आएंगे, विवेकानंद समझ में आ जाएंगे। क्योंकि रामकृष्ण बोलते हैं ऊंचाइयों से और उन ऊंचाइयों से, जहां भाषा अपने अर्थ खो देती है। और विवेकानंद बोलते हैं वहीं से जहां तुम खड़े हो। तुम्हारी ही भाषा, तुम्हारा ही तर्क, तुम्हारा ही मस्तिष्क उनके पास भी है। तुमसे थोड़ा निपुण, थोड़ा कुशल, थोड़ा ज्यादा सुशिक्षित। वे वेद का उल्लेख कर सकते हैं, उपनिषद के उद्धरण दे सकते हैं। और तुम्हारे सामने जो अतर्क्य है, जिसको तर्क में बांधा भी नहीं जा सकता, बांधा कभी गया नहीं, उसको तर्क में बांधने की चेष्टा कर सकते हैं। और तुम्हें खूब जंचेगी बात। तुम कहोगेः जो बात कभी समझ में न आती थी, समझा दी। और तुम्हें पता ही न चलेगा कि इस समझाने में वह बात खो ही गई जिसको समझाने चले थे।
परमात्मा समझाया नहीं जा सकता; केवल जाना जा सकता है--अनुभव है। उपनिषद भी नहीं समझा सकते, वेद भी नहीं, कुरान भी नहीं, बाइबिल भी नहीं, कोई भी नहीं समझा सकता। सब समझाने वाले हार गए हैं। लेकिन पंडित समझाए चले जाते हैं।
और विवेकानंद निश्चित ही महापंडित हैं। रामकृष्ण बिल्कुल बेपढ़े-लिखे गंवार, कबीर जैसे। दूसरी कक्षा तक पढ़े, इससे ज्यादा उनकी कोई समझ नहीं। विवेकानंद विश्वविद्यालय के स्नातक, तर्कनिष्ठ; आधुनिक मनुष्य के मन की

क्या गतियां हैं, उनके संबंध में सुपरिचित। ठीक उनका प्रभाव पड़ा। मगर प्रभाव अंधों पर पड़ा। जो जानते हैं उन पर विवेकानंद का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। हां, रामकृष्ण जरूर उन्हें आंदोलित करेंगे।
रामकृष्ण असली गुलाब हैं। विवेकानंद तो कागज के फूल हैं। गुलाब जैसे
लग सकते हैं, गुलाब हैं नहीं। न सुगंध है रामकृष्ण की, न वह ताजगी है, न वह रस है, न पृथ्वी से कोई जोड़ है, न आकाश की हवाओं से, न चांद-तारों से। शाब्दिक जाल है। और शब्दों के कुशल चितेरे हैं। इससे मैं इनकार नहीं करूंगा कि शब्दों के कुशल चितेरे हैं, सुंदर व्याख्याता हैं। लेकिन इतने भी नहीं जितने कि तुम मान बैठे हो। तुम्हारी मान्यता तो तुमने बहुत बढ़ा- चढ़ा कर कर ली है।
और अमरीका में जो प्रभाव पड़ा--सर्वधर्म संसद में--उस प्रभाव के वक्तव्य में भी कुछ ऐसी खास बात नहीं है। मगर लोग कैसी-कैसी बातों से प्रभावित होते हैं, यह भी सोच लेने जैसा है। विवेकानंद से पहले तो इसलिए प्रभावित हुए लोग... जो पहला प्रभाव पड़ा, वही तुम्हें बता देगा कि लोगों की कैसी अवस्था है। पश्चिम में तो ईसाइयत ने धर्म को बिल्कुल ही औपचारिक बना दिया है... रविवारीय धर्म। उसका जीवन से कोई संबंध नहीं है; रविवार को बस चर्च में हो आओ। वह भी एक सामाजिक कृत्य है। थोथा कर दिया बिल्कुल।
... विवेकानंद को जो पहला सम्मान मिला, जैसे ही वे खड़े हुए और पहले शब्द बोले कि सारी संसद खड़ी हो गई और सारे लोगों ने तालियां बजा कर स्वागत किया। किस बात पर, तुम बड़े हैरान होओगे! सिर्फ उन्होंने छोटी सी बात कही थी, जो कि तुमको बिल्कुल प्रभावित नहीं करेगी, जो कि भारत में हरेक राजनेता करता है, हर कोई करता है। चौरस्ते पर खड़े हैं--"भाइयो एवं बहनो!" इससे तुम प्रभावित होते हो? इतना सुनकर ही चल पड़ते हो कि हो गया बहुत। विवेकानंद ने वही किया, लेकिन लोग बड़े प्रभावित हुए। "ब्रदर्स एण्ड सिस्टर्स!" अमरीका में कोई धर्मगुरु इस तरह बोलता ही नहीं। धर्मगुरु बोलता है बड़ी ऊंचाई से; वह है पुण्यात्मा और कहां तुम--पापी, नरक जाने वाले! तुमसे कहेगा--"भाइयो एवं बहनो?" अब विवेकानंद ने सड़ी-सड़ाई बात कही; यहां तो सड़ी-सड़ाई है। यहां कौन नहीं कहता भाइयो एवं बहनो! विवेकानंद तो बेचारे यहीं की परंपरा निभा रहे थे। उनको क्या पता था कि इसमें ताली बज जाएगी, लोग एकदम खड़े हो जाएंगे। इस बात का इतना प्रभाव पड़ा। कारण? कारण यह था कि सदियों से पश्चिम में किसी ने संबोधन नहीं किया था इतने प्रेमपूर्वक ढंग से, इतनी निकटता से कि "भाइयो एवं बहनो।"
फिर तो एक-एक शब्द लोगों के हृदय में उतरता गया। हालांकि कोई शब्दों में खूबी नहीं है, कुछ खास बात नहीं है। यहां तो पान की दुकान पर भी ब्रह्मचर्चा चल रही है! यहां तो जो देखो वही ब्रह्मज्ञानी है। ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है जिसके कि ज्ञान-चक्षु न खुल गए हों।
मुझ पर कोई विवेकानंद का, या किसी और का, इस तरह का प्रभाव नहीं कि मैं किसी से प्रेरणा लिया हूं। प्रेरणा बाहर से जब तक लोगे तब तक धार्मिक हो ही न पाओगे। बाहर से आई प्रेरणा तुम्हें बाहर से ही बांधे रखेगी। धार्मिक होने का मौलिक सिद्धांत हैः बाहर से सारी प्रेरणाएं तोड़ दो। अपने भीतर, निपट अपने भीतर, सारे सेतु, सारे संबंध तोड़ कर डूब जाओ। उसकी प्रक्रिया नकार है।
तो मैंने उपनिषद को भी कह दिया कि नहीं, और वेदों को भी कह दिया नहीं,
और बाइबिल को भी कह दिया, नहीं और बुद्ध को और महावीर को भी कह दिया नहीं। निश्चित ही इन को नहीं कहना कोई आसान काम नहीं था। कठिन काम था। इनको नहीं करना अपने ही प्राणों के हिस्सों को अपने से अलग करना है। ये सब हमारे भीतर इस तरह समा गए हैं! इनसे ही तो हमारा चित्त निर्मित हुआ है। इन्होंने ही तो ईंटें रखी हैं हमारे चित्त की--और इनको इनकार करना! और इनको इनकार करने में बड़ा खतरा है, क्योंकि इनको जब तुम बिल्कुल इनकार कर दोगे तो तुम्हारे पास पकड़ने को कोई सहारा भी न रह जाएगा, तुम बिल्कुल बेसहारे हो जाओगे। बिल्कुल असहाय! अथाह सागर है और नौकाएं सब इनकार कर चुके! लगेगा अब डूबे तब डूबे। वैसी ही दशा कई वर्षों तक मेरी रही कि अब डूबा तब डूबा।

मेरे अध्यापक समझते थे कि मैं विक्षिप्त हो गया हूं, या होने के करीब हूं। क्योंकि मेरे अध्यापकों से भी विश्वविद्यालय में यही उपद्रव था। किसी बात पर मैं राजी नहीं हो सकता था। छोटी-मोटी बात पर राजी नहीं हो सकता था, बड़ी बातों की तो बात ही छोड़ दो। नकार मेरा ऐसा था कि हर छोटी बात पर था, हर बात पर था। मेरे शिक्षक मुझ से थक गए थे। मुझे विश्वविद्यालयों से निकाल दिया गया। मुझे कोई नया विश्वविद्यालय जगह देने को राजी नहीं था। कारण यह था कि मैं लोगों को अड़चन दे रहा था। मैं खुद तो पागल जैसी हालत में था, उनको भी पागल किए दे रहा था। ऐसे सवाल मैं पूछता था जिनके कि उत्तर वे बेचारे देते भी तो कहां से देते! आज मैं जानता हूं कि वे देते भी तो कहां से देते!
जैसे मैंने अपने एक प्रोफेसर को पूछा कि आप जिंदा हैं, इसका प्रमाण क्या? वे अपने चारों तरफ देखने लगे। क्या प्रमाण, और वे प्रमाण दे भी नहीं सकते थे, क्योंकि वे वेदांत पढ़ाते थे--जगत माया है! तो क्या पता तुम भी माया हो, मैंने उनसे कहा। यह हो सकता है मैं एक सपना देख रहा हूं कि तुम पढ़ा रहे हो और कोई न हो वहां। तुम भी हो सकता है सपना देख रहे हो कि मैं यहां पढ़ रहा हूं और कोई भी न हो यहां।
उन्होंने कहा कि हो सकता है। तो मैंने कहाः तुम भी घर जाओ, मैं भी घर जाऊं। क्यों सिर पचा रहे हो? सब माया है! और तुम माया समझाते हो और घंटा बजता है और सीधे क्लास में आ जाते हो। पहले सोचा करें कि घंटा जो बज रहा है, बज रहा है? सच में बज रहा है? इसका कोई प्रमाण है? और घंटा बजता है फिर और एकदम तुम बंद कर देते हो। तुम मानते हो घंटे में। और तुम कह रहे हो जगत माया है।
निषेध कर-कर के मैं उस जगह पहुंच गया जहां बिल्कुल विक्षिप्तता जैसी अवस्था हो जाए। उस विक्षिप्तता से गुजरना ही होता है। वह विक्षिप्तता अनिवार्य है। मैं उसी को त्याग कहता हूं। तपश्चर्या कहता हूं। धूनी लगाकर बैठ गए, यह कोई तपश्चर्या नहीं है। राख मल ली शरीर पर, यह कोई तपश्चर्या नहीं है। सच तो यह है कि ठंड लग रही हो तो राख मल कर बैठ जाओ, ठंड नहीं लगेगी। राख जो है वह सारे तुम्हारे रोओं को बंद कर देती है, जहां से हवा अंदर जाती है। तो वे जो राख लपेटे बैठे रहते हैं ठंड के दिनों में, तुम यह मत समझना कि तपश्चर्या कर रहे हैं; वे कंबल ओढ़े हैं। कंबल में से भी हवा चली जाए, राख में से हवा भी नहीं जा सकती। क्योंकि तुम श्वास से ही हवा नहीं लेते हो, तुम्हारा रोआं-रोआं हवा ले रहा है, करोड़ों रोएं हवा ले रहे हैं। राख से बढ़िया कोई चीज नहीं है। खूब खोजा, जिनके ज्ञान-चक्षु खुल गए थे उन्होंने! ... राख लपेट कर बैठ गए! लोगों को लगता है कि अहा! कैसा त्याग किया-कपड़े न लत्ते! महात्यागी! और वे सिर्फ एक साधारण से वैज्ञानिक सिद्धांत का उपयोग कर रहे हैं कि रोओं को बंद कर दिया।
वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर तुम्हारी श्वास चलती रहे, नाक खुली रहे और सारे रोओं को बिल्कुल कोलतार से बंद कर दिया जाए तो तुम तीन घंटे में मर जाओगे, तीन घंटे से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकते। इतना जरूरी है श्वास का भीतर जाना सारे अंगों से। तुम्हारा एक-एक कोष्ठ शरीर का श्वास चाहता है, आक्सीजन चाहता है।
कोई कांटों पर लेटा हुआ है। तुम सोचते हो यह तपश्चर्या है? तो तुम जरा
एक छोटा सा प्रयोग करना। अपने बच्चे को कहना कि सुई ले ले और मेरी पीठ के पीछे खड़ा हो जा। अभी सर्दी के दिन हैं, धूप में बैठ जाना और कहना कि मेरी पीठ पर जगह-जगह सुई चुभा। और तुम चकित होओगे, तुम्हारी पीठ पर ऐसे बहुत से स्थान हैं जहां बच्चा सुई चुभाएगा और तुमको पता ही नहीं चलेगा। तुम्हारी पूरी पीठ संवेदनशील नहीं है। कुछ स्थानों पर पता चलेगा, कुछ पर पता ही नहीं चलेगा, जिन-जिन स्थानों पर सुई के चुभने का पता ही नहीं चलता, बस उसी ढंग से कांटों की सेज बनाई जाती है। वह थोड़ी सी कुशलता की बात है, थोड़े अभ्यास की बात है, ढंग से लेटने की बात है--कि बस कांटे वहां छुएं पीठ को जहां चुभन पता ही नहीं चलती। वहां कोई तंतु ही नहीं है जिससे चुभन तुम तक पहुंच सके। फिर धीरे-धीरे अभ्यास हो जाता है। मजे से लेटे रहो कांटों की शय्या पर। और लोग समझेंगे कि क्या गजब की साधना कर रहे हो! और तुम केवल एक

सीधे से शारीरिक नियम का उपयोग कर रहे हो। ये कोई तपश्चर्याएं नहीं हैं। न ही उपवास कोई तपश्चर्या है।
अफ्रीका में बहुत से कबीले हैं जो दिन में एक ही बार भोजन करते हैं। चौबीस घंटे में एक ही बार। जब उनको पहली दफा पता चला कि दुनिया में और लोग दो बार करते हैं, कुछ लोग तीन बार और अमरीकी हैं जो पांच बार। और पांच बार के बीच-बीच में जो-जो फ्रिज तक जाते हैं, उसकी कोई गिनती ही नहीं। तो उनको भरोसा ही नहीं आया। मगर उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि वे कोई त्याग कर रहे हैं कि एक ही बार भोजन कर रहे हैं।
शरीर के समायोजन की क्षमता इतनी है कि तुम एक बार भोजन करो तो वह धीरे- धीरे एक ही बार में उतना भोजन लेने लगता है जितना चौबीस घंटे के लिए जरूरी है। इसलिए जो लोग एक बार भोजन करेंगे उनकी तोंदें बड़ी हो जाएंगी। तुम जैन मुनियों को देखो। जैन मुनियों की तोंद तो होनी ही नहीं चाहिए। जैन मुनि और तोंद का संबंध ही नहीं होना चाहिए। क्योंकि जैन मुनि तो बेचारा उपवास करता है, लंबे उपवास करता है--दो-दो तीन-तीन दिन के, फिर पंद्रह-पंद्रह दिन के भी उपवास करता है। मगर उसकी तोंद क्यों बढ़ जाती है? क्योंकि जब वह दो- तीन दिन के बाद भोजन करता है तो फिर डट कर ही करता है।
तुम देखोगे कि जहां अकाल पड़ जाता है वहां बच्चों के पेट बड़े हो जाते हैं। फोटुएं तुमने अखबारों में देखी होंगी। क्यों? अकाल पड़ा है, बच्चों के पेट बड़े क्यों हैं? इसीलिए कि जब मिल जाता है तब वे इतना कर जाते हैं जितना कि दो-चार-आठ दिन के लिए जरूरी है, नहीं तो जिएंगे कैसे? जैसे-जैसे कोई देश समृद्ध होता जाता है वैसे-वैसे उस देश में तोंद कम होती जाती है। जब भोजन ठीक से उपलब्ध होने लगता है तो तोंद समाप्त हो जाती है, अपने आप समाप्त हो जाती है। क्योंकि उसकी कोई जरूरत नहीं है। जब जरूरत होगी तब भोजन कर लेंगे।
और आदमी शाकाहारी है। आदमी की जो पेट की व्यवस्था है वह बताती है कि
वह शाकाहारी है। उसकी जो अंतड़ियां हैं पेट की, वे बताती हैं कि वह शाकाहारी है। क्योंकि मांसाहारी जानवरों के पेट की अंतड़ी छोटी होती हैं और शाकाहारी जानवरों के पेट की अंतड़ियां बहुत बड़ी होती हैं। मनुष्य के पेट की अंतड़ियां बहुत बड़ी हैं, कई फीट लंबी हैं। गुड़री मार कर बैठी हैं। क्योंकि मांस तो पचा हुआ भोजन है। वह दूसरे ने पचा लिया, तब तो मांस बना। इसलिए छोटी अंतड़ी काफी है।
सिंह के पेट की अंतड़ी बहुत छोटी होती है, इसलिए सिंह चौबीस घंटे में
एक ही बार भोजन करता है। कर ही नहीं सकता दो बार करना भी चाहे तो। उसकी अंतड़ी में जगह नहीं होती। और एक ही बार का भोजन पर्याप्त हो जाता है, क्योंकि पचा हुआ है उसको पचाने का काम खुद भी नहीं करना पड़ता। और भारी भी है मांसाहार, क्योंकि पूरा का पूरा भोजन पचा हुआ है। उसमें कुछ भी व्यर्थ नहीं है जो फेंकना है बाहर। जब तुम शाक-सब्जी खाते हो उसमें सत्तर प्रतिशत तो बेकार है, कूड़ा-करकट है; उसे बाहर फेंकना पड़ेगा। तुम्हें बड़ी अंतड़ी चाहिए, क्योंकि सत्तर प्रतिशत जगह तो व्यर्थ की चीजें ले लेंगी, तीस प्रतिशत ही सार्थक चीजों के लिए जगह बचेगी।
इसलिए जितने शाकाहारी जानवर हैं, जैसे बंदर, वह दिन भर तुम देखो चल रहा है काम उनका। इस झाड़ से उस झाड़ पर... । अमरीकी उसी अवस्था में आ गए हैं। सुबह-सुबह--ब्रेकफास्ट... फास्ट किया ही नहीं है--और ब्रेकफास्ट! अजीब आदमी हैं। लेकिन वे उसको फास्ट कहते हैं--रात जो बारह बजे भोजन बंद कर दिया, सो गए और फिर सुबह जो आठ बजे उठे तो आठ घंटे का फास्ट हो गया न! वह आठ घंटे का उपवास हो गया। अब उपवास-भंग, ब्रेकफास्ट। फिर दिन भर यह प्रक्रिया चलती है बारह बजे रात तक।
शरीर के समायोजन की व्यवस्थाएं हैं।
जितना समृद्ध देश होगा उतनी ही तोंदें कम होंगी। जितना गरीब देश होगा उतनी ही तोंदे ज्यादा होगी। और साधु-संन्यासियों की तोंदों का तो कहना ही क्या! तुमने मुक्तानंद के गुरु नित्यानंद की तोंद देखी? अगर नहीं देखी तो दुनिया का दसवां चमत्कार नहीं देखा! तो तुम्हारा जीवन अकारथ है! तस्वीर में ही देख लेना, मगर नित्यानंद की तोंद जरूर देख लेना। तोंदें तो बहुत

हुईं मगर नित्यानंद, कोई उनका मुकाबला नहीं कर सकता। साधारणतः आदमी की तोंद होती है; नित्यानंद को देख कर लगता है तोंद को आदमी है। और नित्यानंद बड़े उपवासी हैं! उपवास करोगे, यह होनेवाला है, यह स्वाभाविक है।
ये कोई तपश्चर्याएं नहीं हैं। तपश्चर्या एक ही हैः नकार कर दो बाहर
से सारे ज्ञान को, विच्छिन्न कर लो अपने को--सारे सामाजिक सम्मोहन से, सारे सामाजिक संस्कारों से। हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, यहूदी कोई भी संस्कार हो, सारे संस्कारों से अपने को मुक्त कर लो; यही तपश्चर्या है। कठिन है, कठोर है। कपड़े उतारने जैसी नहीं है, चमड़ी उघाड़ने जैसी है। और जब तुम सारे संस्कारों से नकार कर दोगे तब तुम्हारे भीतर एक ऐसा महाशून्य घिरेगा कि तुम घबड़ाओगे कि मौत आई, कि अब मरा, पकड़ने को कुछ भी नहीं रहा, कोई सहारा न रहा! और जब तुम पूरे बेसहारा हो जाते हो तभी परमात्मा का सहारा मिलता है। जब तक तुम खुद ही अपना सहारा पकड़े हुए हो तो तब तक परमात्मा का सहारा नहीं मिलता।
कृष्ण के जीवन में एक प्यारी घटना है। कहानी ही होगी, मगर बड़ी सत्य के संबंध में सूचक है। वे भोजन करने बैठे हैं। रुक्मिणी थाली पर पंखा झल रही है। बीच भोजन में उठ खड़े हुए और एकदम भागे दरवाजे की तरफ। रुक्मिणी ने कहाः क्या हुआ? हाथ का कौर छोड़ ही दिया है थाली में। उत्तर नहीं दिया रुक्मिणी को। जैसे कि एकदम घर में आग लग जाए! और फिर दरवाजे पर जाकर ठिठक गए, क्षण भर खड़े रहे, फिर वापस लौट आए, वापिस थाली पर बैठ कर भोजन करने लगे। रुक्मिणी ने पूछाः मेरी कुछ समझ में नहीं आया। इतनी तेजी से भागे जैसे घर में आग लगी हो, जैसे भूकंप आ गया हो! और फिर चुपचाप लौट आए दरवाजे की देहरी से। हुआ क्या! इसका राज क्या है?
कृष्ण ने कहाः राज कुछ ज्यादा नहीं, छोटा सा है। मेरा एक भक्त एक रास्ते से गुजर रहा है। लोग उसको पत्थर मार रहे हैं। उसके माथे से लहू की धार बह रही है। मगर वह है कि अपना इकतारा बजाए ही जा रहा है--उसी मस्ती में, उसी मस्ती में, जिसमें पहले बजा रहा था जब लोग पत्थर नहीं मार रहे थे। खून बह रहा है और इकतारा बज रहा है और वह मुझे पुकार रहा है। उसकी असहाय अवस्था देख कर मुझे भागना पड़ा। भोजन मैं पूरा नहीं कर सका।
रुक्मिणी ने कहाः फिर दरवाजे से लौट क्यों आए?
उन्होंने कहा कि जब तक मैं दरवाजे पर पहुंचा, उसने अपना इकतारा तो एक तरफ फेंक दिया है और पत्थर उठा लिए। उसने कहा कि आ जाओ अब कौन-कौन हैं। अब बहुत हो गया पुकारते-पुकारते कृष्ण-कृष्ण। अब मैं ही निपटे लेता हूं। अब वह खुद ही निपट रहा है, अब मेरी कोई जरूरत न रही।
इस कहानी को मैं बहुत अर्थपूर्ण मानता हूं। तुम जब तक कुछ भी सिद्धांत, कुछ भी विचार, कुछ भी धारणा, कुछ भी शास्त्र पकड़े रहोगे, तब तक परमात्मा की तुम्हें जरूरत ही नहीं, तुम खुद ही काफी समझदार हो। उसकी समझ प्रवेश पा सके, इतना स्थान भी तुममें नहीं है। जब तुम अपनी सारी समझ को हटा कर रख दोगे और तुम कहोगे मैं नाकुछ हूं, शून्य हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है--नकार वहीं ले आता है जहां अपने अज्ञान का पता चलता है और ज्ञान बिल्कुल नहीं बचता। घनी अमावस की रात हो जाती है, गहन अंधकार छा जाता है। लेकिन जितना गहन अंधकार है उतनी ही सुबह करीब है। और जब तुम बिल्कुल बेसहारा हो तब उसका हाथ उतरेगा और तुम्हें सहारा देगा। जब तुमने सब नावें छोड़ दीं तब वह स्वयं तुम्हारी नाव बन जाता है, स्वयं तुम्हारा माझी बन जाता है। मैंने किसी से कोई प्रेरणा नहीं ली है। पढ़ा मैंने सबको, मैंने सबको इनकारा। और कोई उपाय भी न था। जिसको मैं नहीं जानता, उसे मैंने कभी स्वीकार नहीं किया। जो मेरा अनुभव नहीं है उसे मैं क्यों स्वीकार करूं? मैंने कभी विश्वास पर अपने जीवन की भित्ती नहीं रखी। संदेह मेरी प्रक्रिया रही। और तुम जान कर चकित होओगे कि संदेह करते-करते मैं परम श्रद्धा को पहुंचा। संदेह ने रास्ता साफ कर दिया, संदेह सीढ़ी बन गया। संदेह ने काट दिया जाल सब व्यर्थ के विश्वासों का।
और जब हृदय बिल्कुल शून्य हो जाता है, तो इस प्रकृति का एक नियम है कि
यह शून्य को तत्क्षण भर देती है। जहां भी शून्य होता है वहीं भरने पहुंच

जाती है। अगर बाहर का शून्य हो तो भी भर दिया जाता है। अगर भीतर का शून्य हो तो भी भर दिया जाता है। भीतर का शून्य परम चैतन्य से भर जाता है।
प्रेरणा किसी से लेना मत, अगर परमात्मा को चाहते हो तो। हां, जिस दिन मिल जाएगा परमात्मा उस दिन तो तुम्हें कहना ही होगा। जिन्होंने जाना है उन्हें स्वीकृति देनी ही होगी।
इसलिए बहुतों को मेरे जीवन में बड़ा विरोधाभास दिखाई पड़ता है। जिन्होंने मेरे प्राथमिक जीवन को देखा है और अब मेरे वचनों को सुनते हैं उनको बड़ी हैरानी होती है! वे कहते हैंः "आप इन्हीं बातों को तो इनकार करते थे!" इन्हीं को इनकार करता था, क्योंकि ये बातें मेरी नहीं थीं। और वे कहते हैंः "अब आप इन्हीं बातों को स्वीकार करते हैं।" निश्चित, क्योंकि अब ये बातें मेरी हैं। मैंने बुद्ध को इनकार किया था; अब मैं बुद्ध को स्वीकार करता हूं। मैंने रामकृष्ण को इनकार किया था, अब रामकृष्ण को स्वीकार करता हूं। मैंने उपनिषद, कुरान सबको इनकार किया था; अब मैं स्वीकार करता हूं। लेकिन यह स्वीकृति मेरे अपने अनुभव से आ रही है। मैं अब गवाह हूं। ये मेरे प्रेरणा-स्रोत नहीं हैं, मैं इनका गवाह हूं।
और अंततः तुमने पूछा है कि स्वामी विवेकानंद भारत के दूसरे कृष्ण थे। परमात्मा कभी दो व्यक्ति एक जैसे बनाता नहीं। वह उसकी आदत नहीं, वह उसका स्वभाव ही नहीं। व्यक्तियों की तो बात छोड़ दो, तुम दो पत्ते भी एक जैसे नहीं खोज सकते सारी पृथ्वी पर! दो कंकड़ भी एक जैसे नहीं खोज सकते! परमात्मा पुनरुक्ति करता ही नहीं। परमात्मा मौलिक सर्जक है, स्रष्टा है, हमेशा अनूठा बनाता है। कृष्ण को बना चुका एक बार, अब दुबारा किसलिए बनाना? परमात्मा कोई फोर्ड की कार बनाने वाली कंपनी तो नहीं है कि बनाते गए फोर्ड, लाइन पर लाइन लगाते गए, एक सी फोर्ड कारों की कतारें लग गईं। परमात्मा मौलिक है।
कृष्ण एक बार पर्याप्त हैं, दुबारा जरूरत भी क्या है? और कृष्ण दुबारा
हो भी कैसे सकते हैं, क्योंकि जिस परिस्थिति में कृष्ण थे वह परिस्थिति दुबारा नहीं होती। अगर दुबारा कृष्ण को लाना हो तो पूरी परिस्थिति को पुनः लाना पड़े। फिर बनाओ कौरव, फिर बनाओ पांडव, फिर द्रौपदी का चीर-हरण करवाओ। बहुत झंझटें होंगी। फिर दुर्योधन बनाओ, फिर चले जुआ, फिर सजे महाभारत। मगर बड़ी गड़बड़ें हो जाएंगी, क्योंकि दुर्योधन भी इस बीच काफी कुशल हो गया होगा।
और महाभारत अब अगर हो तो कोई बचेगा? अणु-बम और हाइड्रोजन बम हमारे हाथ में हैं--और इतने कि एक-एक आदमी को कम से कम सात-सात बार मारा जा सकता है। यह पूरी पृथ्वी सात बार नष्ट की जा सकती है। वह तो ठीक था, उन दिनों युद्ध एक बात थी, आज युद्ध बात और है। और उस परिस्थिति को तुम लौटा ही नहीं सकते। उस परिस्थिति को लौटाने के लिए तो इंच-इंच फिर पुरानी कथा दोहरानी पड़ेगी। और यह हो नहीं सकता। कृष्ण कैसे पैदा हो जाएंगे दुबारा?
और क्या तुम्हें कृष्ण जैसा दिखाई पड़ा विवेकानंद में? न तो बांसुरी दिखाई पड़ती, न मोरमुकुट। जरा सोलह हजार सखियों की तो कल्पना करो! सोलह भी नहीं दिखाई पड़ती, सोलह हजार की तो बात और है। एक बेचारी भगिनी निवेदिता! उसको भी रामकृष्ण आश्रम के अधिकारियों ने आश्रम में प्रवेश नहीं करने दिया। वह भी आश्रम के बाहर रही, क्योंकि संन्यासी को यह शोभा देता है कि एक स्त्री को आश्रम में ले आए? और विवेकानंद जैसा कमजोर आदमी! अरे कम से कम इतना करना था कि जाकर सिस्टर निवेदिता के साथ बाहर ही रहने लगते। वह भी हिम्मत न कर सके। और कृष्ण की सोलह हजार रानियों में पक्का ख्याल रखना, विवाहित तो एक रुक्मिणी ही थी, बाकी तो दूसरों की विवाहिताएं थीं।... जिसकी मिली, ले भागे! अब यह न चलेगा, जेलखाने में बंद पाए जाएंगे।
यह और युग है, और परिस्थिति है। किस आधार पर कहते हो कि दूसरे कृष्ण? ऐसा तो कुछ भी नहीं है विवेकानंद में, जो तुम कृष्ण से तुलना करो। असल में तुलना ही नहीं हो सकती। कहां कृष्ण, कहां विवेकानंद! विवेकानंद की तुलना तो परमहंस रामकृष्ण से भी नहीं हो सकती; उनकी भी चरणों की धूल हैं।
तुम कहते होः "उपनिषदों व अन्य भारतीय ग्रंथों के मूर्धन्य विद्वान।"

यह मैं स्वीकार करूंगा-विद्वान। मगर ज्ञाता नहीं। विद्वान निश्चित। भाषा के विद्वान, सिद्धांतों के संबंध में कुशल; मगर ज्ञाता नहीं, गवाह नहीं, साक्षी नहीं। व्याख्याकार, टीकाकार। लेकिन ऐसा कुछ विवेकानंद की वाणी में नहीं है जिसको उपनिषद का गौरव दिया जा सके।
अब तुम कह रहे होः "ऐसे महापुरुष पर आपके मुखारविंद से एक लंबी प्रवचनमाला की अपेक्षा है।"
भैया मुझे क्षमा करो। एक ही प्रवचन में सफाया किए दे रहा हूं, ताकि आगे दुबारा कोई यह सवाल उठाए ही न।
और तुम कहते होः "शंका भी है कि विवेकानंद पर आप शायद नहीं बोलें।" तुम्हारी शंका दुरुस्त है।
"कारण कि उनका समग्र चिंतन हिंदू शब्द व हिंदू सभ्यता पर आधारित है।
और हिंदू शब्द से आपको घृणा है, ऐसा मुझे कई बार प्रतीत हुआ है।"
हिंदू शब्द से मुझे घृणा नहीं है। शब्दों में क्या रखा है? हिंदू शब्द हिंदुओं का है भी नहीं, दूसरों ने दे दिया है, विदेशियों ने दे दिया है। वेदों में हिंदू शब्द का कोई उल्लेख नहीं है, उपनिषदों में कोई उल्लेख नहीं है। जैसे विदेशी भारत में आए उनके कारण यह पैदा हुआ।
विदेशियों की जो पहलीशृंंखला भारत आई, उनकी भाषा में "स" के लिए "ह" शब्द था। वे स का उच्चारण ह की तरह करते थे। इसलिए सिंधु नदी को उन्होंने हिंदू कहा--हिंदू नदी। और सिंधु नदी पहले पड़ती थी रास्ते में तो इस सिंधु के पार जितने लोग बसते थे, वे "हिंदू नदी" के पास बसने वाले लोगों को हिंदू कहा।
उसके बाद जो दूसरीशृंंखला भारत में विदेशियों की आई... आती रही विदेशियों कीशृंखला। भारत अपनी व्यर्थ की बकवास में लगा रहा और विदेशी आते रहे और शोषण करते रहे। भारत ज्ञान की बातें करता रहा--"जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य।" और लोग आते रहे और बताते रहे इनको कि सत्य क्या है।... जो दूसरीशृंंखला आई, उनकी भाषा में सिंधु के लिए इंदु उच्चारण हुआ। उससे "इंडस" और "इंडिया" शब्द पैदा हुए। ये दोनों ही शब्द विदेशी हैं; भारतीयों का इनसे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन फिर इन शब्दों को भारतीयों ने पकड़ लिया; ये उनके प्रतीक बन गए।
कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि ऐसे शब्द, जिनका तुमसे कोई संबंध नहीं होता, तुम्हारे प्रतीक बन जाते हैं। इतना ही नहीं, ऐसे शब्द भी जो तुम्हारे लिए शुरू-शुरू में गालियों की तरह उपयोग किए जाते हैं, वे भी तुम्हारे लिए बड़े समादृत हो जाते हैं। ऐसा ही एक शब्द है "बाबू।" बाबू जगजीवनराम! बाबू जी कहो तो वे एकदम खिल जाते हैं। लेकिन बाबू शब्द गाली है, किसी से भूल कर मत कहना। अंग्रेजों ने शुरू किया, क्योंकि बंगाली मछली डट कर खाते हैं। और पहली दफे अंग्रेज बंगालियों के संपर्क में आए। कलकत्ता उनकी पहली राजधानी थी। इसलिए बंगाली बाबू सबसे ज्यादा बाबू है बाकी किसी और बाबू से। जैसे तुम पंजाबी बाबू कहो, जंचता नहीं। जंचता ही नहीं--पंजाबी और बाबू! बात जंचती ही नहीं। बंगाली बाबू, एकदम तालमेल बैठता है। उसका कारण यह है कि सबसे पहले बंगाली के लिए ही बाबू शब्द का उपयोग हुआ। बंगाली और बाबू न हो, यह हो ही नहीं सकता।
अंग्रेज बाबू कहते थे। बाबू का अर्थ होता है--बदबू सहित। जिससे बास आती हो--बा-बू। वह मछलियां खाओगे तो बदबू आएगी। अब जग्गू भैया को कोई कह देता है बाबू जी--अहा! सोचते हैं बड़ी ऊंची बात कही जा रही है। कहने वाले को भी पता नहीं, सुनने वाले को भी पता नहीं कि गाली दी जा रही है।
शब्दों की भी बड़ी यात्राएं होती हैं, लंबी यात्राएं होती हैं। शब्द
भी कभी-कभी ऊंचाइयां देखते हैं। घूरों पर पड़े शब्द कभी आकाश के तारे बन जाते हैं। कभी आकाश के तारे घूरों पर गिर जाते हैं। बड़े उतार-चढ़ाव आते हैं शब्दों के जीवन में भी। शब्दों की यात्राएं भी बड़ी अदभुत हैं। शब्दों की यात्राओं को कोई गौर से देखे तो बड़ी हैरानी होती है। कभी जो आदृत शब्द होता है, अनादृत हो जाता है, बाद में। कभी अनादृत था, फिर आदृत हो जाता है। समय बदलता है, परिस्थिति बदलती है।

भगवानदास आर्य, हिंदू शब्द हिंदुओं का तो है ही नहीं, विदेशियों का दिया हुआ शब्द है। तुम पकड़ कर बैठ गए और अब उसको शोरगुल मचाए हुए हो, बहुत शोरगुल मचाए हुए हो। सिर्फ सिंधी अपने को हिंदू कहें तो चल सकता है। और सिंधी भाषा को हिंदी कहो तो चल सकता है। बाकी पूरे देश को हिंदू कहना, हिंदुस्तान कहना, हिंद कहना और पूरे देश के रहने वालों की भाषा को हिंदी कहना, कुछ अर्थ नहीं रखता।
मुझे क्या विरोध हिंदू शब्द से! मुझे कोई घृणा नहीं है हिंदू शब्द से। लेकिन मैं चाहता हूंः मनुष्य एक हो। एक मनुष्य की उदघोषणा करनी चाहिए। सारी पृथ्वी एक हो। ये विभाजन गिरें। ये भेदभाव गिरें, कौन हिंदू, कौन मुसलमान, कौन ईसाई! चैतन्य की उदघोषणा करो। अपने भीतर के परमप्रभु की उदघोषणा करो। उस उदघोषणा के लिए इन सारे शब्दों को गिरा देना चाहता हूं। इसलिए मेरे संन्यासियों का तुम्हें पता ही नहीं चलेगा--कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, कौन ईसाई है, कौन यहूदी है? यहां सारे धर्मो के संन्यासी मौजूद हैं, सारे देशों के संन्यासी मौजूद हैं। लेकिन कोई पूछता ही नहीं-- उनकी जाति, उनका धर्म, उनका देश, कुछ लेना-देना नहीं है। हम तो एक ही बात पूछते हैंः ध्यान। बाकी सब बातें गौण, बाकी सब बातें व्यर्थ।
और अंततः तुम कहते होः "विशेष प्रार्थना है कि स्वामी विवेकानंद के मौलिक विचारों पर... ।"
एक तरफ तो कहते हो कि वे भारतीय ग्रंथों, उपनिषदों इत्यादि के मूर्धन्य विद्वान थे और दूसरी तरफ कहते हो "मौलिक विचार"... । क्या खाक मौलिक विचार होंगे। विद्वानों के कहीं मौलिक विचार होते हैं! मौलिक विचार तो बुद्धों के होते हैं, विद्वानों के नहीं होते। विद्वानों के विचार तो सब उधार होते हैं। उपनिषद बोलता उनसे, गीता बोलती उनसे; वे खुद नहीं बोलते। वे तो सब ग्रामोफोन रिकार्ड हैं--एच.एम.वी. हिज मास्टर्स वाइस! वह देखा न, चोंगे के सामने कौन बैठा रहता है? वही! मूर्धन्य विद्वान यानी वही! ... एच.एम.वी. ने भी खूब प्रतीक चुना है! वह मूर्धन्य विद्वान का सार आ गया उसमें। ग्रामोफोन रिकार्ड! दोहरा दिया उपनिषद और मूर्धन्य विद्वान हो गए।
तोतों की तरह हैं ये लोग। इन तोतों का कोई मूल्य नहीं है। तोता कितना
ही राम-राम जपे, क्या मूल्य है? तोता कितना ही भजन करे, माला फेरे, क्या अर्थ? उसके भीतर तो कुछ नहीं होता। बस राम-राम शब्द की तो गुहार लगा देता है, क्योंकि तुमने सिखा दिया राम-राम तो राम-राम दोहराता है। सब सिखावन की बात है।
विवेकानंद के मैंने सारे वक्तव्य देखे हैं। मुझे तो कोई एक वक्तव्य
भी मौलिक नहीं दिखाई पड़ा। इसलिए मैं असमर्थ हूं उनके मौलिक विचारों पर "शुभ्र, सात्विक और सच्चाईपूर्ण नवनीत का प्रसाद" प्रदान करने में। मौलिक विचार ही नहीं, क्या खाक करूं! उसमें कुछ है नहीं, जान नहीं, प्राण नहीं। मौलिक का अर्थ समझते हो? जो मूल से आए। और मूल कहां है? मूल तुम्हारे भीतर है; तुम्हारे प्राणों के प्राण में छिपा पड़ा है; तुम्हारे अंतर्तम का नाम मूल है। वहां से जो उठे, वह मौलिक। उपनिषद से आए, वेद से आए, वह कैसे मौलिक? वह तो किताबी है, कागजी है, बासा है, उधार है। तुम्हारी निजता का उसमें कोई दान नहीं है। जो ध्यान में जन्मे, जो समाधि में उठे--जो सुगंध समाधि में उठती है वही मौलिक होती है, बाकी तो सब कूड़ा-करकट है। ढोओ कितना ही, सजा लो कितना ही, काम नहीं पड़ेगा, वक्त पर काम नहीं आएगा।
मैंने सुना, एक महिला एक तोते को खरीद कर लाई। तोते बेचने वाले ने कहा
कि आप न लें तो अच्छा, क्योंकि उसे पता था कि महिला बड़ी धार्मिक है। उसने कहा आप धार्मिक हैं और यह तोता जरा रद्दी संग-साथ में रहा है, तो जरा गाली इत्यादि बक देता है। इसको आप न ही लें तो अच्छा। मगर तोता इतना प्यारा था कि महिला ने कहा कि ठीक है, वह तो हम समझा लेंगे, बदल लेंगे, कोई घबड़ाने की बात नहीं है।
महिला लेकर घर आई। तोते ने आते से ही कहाः अरे, नया घर, नई मालकिन, नई लड़कियां! फिर चंदूलाल आए--पतिदेव घर लौटे। तो तोते ने कहाः अरे, घर नया, स्त्री नई, लड़कियां भी नई, चंदूलाल ग्राहक पुराने के पुराने!

वह एक वेश्या के घर का तोता था, जहां चंदूलाल आया-जाया करते थे। चंदूलाल भी दुखी हुए, महिला बहुत दुखी हुई कि करना क्या अब! यह तोता कहां से ले आई, चंदूलाल ने कहा। यह बहुत उपद्रवी तोता है। यह कुछ भी अंट-संट बकेगा। और बकता था। कोई साधु-महात्मा आ जाए तो कहे--ऐ पोंगा पंडित! सत्संग में रह चुका था।
महिला ने कहाः करना क्या अब? पास में ही एक पादरी था। महिला ने पादरी
से सलाह ली कि कुछ रास्ता बताओ, आप तो बड़े-बड़ों को सुधार दिए। यह मेरे तोते को सुधार दो।
पादरी ने कहाः कोई फिकर नहीं, मेरे पास भी एक तोता है जो बड़ा भक्त है; जिसे पूरी की पूरी प्रार्थना आती है, बाइबिल के वचन भी आते हैं और सुबह से ही बैठ कर माला जपता है। ऐसा भक्त तोता मैंने नहीं देखा। तू ऐसा कर अपने तोते को यहीं ले आ। मेरे भक्त तोते के पास छोड़ दे, सत्संग का असर होगा। दोनों साथ-साथ रहेंगे, सब ठीक हो जाएगा। महीने-पंद्रह दिन में सब बदलाहट हो जाएगी।
सत्संग तो असर लाता ही है। महिला को भी बात जंची। तोते को ले आई, रख गई पादरी के तोते के पिंजड़े में। पांच-सात दिन बाद देखने आई कि हालत कहां तक सुधरी! महिला को देख कर पादरी तो एकदम भनभना गया। उसने कहाः ले जा अपना तोता, इसी वक्त ले जा! महिला ने कहाः बात क्या है? उसने कहाः बात कुछ पूछ मत। तू अपने तोते को ले जा, हमें नहीं रखना यह तोता!
दोनों तोते के पिंजड़े के पास गए। महिला भी कुछ समझी नहीं कि बात क्या है। जाकर समझ में आई। पादरी के तोते ने माला फेंक दी थी। महिला ने पूछा कि तूने माला क्यों फेंक दी? उसने कहा माला जिसके लिए जपते थे वह मिल गई। वह तोता, जो महिला लाई थी, तोती थी।... कि माला इसी के लिए जप रहे थे, प्रार्थना कर रहे थे, सुन ली प्रभु ने। अब क्या जपना माला, अब क्यों जपना माला? तोतों की बातें तो ऊपर ही ऊपर होंगी, भीतर तो कुछ और चलता रहेगा। मौलिकता तोतों में नहीं हो सकती। विद्वानों में मौलिकता कभी नहीं होती। विचार में मौलिकता होती ही नहीं; मौलिकता तो ध्यान में होती है, निर्विचार में होती है।
भगवानदास आर्य, ऐसे व्यर्थ के प्रश्न यहां मत उठाया करो। कुछ सार्थक पूछो, दो दिन की जिंदगी है, कुछ काम की बात पूछो--कुछ जो तुम्हारे काम आ जाए; कुछ जो तुम्हारे जीवन को बदल जाए; कुछ जिससे तुम्हारे बंद झरोखे खुलें; कुछ जिससे परमात्मा से तुम्हारा सेतु जुड़े।
तुमने नाहक विवेकानंद को पिटवाया। इसमें मेरा कोई जिम्मा नहीं, जिम्मा तुम्हारा है।

आज इतना ही।